# सरल भौतिक शास्त्र

( प्रधानतः हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिये )



लेखक

रमेश चन्द्र गुप्ता बी० एस-सी०, एल० टी०,

एम० आर० ए० एस०,

विज्ञानाध्यापक, कुबेर हाई स्कूल,

डिबाई ( बुलन्दशहर )।

मुद्रक:—

जीवनलाल, कला प्रेस, प्रयाग।

प्रथम बार ] १९३३ [ मूल्य १॥)

## पुस्तक मिलने के पते—

(१) L. Ram Narain Lal, Bookseller and Publisher, Allahabad.

(२) साहित्य भवन लेमिटेड,
पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद ।

(३) मेसर्स गया प्रसाद एण्ड सन्स,
पुस्तक विक्रेता, आगरा ।

(४) Messrs. Nand Kishore & Bros.,
Publishers & Booksellers, Benares.

(५) Messrs. Gupta Brothers & Co.,
Educational Publishers, Khurja, U. P.

# प्रस्तावना

गत दो वर्षों से संयुक्त प्रान्त के शिक्षा विभाग ने हाई स्कूल के छात्रों की सुविधा के लिये विज्ञान, गणित इ. को अँगरेज़ी के अतिरिक्त वर्नाक्यूलर में भी पढ़ाने की आज्ञा दे दी है। परन्तु हिन्दी में विज्ञान की उपयुक्त पुस्तकों के अभाव से विज्ञान की शिक्षा का माध्यम अधिकतया हाई स्कूल कक्षाओं में अभी तक अँगरेज़ी ही बना हुआ है। भौतिक विज्ञान पर कुछ पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध अवश्य हैं, किन्तु उनके लिखने का ढंग पुराना है, और पुस्तकों में चित्रों तथा प्रयोगों का अभाव होने के कारण वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली के पाठ्यक्रम के उपयुक्त नहीं हैं। इस कमी को दूर करने और हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक अंग को पूरा करने के उद्देश्यों को सामने रख कर भौतिक विज्ञान पर यह पुस्तक लिखी गई है।

विषयों का क्रम हाई स्कूल के पाठ्यक्रम के अनुसार रखने का प्रयत्न किया गया है और आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मध्यमा के तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एडमिशन के परीक्षार्थियों की आवश्यकताओं को भी पूरा करेगी। प्रथम भाग में ताप और प्रकाश के विषय हैं और दूसरे भाग में, चुम्बक, विद्युत, और शब्द के विषय।

पारिभाषिक शब्द साधारणतया नागरी प्रचारिणी सभा के शब्द कोष से लिये गये हैं और भाषा को सरल तथा सुबोध रखने की भी यथा-सम्भव चेष्टा की गई है। इस पुस्तक में विज्ञान की प्राप्य पुस्तकों से कई विशेषताएँ हैं :—

(१) सिद्धान्तों को तर्क द्वारा समझाने के अतिरिक्त जहाँ तक हो सका है प्रयोग द्वारा भी पुष्ट किया गया है। विद्यार्थियों के लिये प्रयोग काफ़ी दिये गये हैं। समझने के लिये चित्रों का होना भी अनिवार्य्य है और इनकी अभी तक विज्ञान विषय की हिन्दी पुस्तकों में बहुत कमी है इसलिये इस पुस्तक के केवल प्रथम भाग में ही चित्रों की संख्या सवा सौ से अधिक रक्खी गई है।

(२) पुस्तक वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली को दृष्टि में रख कर प्रयोगों के आधार पर लिखी गई है। साथ ही साथ जहाँ पर अपरिपक्व मस्तिष्क वाले विद्यार्थियों को विशेष कठिनाइयाँ पड़ती हैं वहाँ पर लेख को भली भांति सतर्क और सरल किया गया है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये सिद्धान्तों को मोटे अक्षरों में छापा गया है और कठिन गणनाओं के उदाहरण भी दिये गये हैं। इन्हीं कारणों से कतिपय लेख बढ़ भी गये हैं।

(४) पुस्तक को ( हाई स्कूल के लिये ) अधिक उपयोगी बनाने के हेतु प्रत्येक अध्याय के अन्त में भिन्न भिन्न यूनवर्सिटियों व परीक्षाओं के आधार पर अभ्यासार्थ प्रश्नावली दे दी गई हैं। ताप और प्रकाश की विविध प्रश्नावलियों में प्रयाग की हाई स्कूल परीक्षाओं के १९३२ तक के और पञ्जाब मेट्रिकुलेशन परीक्षा के चुने हुये प्रश्न दे दिये गये हैं ताकि विद्यार्थियों को प्रमाणित प्रश्नपत्रों के उत्तर लिखने में सुभीता हो।

(४) पुस्तक के अन्तर्गत कोष्टों में पारिभाषिक शब्दों के अँगरेजी पर्यायवाची शब्द दे दिये गये हैं।

(५) पुस्तक को रोचक बनाने के लिये भौतिक सिद्धान्तों पर निर्भर मनुष्य जीवन के ऐसे व्यावहारिक सम्प्रयोगों तथा प्राकृतिक

घटनाओं और उदाहरणों का भी समावेश किया गया है जो अँगरेजी भाषा की साधारण पाठ्य पुस्तक में भी प्रायः नहीं मिलते ।

यदि विज्ञानाध्यापक अनिवार्य समझें तो पहली वार पढ़ाने में कुछ बातें जैसे 'ताप और प्रकाश का सम्बन्ध' 'इन्द्रधनुष,' व 'प्रकाश का वेग' छोड़ भी सकते हैं ।

प्रयाग की हिन्दी विज्ञान परिषद ने अपने कुछ ब्लाकों के देने की कृपा की है उसके लिये मैं बहुत अनुगृहीत हूँ । मेरे पूर्व अध्यापक श्रीयुत अयोध्या प्रसाद जी बी० एस-सी०, एल, टी०, अध्यापक, गवर्नमेंट हाई स्कूल, फतेहगढ़, ने ताप के विषय को पढ़ कर बहुत सी त्रुटियों को दूर कराया है उसके लिये उनको हार्दिक धन्यवाद है ।

इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिये जो सज्जन लेखक को अपनी सम्मतियाँ भेजेंगे वे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार की जायंगी और अगले संस्करण में सुधार करने का यथेष्ट प्रयत्न किया जायगा । जल्दी में छपने के कारण प्रेस की असावधानी से पुस्तक में जहाँ तहाँ कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं । आशा है कि इन त्रुटियों की ओर विशेष ध्यान न देकर समस्त शिक्षा संस्थाएं, अध्यापक महोदय एवं विद्यार्थी गण इस तुच्छ कृति को अपना कर अपनी मातृ भाषा का मान बढ़ायंगे । इससे मैं अपने को सफल प्रयास समझूंगा ।

डिबाई ( बुलन्दशहर )
वसन्त पञ्चमी,
३० जनवरी, १९३३

रमेश चन्द्र गुप्त

# विषय-सूची

## प्रथम खण्ड—ताप

## दूसरा खण्ड—प्रकाश

————

( भाग १ )

# प्रथमखण्ड ।

# ताप

# सरल भौतिक शास्त्र

—:o:—

## पहला अध्याय ।

### ताप और साधारण पदार्थों पर इसका प्रभाव ।

इस संसार में हमारे अनुभव और व्यवहार में साधारणतया दो प्रकार के पदार्थ आते हैं। उनमें से कुछ तो दृष्टिगोचर हैं और कुछ अदृष्य । पहली भाँति की वस्तुओं को हम नेत्रों से देख सकते हैं, हाथों से छू सकते हैं, और बहुधा तौल भी सकते हैं, जैसे—काष्ठ, जल, धुआं इत्यादि। प्रत्येक मनुष्य इन्द्रियों द्वारा ऐसे पदार्थों के रस, रूप, गंध, भार इत्यादि को जान सकता है। दूसरी भांति के पदार्थों का केवल प्रभाव ही अनुभव में आ सकता है। किसी धातु के टुकड़े को यदि धूप में रखते हो तो थोड़ी देर बाद यह गर्म हो जाता है; परन्तु तौलने से यह देख सकते हो कि इसके भार में पहले की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं होता। इस धातु की गर्मी को न हम पदार्थ से जुदा करके देख ही सकते हैं और न उसका रूप, रस, गंध ही ले सकते हैं। इसी प्रकार कोई कांच की वस्तु लेकर किसी रेशमी रूमाल व ऊनी वस्त्र से रगड़ो। इसे छोटे छोटे काग़ज़ के टुकड़ों व रुई के पास ले जाने से ज्ञात होगा कि वस्तु में ऐसे ऐसे पदार्थों को आकर्षित करने का विशेष गुण आ जाता है; परन्तु कांच की वस्तु को तौलने से पता चलेगा कि वस्तु के भार में कोई भेद नहीं होता। ऐसी बातों से स्पष्ट है कि ऐसे गुणवाचक पदार्थों को हम पृथक् इकट्ठा नहीं कर सकते। इनका प्रभाव पहिली भाँति के पदार्थों द्वारा ही प्रदर्शित कर सकते हैं। इस प्रकार ताप, प्रकाश, चुम्बकत्व व विद्युत् को पदार्थ कह कर सम्बोधित करना ही

अत्युक्ति है। ताप, प्रकाश इत्यादि अपने गुणों, प्रभाव व अस्तित्व को दूसरे पदार्थों के आश्रित ही दर्शा सकते हैं, स्वयं नहीं। न इनमें तौल ही होता है और न मात्रा ही। प्रकाश, ताप, इत्यादि केवल एक प्रकार की शक्ति ही हैं, जिनका बोध इनके गुणों द्वारा ही होता है।

मात्रा वाले पदार्थों के गुणों और बनावट की खोज रसायनिक विज्ञान द्वारा करते हैं। उपरोक्त शक्तियों के प्रभाव व गुणों का ज्ञान भौतिक शास्त्र में करते हैं। ताप के विषय का ज्ञान मनुष्य के लिये बड़ा लाभदायक, अर्थव्याप्त और रोचक है क्योंकि मनुष्य को ताप से बहुत से कार्यों के करने में बड़ी सहायता मिलती है। मनुष्यमात्र ही का क्या प्रत्येक जीव पदार्थ का जीवन ही ताप पर निर्भर है। ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है परन्तु सूर्य ही इस पृथ्वी के ताप का मुख्य उद्गम स्थान है। यदि सूर्य न रहे तो जीवन के लिये भोज्य पदार्थों की भी प्राप्ति न हो और जीव संसार में न रहें। जब मनुष्य को ज्वर होता है तो उसका ताप बढ़ जाता है, और मृत्यु पर शरीर में ताप की मात्रा अति न्यून हो जाती है। यदि मनुष्य किसी प्रकार का परिश्रम तथा व्यायाम करता है तो उसके शरीर का ताप बढ़ जाता है और शरीर पर पसीना आने लगता है। ताप के अस्तित्व और इसके नियमों के ज्ञान के ही कारण आजकल की हमारी सारी सुविधायें, यंत्र आदि प्राप्त हैं; अग्नि का मनुष्य सदा भिन्न भिन्न उद्देष्यों के हेतु उपयोग करता रहता है। ससार में जितना कोयला, लकड़ी, व मिट्टी का तेल प्राप्य है, इन सब वस्तुओं की उत्पत्ति का प्रधान कारण एकमात्र सूर्य ही है।

यदि हम अग्नि व सूर्य के सम्मुख खड़े हों तो चाहे हमारे आंख, नाक, कान इत्यादि पंच कर्मेन्द्रियां काम न करती हों तो भी हमें ताप का अनुभव होगा। ताप का सम्बन्ध हमारे शरीर की त्वचा से है। इसी प्रकार हिम को हाथ में लेने से ठंढक प्रतीत होती है,

परन्तु यहाँ यह प्रश्न होता है कि "ठंढक और गर्मी हैं क्या वस्तु ?" ताप व गर्मी अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ पिघलते व जलते हैं। इस संसार में सूर्य, रसायनिक क्रियायें प्रक्रियायें, भौतिक परिवर्त्तन, अथवा विद्युत् ही सारे ताप की उत्पत्ति के साधन हैं। **'शीत' और 'ताप' में कोई अन्तर नहीं है, ये केवल आपेक्षिक और सांकेतिक शब्द हैं**। ताप का संवेदन ताप की चालकता पर निर्भर होता है। ताप ही सब गरमी व ठंढक के बोध का कारण होता है। जब एक वस्तु से ताप दूसरी में आता है तो प्रथम वस्तु को दूसरी की अपेक्षा गरम कहा जाता है। और दूसरी को पहली की अपेक्षा ठंढा कहते हैं।

प्रयोग १—एक बीकर में जल तेज गरम कर लो और दूसरे में सीलनिवाया। एक तीसरा बीकर बहुत ठंढे जल से भर लो। अब अपना बायाँ हाथ पहले बीकर में और दाहिना हाथ तीसरे बीकर में डालो। फिर दोनों हाथों को निकाल कर दूसरे बीकर में ( सील निवाये पानी में ) डालो। तुम्हें प्रतीत होगा कि वही सील निवाया जल बायें हाथ को ठण्ढा और दाहिने हाथ को गर्म प्रतीत होता है। इस प्रत्यक्ष विरोध का क्या कारण है ? इसका कारण यही हो सकता है कि बायाँ हाथ गर्म पानी में प्रथम रक्खे जाने के कारण सील गर्म जल की अपेक्षा अधिक गर्म और दाहिना हाथ ठण्ढे जल में रहने के कारण अधिक ठंढा हो गया था, इसी कारण से वही जल बायें हाथ को ठंढा और दाहिने हाथ को गर्म प्रतीत होने लगा। इस प्रकार प्रयोग से यह आशय निकलता है कि **किसी वस्तु का शरीर को गर्म व ठण्ढा प्रतीत होना शरीर और वस्तु की आपेक्षिक गरमी व ठण्ढक पर निर्भर होता है**। यदि हाथ अधिक गर्म है तो वस्तु हाथ को ठंढी प्रतीत होती है और यदि वस्तु की अपेक्षा हाथ ठंढा

होता है तो वस्तु गर्म प्रतीत होने लगती है। 'गर्म' व 'ठण्ढी' वस्तुओं की केवल अवस्था ही का नाम है। 'गर्मी' व 'ठण्ढक' स्वत: कोई वस्तु नहीं हैं। गर्मी न छूई ही जा सकती है और न देखी ही जा सकती है। केवल प्रभाव द्वारा ही गर्मी व ठण्ढक का बोध होता है। ताप के कम होने ही को हम ठंढक कहते हैं।

## ताप के प्राकृतिक साधन

(१) सूर्य—अन्य साधनों की अपेक्षा सूर्य ताप का एक आवश्यक साधन है। ताप का सब से बड़ा भंडार सूर्य ही है, जिससे सारी पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है। इसके बिना वनस्पति तथा मनुष्य जीवन सब ही असम्भव हैं। सब फल व अन्न सूर्य ही के ताप से पकते हैं।

(२) रसायनिक क्रियायें प्रक्रियायें—जब कोई रसायनिक परिवर्त्तन संयोग से होता है, तो प्राय: क्या तो ताप का निकास होता है अथवा शोषण। उदाहरणार्थ चूने की डली व तेज़ाब को पानी में डालते हैं तो पानी गर्म हो जाता है। इसी भाँति जब कोयला जलता अर्थात् ओषजन ( Oxygen ) से रसायनिक संयोग करता है तो ताप की उत्पत्ति होती है और अग्नि पैदा हो जाती है। इसी प्रकार जीवों में ताप भोज्य पदार्थों और ओषजन तथा अन्य तेज़ाबों के संयोग से पैदा होता है, इसी को जठराग्नि भी कहते हैं। शरीर में ताप की मात्रा वायु से रक्त, माँस व मज्जा का, सांस लेते समय, ओषजीकरण होने से ( Oxidation से ) भी बहुत बढ़ती है।

(३) भौतिक परिवर्त्तन व संघर्षण—तुमने कभी कभी देखा होगा कि रेल के चलते हुये पहियों में से और बहुधा भागते हुए

घोड़ों की नालों में से चिनगारियाँ झड़ा करती हैं। इसी प्रकार यदि तुम दो लकड़ियों व पत्थरों को रगड़ो तो शीघ्र ही दोनों लकड़ी व पत्थर तप्त हो जायंगे। सब ने यह बात देखी होगी कि चाकू व कैंची पर श्याम रक्खी जाती है तो पत्थर की घूमती हुई चक्की चाकू व कैंची से रगड़ खाती है। इस रगड़ से चिनगारियां पैदा होती हैं। इन सब प्रयोगों से प्रत्यक्ष है कि भौतिक परिवर्त्तन व संघर्षण से भी ताप की उत्पत्ति होती है।

(४) विद्युत—देखा होगा कि बिजली जिस वस्तु पर अथवा स्थान पर गिरती है उसको भस्मीभूत कर देती है। इसी प्रकार जब बिजली अधिक दबाव पर तारों में को जाती है तो ताप के रूप में भी परिवर्तित हो जाती है, उदाहरणार्थ बिजली के लैम्प और अंगीठियां। विद्युत शक्ति तथा ताप शक्ति को बहुधा परस्पर परिवर्तित कर सकते हैं।

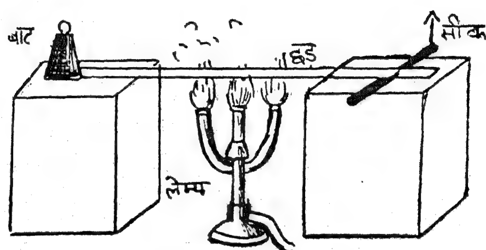
## ताप का प्रभाव

**(अ) परिमाण परिवर्त्तन व प्रसार :**—रेलगाड़ी में यात्रा करने वालों ने प्रायः देखा होगा कि गरमियों में तार शीत काल की अपेक्षा बीच में से अधिक लटक जाया करते हैं। ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाया करता है।

प्रयोग २—छोटे मुँह वाली एक कांच की सुराही लो। इसको किसी द्रव से लबालब भर कर गर्म करो। देखोगे कि गर्म करने से कुछ द्रव पदार्थ बाहर निकल जाता है, और अधिक गर्म करने से अधिक निकलता है। अब सुराही के नीचे से लैम्प हटा लो और द्रव को ठण्ढा होने दो। थोड़ी देर के बाद तुम यह देखोगे कि ठंढे होने पर द्रव का आयतन कुछ कम हो जाता है और सुराही

के ऊपर का भाग खाली हो जाता है। इस घटना का क्या कारण हो सकता है? इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि द्रव गर्म होने पर फैलता है और ठंढा होने पर फिर सिकुड़ जाता है।

प्रयोग ३—किसी धातु की एक साधारण छड़ लो। इसको मेज़ पर दो बराबर बराबर लकड़ी के टुकड़ों पर चित्रानुसार धरातल के




चित्र १—ताप से धातु के छड़ का प्रसार।

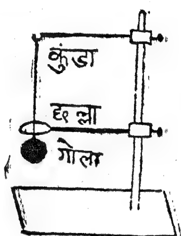
समानान्तर रक्खो। छड़ को एक ओर लगा कर एक ऐसा भारी बाट रख दो जो आसानी से न हिल सके (जिसकी ओर छड़ न सरकने पावे) और दूसरे सिरे के नीचे काठ ही के टुकड़े पर धरातल के समक्ष छड़ के साथ एक समकोण बनाती हुई सूई रख दो सूई के सिरे पर (जो काठ के टुकड़े से बाहर निकला होना चाहिये) एक सींक लगा दो जो सूई से समकोण बनाती हुई ऊर्ध्वाधार खड़ी रहे। अब धातु के छड़ को गर्म करो शीघ्र ही देखोगे कि छड़ बढ़ने लगता है। सूई बेलन की नाईं लुढ़क कर आगे को खिसकने लगती है। अब यदि छड़ के नीचे से लैम्प हटा लो तो फिर देखोगे कि सूई अपने निज स्थान पर आ जाती है और तिर्छी सींक फिर सीधी हो जाती है। इस प्रयोग से यह प्रत्यक्ष है कि छड़ तप्त होकर सूई की ओर फैलने लगता है (क्योंकि दूसरी ओर फैलने का अवकाश नहीं रक्खा गया) और ठंढा होकर फिर संकुचित हो

जाता है। तुमने प्रायः यह देखा होगा कि इक्के गाड़ीवाले ग्रीष्म ऋतु में कहीं दूर जाते हैं तो पथ में पहियों पर जल डाल लिया करते हैं। समझ गये होगे कि इसका क्या कारण है। प्राकृतिक गर्मी, और पहिये और सड़क की रगड़ से गर्मी के कारण पहिये पर लोहे की हाल फैल कर ढीली पड़ जाती है और पहिये पर से उतरने की सम्भावना रहती है। अतएव गाड़ीवाले उसे ठंढा करने के लिये पानी उस पर डाल लिया करते हैं, ताकि हाल सिकुड़ कर लकड़ी के चाक को भली प्रकार बाँधे रक्खे। लुहारों की दूकानों पर तुमने बहुधा देखा होगा कि काठ के पहिये पर हाल कैसे चढ़ाई जाती है। पहले तो लोहे की हाल को समतल भूमि पर रख कर कंडों से ढक देते हैं और फिर चारों ओर से कंडों में अग्नि प्रज्वलित कर देते हैं। जब हाल ख़ूब लाल हो जाती है तो उसे पहिये पर चढ़ा देते हैं। लोहे की हाल ठंढी होने पर सिकुड़ जाती है और काठ के पहिये को ऐसे कस कर जकड़ लेती है कि मनुष्य उसे साधारण रीति से छुड़ा नहीं सकता। इसी नियम के अनुसार तुम देखोगे कि रेल की पटरियों में लोहे के डंडे सटा कर नहीं जोड़े जाते, परन्तु प्रत्येक जोड़ पर चार पाँच सूत की जगह छुटी रहती है।

पदार्थ एक ही ओर को नहीं फैलते किन्तु सब परिमाणों में फैलते हैं ( अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई, और मोटाई में भी )। प्रत्येक वस्तु को गर्म करने से आयतन बढ़ जाता है। यदि किसी प्रकार बोतल में काँच की डाट फँस जाती है तो लोग डाट निकालने के लिये बोतल के मुंह को चारों ओर से सहज सहज गरम करते हैं ताकि बोतल का मुंह गर्म होकर कुछ अधिक चौड़ा हो जाय और डाट निकल आवे।

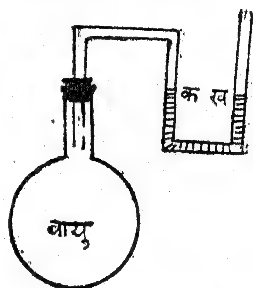
प्रयोग ४—एक किसी धातु का गोला लो और एक ऐसा छल्ला लो जिसमें ठंढा गोला ठीक ठीक साधारणतया आ जा सके।

गोले को इसके कुंडे से पकड़ कर खूब तपा लो। इसको अब छल्ले पर रखने से देखोगे कि गोला छल्ले पर रुक जाता है। इसका कारण केवल यही है कि ताप से गोला फैल जाता है और इसका घनफल पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है। परन्तु (चित्रानुसार) गोला ठंढा होकर फिर छल्ले में को आ जा सकता है। इन प्रयोगों से यह बात सिद्ध होती है कि ठोस और द्रव पदार्थ गर्म करने पर अपने चारों ओर को फैलते हैं और ठंढा करने पर फिर सिकुड़ कर पूर्वरूप में आ जाते हैं। जिस प्रकार द्रव और ठोस पदार्थ ताप से फैलते और इसके अभाव से सिकुड़ते हैं, उसी प्रकार वायव्यों का भी प्रसार होता है।



चित्र २—धातु का आयतनिक प्रसार।

प्रयोग ५—एक नली को थोड़ी थोड़ी दूर पर समतल चार स्थानों पर समकोणों पर मोड़ लो। चित्रानुसार इसके एक सिरे का सम्बन्ध एक खाली काँच की सुराही में काग के द्वारा कर दो वक्र नली में थोड़ा सा जल डाल दो ताकि दोनों नलियों में जल की एक ही सतह रहे। सुराही में केवल वायु ही रहता है जिसका सम्बन्ध बाहर के वायु से बिलकुल नहीं होता। यदि अब इस कांच की सुराही को कुछ गरम करने के लिये अपने हाथों में दबाओ तो देखो क्या होता है। खुली हुई नली में 'ख' पर जल ऊपर को उठने लगता है और सुराही की ओर नली में 'क' पर जल की सतह बिलकुल नीचे को उतर जाती है।



चित्र ३—ताप से वायु का प्रसार

सुराही को कुछ देर ठंढी करने के लिये रक्खी रहने दो। देखोगे कि 'क' की ओर जल फिर ऊपर को चढ़ जाता है और 'ख' में उतर जाता है। अन्त में 'क' और 'ख' में जल फिर समतल हो जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वायु गर्म करने से फैल कर पानी को 'क ख' नली में ढकेला देता है और ठंढा होने पर पुनः सिकुड़ जाता है। वायव्यों में एक विशेषता यह है कि अन्य पदार्थों की अपेक्षा इनका अत्यधिक प्रसार होता है। प्रसार एक ही ओर न होने से किन्तु चारों ओर होने से प्रत्येक वस्तु व पदार्थ का घनफल अधिक हो जाता है। लम्बे ठोसों का प्रसार लम्बाई में भी और धरातलों का वर्ग-क्षेत्र फलों में भी नापा जा सकता है किन्तु द्रव और वायव्य पदार्थों का (तरलों का ) प्रसार केवल घन सम्बन्धी इकाइयों ही में नापा जा सकता है। इसी प्रकार ठंढा करने पर प्रत्येक पदार्थ का घनफल कुछ न्यून हो जाता है।

(ब) रसायनिक प्रभाव:—तुम साधारणतया जानते हो कि यदि मोमवत्ती जलाई जाती है तो बिलकुल लोप हो जाती है और अन्यान्य पदार्थ ( कर्बन द्विओषित और जल ) बन जाते हैं। इसी प्रकार जब उद्जन वायु को जलाया जाता है तो जल बन जाता है।

प्रयोग ६—हीरे कसीस व तूतिये को लेकर किसी चाकू की नोक पर रख कर गर्म करो। थोड़ी देर बाद देखोगे कि इसमें से जल वाष्प रूप होकर निकल जाता है और ये श्वेत चूर्णरूप में रह जाते हैं। इसी प्रकार मग्न (Magnesium) व जस्त ( Zinc ) के टुकड़ों को लेकर पृथक् पृथक् जलाओ। जलने पर इनकी भस्म चूर्णरूप में बन जाती है। इस भांति ताप द्वारा बहुत से रसायनिक परिवर्त्तन हो सकते हैं। प्रकृति में भी इसी प्रकार सूर्य के ताप से तथा पृथ्वी के आन्तरिक ताप से सदा परिवर्त्तन होते रहते हैं। धूप के प्रभाव से कर्बन द्विओषत का कर्बन और ओषजन में

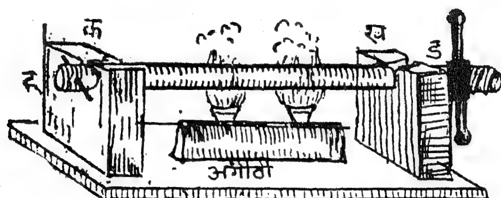
पृथक्करण हो जाता है। पृथ्वी में वनस्पति वृक्ष आदि कालान्तर तक दबे रहने से कोयले बन जाते हैं। ऐसे ही सीलदार भूमि में मछली व अन्य वनस्पति आदि दलदलों में दबे रहने के कारण वहां पर बहुत सा दारेन नामक रसायनिक वायु ( यौगिक ) बन जाता है। कोयले की खानों में ताप से बहुधा रसायनिक परिवर्त्तन होकर भभकने वाला अन्य वायु भी बन जाता है।

## ( स ) भौतिक परिवर्त्तन :—

प्रयोग ७—मोम को एक चीनी की कटोरी में गर्म करो। देखोगे कि ठोस दशा से यह शीघ्र ही पिघल कर द्रवरूप में परिवर्त्तित हो जाता है। यदि और गर्म करते रहो तो यह सारा वायुरूप में होकर उड़ भी जायगा। इसी प्रकार हिम को गर्म करो। पहले तो यह द्रव रूप में हो जायगा तदनन्तर अधिक गर्म करने से उबाल आकर भाफ बन कर उड़ जावेगा। इस वायुरूप को अधिक ठण्ढा करो तो वही जम कर हिम के रूप में आ सकता है। इसी प्रकार ताप द्वारा अन्य पदार्थों में भी दशा परिवर्त्तन हो जाता है। शीशा, सोना, चाँदी, लोहा, गंधक, सीसा और बालू इत्यादि भी अधिक ताप से पिघल जाते हैं। ये वस्तुएँ गर्म होकर पिघल ही नहीं जातीं किन्तु अत्यधिक ताप से वायुरूप बन कर उड़ भी जाती हैं। जस्त ओषित साधारण रूप में श्वेत होता है और गर्म करने पर पीला पड़ जाता है। इन परिवर्त्तनों के अतिरिक्त ताप से बहुधा वस्तुएँ गर्म हो जाती हैं अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय द्वारा यह विदित होने लगता है कि वस्तु की दशा में कोई भेद अवश्य हो गया है।

इसी भाँति ताप द्वारा बहुत से भौगोलिक परिवर्त्तन होते रहते हैं; जैसे शिलाओं इत्यादि का टूटना, रेत का बनना और कन्दराओं का बन जाना। ठंढक से संकुचन के प्रभाव

को चित्राङ्कित उपकरण द्वारा भली प्रकार दर्शा सकते हैं। चित्र में लोहे का एक भारी आधार है जिस पर लोहे के दो उपस्तम्भ क, ख लगे हैं। उपस्तम्भों में ऊपर की ओर

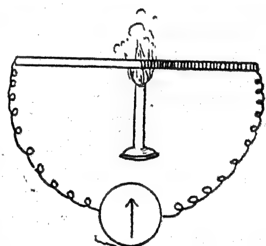



चित्र ४—संकुचन द्वारा शक्ति का उपयोग।

बीच में खाँचे रहते हैं। इन खाचों में लोहे के एक ऐसे मजबूत छड़ को रख देते हैं जिसका एक सिरा चूड़ी-दार होता है। चूड़ी पर एक ढिवरी चढ़ सकती है, छड़ के दूसरे सिरे में 'द' पर एक सूराख है जिसमें किसी एक दूसरे छड़ का टुकड़ा फँस सकता है। 'क' उपस्तंभ के खाँचे में छड़ के इस सिरे को रख कर बाहर की ओर छड़ का एक टुकड़ा 'द' में फंसा देते हैं। छड़ को नीचे से एक लम्बी अंगीठी द्वारा गर्म करने पर छड़ बढ़ता है। गर्म होने पर ढिवरी को 'ड' पर भली भाँति चढ़ा देते हैं और धातु का छड़ दोनों उपस्तंभों में छड़ के टुकड़े और ढिवरी के मध्य जकड़ जाता है। यदि अंगोठी को हटा कर छड़ को ठंढा करने के लिये इस पर जल डाला जाय तो यह अवश्य संकुचित होगा। ढिवरी की ओर से छड़ हिल नहीं सकता। इससे छड़ के ठंढा होने में संकुचन की इतनी शक्ति होती है कि 'छ' पर फौलाद की छड़ का टुकड़ा टूट तक जाता है। इसी सिद्धान्त पर मकानों की दीवारें जो किसी कारण बाहर

की ओर झुक जाती हैं बीच में छड़ देकर सीधी भी कर लिया करते हैं। इसी चित्र में यदि उपस्तंभ बलिष्ट न हों तो छड़ के ठंढा होने पर भीतर को झुक जायंगे।

ऐसे ही ताप के अन्य भौतिक प्रभाव भी हैं। यदि चुम्बक लोहे को तप्त कर ठंढा करें तो उस लोहे में चुम्बकत्त्व का गुण दूर हो जाता है; यही नहीं यदि दो धातुओं के तारों को झल कर एक कुण्डल बना लें और जोड़ पर गर्म करें तो देखेंगे कि धातुओं में आन्तरिक परिवर्त्तन के कारण क्षणिक विद्युत् धारा भी वह निकलती है। धारा का बोध सुग्राहक यंत्र * द्वारा हो सकता है। इस प्रकार ताप के अन्य बहुत से प्रभाव होते हैं जिनकी ओर हम अपने जीवन में अधिक ध्यान भी नहीं देते।



चित्र ५—ताप का विद्युत् प्रभाव

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( १ )

( १ ) ठोसों, द्रवों, और वायव्य पदार्थों पर ताप के क्या २ प्रभाव होते हैं ?

( २ ) प्रयोग द्वारा यह कैसे दिखा सकते हो कि लोहे को गर्म करने से इसका प्रसार होता है ?

( ३ ) धातुओं में ठंढक से संकुचन शक्ति का बल प्रयोग द्वारा कैसे दर्शा सकते हैं ?

( ४ ) ग्रीष्म ऋतु में तारप्रेषण व टेलीफोन के तार क्यों लटक जाया करते हैं ?

---

* गैल्वैनोमीटर व धारामापक।

( ५ ) ताप के कौन २ से उद्गम स्थान हो सकते हैं ? हमारे लिये सब से मुख्य कौन सा है ?

( ६ ) रेल की पटरियां डालने के समय बताओ पटरियों के जोड़ के बीच कुछ अन्तर क्यों छोड़ दिया करते हैं।

( ७ ) क्या ताप कोई वस्तु व पदार्थ है ? नहीं तो फिर क्या है ?

( ८ ) बतलाओ कि मोटी चादर वाले कांच के गिलासों में गर्म दूध डालने से, इनके टूटने की पतली चादर वाले गिलासों की अपेक्षा अधिक सम्भावना क्यों रहती है।

( ९ ) 'ठंढक' और 'गर्मी' से तुम क्या समझते हो ? क्या किसी पदार्थ को गर्म करने से पदार्थ के भार में कोई अन्तर पड़ जाता है ?

(१०) संकुचन और प्रसार की शक्ति दिखाने के हेतु किन्हीं दो प्रयोगों का वर्णन करो।

---

# दूसरा अध्याय।

## ताप, तापक्रम, और तापमापकयंत्र।

तापक्रम ( Temperature )—यह साधारण अनुभव की बात है कि जल व कोई भी अन्य द्रव पदार्थ सदा ऊंचे तल से नीचे को ढलता है। यदि दो बरतन किसी नली द्वारा नीचे से सम्बन्धित कर दिये जायं और उनमें से एक में जल डाला जाय तो दूसरे बर्तन में भी उसी समय तक जाता रहेगा जब तक कि दोनों बर्तनों में द्रव का तल समान न हो जावेगा। द्रव का बहाव सतह की ऊंचाई पर निर्भर रहता है न कि वर्त्तन में जल की मात्रा पर। इसी प्रकार यदि एक ठंढी वस्तु दूसरी गर्म वस्तु में अड़ा कर रख दी जाय तो अधिक गर्म वस्तु में

से ताप भी बह कर दूसरी वस्तु को अधिक गर्म कर देता है। गर्म वस्तु स्वयं कुछ ठंढी हो जाती है। अन्त में वे दोनों वस्तुएं एक सी ही गर्म हो कर वायु के तापक्रम तक ठंढी हो जाती हैं। द्रव की भांति ताप का बहाव दोनों पदार्थों में ताप की मात्रा पर निर्भर नहीं रहता किन्तु दोनों पदार्थों की दशा पर। वस्तु की उस दशा को जिस पर कि वस्तु में से ताप का आवागमन निर्भर होता है तापक्रम कहते हैं।

प्रयोग ८—एक बड़े वर्तन में जल गर्म करो। गर्म होने पर इसमें से एक गिलास में थोड़ा सा जल ले लो। यह प्रत्यक्ष है कि अब गिलास में और बड़े वर्तन में जल के ताप की दशा एक सी ही है। जल गिलास में जितना गर्म है उतना ही बड़े वर्तन में भी है परन्तु बड़े वर्तन वाले जल में ताप की मात्रा गिलास वाले जल के ताप की मात्रा से कहीं अधिक है। गिलास में जल को और गर्म करो तो इसका जल बड़े वर्तन वाले जल को अपेक्षा अधिक गर्म प्रतीत होगा। परन्तु इसका आशय यह नहीं समझना चाहिये कि गिलास में ताप की मात्रा अधिक हो जाती है। यदि गिलास के जल को बड़े बर्त्तन में डाल दें तो कुल जल पहले की अपेक्षा कुछ गर्म प्रतीत होगा, किन्तु गिलास के जल से ठंढा ही रहेगा। इससे विदित है कि एक वस्तु से दूसरी में ताप का बहाव दोनों की व्यक्त गर्मी की दशा पर ही निर्भर है। इसी प्रयोग में जब बड़े वर्तन में से गिलास में जल निकालते हैं तो बड़े बर्तन में ताप की मात्रा पूर्वापेक्षा न्यून रह जाती है क्योंकि कुछ ताप गर्म जल के साथ गिलास में भी निकल जाता है किन्तु दोनों में ताप की दशा अर्थात् तापक्रम एक सा ही रहता है। इससे सिद्ध है कि 'तापक्रम' (Temperature) और 'ताप की मात्रा' (Heat) बिलकुल भिन्न भिन्न बातें हैं।

इसी प्रकार यदि लोहे के एक बारीक तार को गर्म कर लाल कर लें तो इसका तापक्रम एक घड़े भर उबलते हुए जल से कहीं अधिक रहेगा। यदि इस तार से काग़ज़ को छुएँ तो काग़ज़ वहां से जल जायगा परन्तु घड़े भर उबलते हुए जल से नहीं जलेगा; लेकिन इस बात से यह आशय नहीं निकल सकता कि घड़े भर जल में ताप की मात्रा लाल लोहे के तार के ताप की मात्रा से न्यून है। काग़ज़ जलने का कारण केवल यही है कि काग़ज़ और तार के तापक्रम का अन्तर काग़ज़ और जल के तापक्रम के अन्तर से अत्यधिक है, और इसलिये तार से ताप तुरन्त ही शीघ्र गति से काग़ज़ में चला जाता है और काग़ज़ जल जाता है, परन्तु घड़े भर जल में ताप की मात्रा अधिक फैली रहती है। इस प्रयोग में भी ताप की मात्रा तार में घड़े वाले जल की मात्रा से कम रहती है।

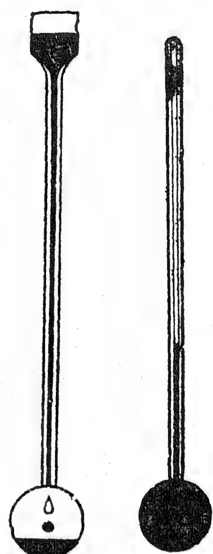
तापक्रम मापक की आवश्यकता—हमारी स्पर्शेन्द्रिय से ठंढे और गर्म में भेद तो मालूम हो जाता है परन्तु बहुत शुद्धता से नहीं; तापक्रम नापा तो जा ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त यदि दो वस्तुओं के ताप में न्यूनान्तर है तो स्पर्शेन्द्रिय से उनके तापक्रम की तुलना करने में बड़ा धोखा भी हो सकता है। जीवों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है; अतः स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ताप की ठीक २ जांच सदा नहीं हो सकती। इसी से तापक्रम नापने के लिये एक विशेष यंत्र की आवश्यकता है। यह देख लिया है कि हमारी स्पर्शेन्द्रिय ही प्रमाण नहीं मानी जा सकती क्योंकि हाथों का तापक्रम न्यूनाधिक हो सकता है। इन बातों के अतिरिक्त जैसा कि हमें आगे मालूम होगा कि भिन्न भिन्न पदार्थों की ताप ले जाने की न्यूनाधिक शक्ति होने के कारण एक ही तापक्रम होने पर भी दो पदार्थों का तापक्रम हाथ को एक सा ही नहीं जँचेगा। हमें ज्ञात है कि

ताप का सब से दृष्टिगोचर प्रभाव पदार्थों का प्रसार है। इसी सिद्धान्त को लेकर हम वस्तुओं की उष्णता व हरारत नापने के हेतु एक यंत्र बनाते हैं। इसी विशेष यंत्र को तापमापक (Thermometer) कहते हैं।

**तापमापक**—साधारणतया दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रथम तो यन्त्र में ऐसा पदार्थ होना आवश्यक है जो तपित होकर शीघ्र ही उबल कर वाष्प रूप में परिवर्तित न हो और न ताप के प्रभाव अथवा साधारणतया ठंढा होने पर जम ही जाय। ठोस पदार्थों का प्रसार इतना सूक्ष्म होता है कि साधारण ताप परिवर्त्तन में उनके प्रसार का नापना बड़ा ही दुर्लभ होता है। इसी प्रकार वायव्य पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होते और इनका प्रसार इतना अधिक होता है कि यन्त्र में यदि इनका प्रयोग किया जाय तो इनके प्रसार के नापने में भी कठिनता होगी और यन्त्र को बहुत बड़ा बनाने की आवश्यकता होगी। इसलिये तरल पदार्थों में से द्रव ही इसी कार्य के हेतु उपेक्षित हो सकता है। दूसरी बात यह है कि हमारी नाप इतनी सरल और सुलभ होनी चाहिये कि यन्त्र सार्वदेशिक और सार्वजनिक हो, ताकि यदि हम तापक्रम की इकाइयों में एक स्थान पर तापक्रम की संख्या लिख दें तो प्रत्येक व्यक्ति उसका आशय भली प्रकार समझ जाय। इन दोनों बातों को ध्यान में रख कर वैज्ञानिकों ने यन्त्र के हेतु साधारणतया पारे को ही उपयुक्त और उत्तम समझा है।

**प्रयोग ९**—यन्त्र बनाने की विधि : एक बहुत बारीक सूराख़ वाली ऐसी नली लो जिसके एक सिरे पर घुंडी और दूसरे सिरे पर एक कीप हो। कीप के नीचे नली को गर्म कर कुछ खींच लो ताकि इस स्थान पर एक पतली गर्दन की शक्ल बन जाय। घुंडी का काँच बारीक होना चाहिये और शेष नली का काँच मोटा,

ताकि नली पर बाहर के ताप का प्रभाव देर में हो और घुंडी पर शीघ्र हो जाय। नली को एकाकार होना भी आवश्यक है ताकि पारे का फैलाव नली में सब जगह बराबर बराबर हो। यदि अब नली में पारा डालो तो नली का सूराख़ बारीक होने के कारण यह कीप ही में रुक जायगा। पारे को घुंडी में भरने के लिये घुंडी को गर्म करके उसमें से कुछ वायु निकाल देते हैं। फिर ठंढक से ज्यों ज्यों भीतर का वायु सिकुड़ता है त्यों त्यों पारा कीप में से नीचे सरक कर भीतर भर जाता है। जब पारा नीचे उतरना बन्द हो जाय तो फिर घुंडी को गर्म करो। वायु गर्म होने पर फैल कर बाहर निकल जाता है और वायु ज्यों ज्यों सिकुड़ता है त्यों त्यों और अधिक पारा भर जाता है। इस विधि का एक दो बार पुनरावर्त्तन करने से घुँडी और नली पारे से भर जायंगे। फिर तापमापक यन्त्र को जिस तापक्रम तक बनाना हो उस तापक्रम पर रख कर नली की गर्दन पिघला कर बन्द कर दो। इस प्रकार तापमापक में केवल पारा ही रह जाता है। पारा ठंढा होकर सिकुड़ जाता है और पारे के ऊपर केवल पारदवाष्प ही रह जाता है। यह यन्त्र तो बन गया, किन्तु नापने की विधि अभी तक निश्चित नहीं हुई। बनाने के पश्चात् कुछ समय के लिये इस यन्त्र को रख देना चाहिये ताकि समय पाकर कांच वास्तविक दशा में हो जाय।



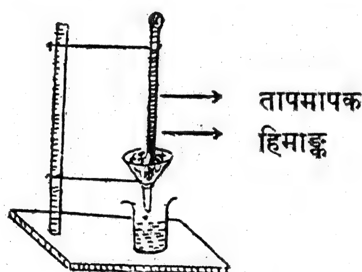
चित्र ६—तापमापक की नली

**तापक्रम का परिमाण**—प्रत्येक नाप के लिये हमें किसी इकाई (Unit) की आवश्यकता होती है वैज्ञानिकों ने तौल की इकाई को

२

ग्राम और नाप की इकाई को सेन्टीमीटर प्रमाणित कर रक्खा है। इसी प्रकार तापक्रम की कक्षा नापने के हेतु जल के हिमाङ्क* और क्वथनाङ्क* को हम प्रमाण मानते हैं क्योंकि शुद्ध जल के जमने व उबलने का तापक्रम साधारण दशा में सदा स्थायी ही होता है। इसके अतिरिक्त शुद्ध जल प्रत्येक स्थान पर सुविधा से मिल भी सकता है। साधारण वस्तुओं के तापक्रम हिमाङ्क और क्वथनाङ्क के अन्तर्गत ही रहते हैं।

प्रयोग १०—हिमाङ्क जानने के लिये एक कीप में हिम के छोटे छोटे टुकड़े भर दो और यन्त्र की घुंडी और नली के नीचे का भाग चित्रानुसार इन टुकड़ों के बीच में रख दो। देखोगे कि ठंढक से



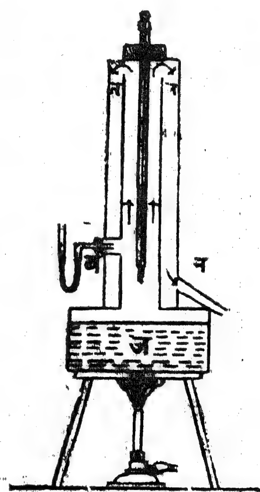

चित्र ७—हिमाङ्क निर्णय।

पारा सिकुड़ जाता है और नीचे उतर कर नियमित रूप से एक स्थान पर ठहर जाता है इस स्थान पर एक बारीक चिह्न अङ्कित

---

* जिस तापक्रम पर जल जम जाता है व जिस पर हिम पिघल कर जल रूप में परिवर्त्तित हो जाता है उसको हिमाङ्क कहते हैं। वाष्पाङ्क जल का वह तापक्रम होता है जिस पर कि जल उबल कर वाष्प रूप में परिवर्त्तित होता है।

कर दो। यही चिह्न हिमाङ्क होता है अर्थात् इसी चिह्न से जल के हिमरूप में परिवर्त्तन होने का तापक्रम सूचित होता है। जल हिम रूप में इससे अधिक तापक्रम पर नहीं हो सकता। तत्पश्चात् क्वथनाङ्क अर्थात् यन्त्र में वह स्थान, जहाँ तक पारा उबलते हुए पानी में रखने से फैलता है, निकालने के हेतु एक विशेष बर्तन में पानी उबाला जाता है। यन्त्र को बर्तन में इस प्रकार से रखते हैं कि घुंडी जल के तल पर भाफ में रहती है और घुंडी के ऊपर के भाग की नली भी भाफ ही में रहती है। चित्रानुसार एक बर्त्तन के भीतर दूसरा पानी गर्म करने का बर्तन होता है ताकि भाफ ठंढी न हो सके। 'ज' में जल उबलता है और उसकी वाष्प 'त' में ऊपर तक जाती है। वाष्प तापक्रम सब जगह एकसा ही रहता है और आवश्यकता से अधिक भाफ 'न' द्वारा निकल जाती है। 'ब' एक अन्य नली है जिसका सम्बन्ध भीतर के वाष्प से रहता है। इसके द्वारा वाष्प का आन्तरिक दबाव विदित होता रहता है। इसका जानना इसलिये आवश्यक है क्योंकि भिन्न भिन्न दबाव पर जल का क्वथनांक भी भिन्न भिन्न होता है। वायु मंडल का दबाव वायु भारमापक यन्त्र से ज्ञात हो सकता है। फिर 'ब' नली में जिसमें कोई द्रव पदार्थ व पारा रहता है दोनों ओर द्रव का तल देख वाष्प के दबाव को जान सकते हैं। यदि 'ब' के दोनों भागों में पारा समतल है तो इसका आशय यही है कि बर्त्तन में वाष्प दबाव उतना ही



चित्र ८—क्वथनाङ्क निर्णय

है जितना कि 'ब' के खुले हुए भाग में द्रव की सतह पर। दोनों तल बिल्कुल बराबर हैं तो वाष्प दबाव वायु मण्डल के के बराबर ही होता है। जब इस प्रकार जल कुछ देर उबलता रहता है तो पारा फैल कर नली में एक विशेष ऊँ पर जाकर ठहर जाता है। यही जल का क्वथनाङ्क निर्दिष्ट हो ज है। यन्त्र में इस ऊँचाई पर चिह्न लगा देते हैं। साधारण हिमाङ्क और क्वथनाङ्क सात सौ साठ मिलीमीटर वायु पर ही लगाते हैं। इन दोनों नियत स्थानों ( Fixed point के निश्चित हो जाने पर पारे को यन्त्र में इन दोनों में से स्थान पर देख कर बतलाया जा सकता है कि तापमापक य हिमाङ्क अंश पर ( व जल जमने के तापक्रम पर ) रक्ख अथवा जल के क्वथनाङ्क पर। परन्तु सामान्य प्रकार से न इतना शीत ही होता है और न इतना ताप ही। तापक्रम व इनके मध्यस्थ ही रहा करता है। अतएव बहुधा हमें इन द चिह्नों के बीच ही वाले तापक्रमों को देखने की आवश्यक पड़ती है। इस लिये हमें तापक्रम की कोई उचित इकाई बनानी पड़ेगी। यह तो विदित ही है कि ज्यों ज्यों पारे को य में गर्म करेंगे त्यों त्यों पारा अधिक फैलता जायगा। साधारणत तापक्रम की वृद्धि और पारे का प्रसार परस्पर समानुपाती होते हैं। इसलिये आवश्यक है कि हिमाङ्क से क्वथनाङ्क त नली की लम्बाई को छोटे छोटे और बराबर बराबर भागों विभाजित करें, ताकि हिमाङ्क से क्वथनाङ्क के किसी भी मध्य तापक्रम को जान सकें।

तापमापक के विभाग की तीन प्रथाएं प्रचलित हैं— पहली तो सेलसियस (Celsius) ने सन् १७४२ ई० निकाली थी। इस सर्वोत्तम पद्धति के अनुसार शतांशमाप

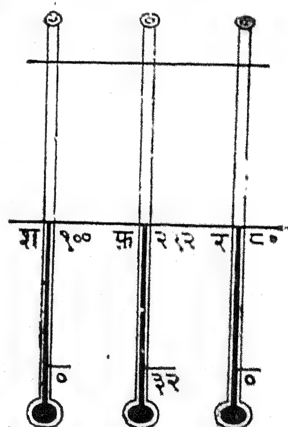
(Centigrade) बनाया जाता है। इसमें हिमाङ्क (Freezing point) पर ०° तापक्रम का और क्वथनाङ्क पर १००° तापक्रम का चिन्ह लगाते हैं और मध्यस्थ दूरी को १०० बराबर बराबर भागों में बाँट देते हैं। प्रत्येक भाग को तापमापक का एक अंश (degree) कहते हैं। वैज्ञानिक परिमाणों में इसी का प्रयोग होता है। अधिक शीत के कारण यन्त्र में पारा ०° श के नीचे उतर जाता है तो वहाँ तापक्रम के अङ्कों की संख्या को ऋण से चिन्हित करते हैं, इस प्रकार -१°, -२°, -३°, से आशय यह है कि तापक्रम हिमाङ्क से क्रमानुसार १°, २°, ३° अंश कम है। यदि तापक्रम उबलते हुए जल से अधिक कक्षा ( degrees ) का होता है तो क्वथनाङ्क के ऊपर यन्त्र में १०१°, १०२°, इ० चिन्ह अङ्कित कर देते हैं।

यदि किसी पदार्थ में तापमापक की घुंडी रखने से पारे का तल २५° के अङ्क पर आकर रुक जाता है तो कहते हैं कि अमुक वस्तु का तापक्रम '२५° श' ( २५° शतांश ) है।

दूसरी प्रथा को फ़हरनहीट ने सन् १७१४ ई० में सञ्चालित किया था। फ़हरनहीट (Fahrenheit) ने हिम और नौसादर के मिश्रण तथा मानुषिक शरीर को तापक्रमों के हेतु उपयुक्त प्रमाण माना था। मिश्रण के तापक्रम पर ०° का चिन्ह लगाया था और मनुष्य के शरीर के तापक्रम पर २४° का। परन्तु इन अंकों के बीच की दूरी अधिक होने के कारण उन्होंने प्रत्येक चिन्ह को चार चार भागों में बाँट लिया। इस प्रकार उनकी गणना से शरीर का तापक्रम ९६° रहा। तत्पश्चात् कुछ परिवर्त्तन से शरीर का तापक्रम ९८·४° मान लिया गया, जिसके अनुसार क्वथनाङ्क २१२° पर आकस्मिक आ पड़ा। शेष इसके बनाने की विधि वही है जो शतांशमापक की। इस तापमापक के अनुसार हिमाङ्क पर ३२° का चिन्ह होता है। इस प्रकार हिमाङ्क से कथनाङ्क की दूरी तक

यन्त्र में ( २१२ – ३२ ) = १८०° के बराबर बराबर चिन्ह रहते हैं। इसमें हिमाङ्क के नीचे ( ३२° से ) ०° तक ऋणांकित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह यन्त्र प्रायः फ्रांस देश में प्रयोग में आता है। इसी के एक रूपान्तर को हमारे देश में डाक्टर लोग भी प्रयोग में लाते हैं (Clinical thermometer)।

तीसरी विधि रोमर (Reaumur) तापमापक की है, जिसमें हिमाङ्क पर ०° और कथनांक पर ८०° का चिन्ह होता है। मध्यस्थ दूरी ८० बराबर बराबर भागों में बँटी रहती है। इन यन्त्रों में तापक्रम कक्षा की संख्या को °श, °फ, °रो में चिन्हित करते हैं। तीनों यन्त्रों में यह विदित है कि हिमांक और कथनाङ्क सदा एक ही तापक्रम को सूचित करते हैं। अर्थात् ०° श. = ३२° फ. = ०° रो. और १००° = २१२° फ = ८० °रो। इसलिये फहरनहीट का एक भाग शतांश मापक के $\frac{५}{९}$ अंश और रोमर के $\frac{४}{९}$ अंश के बराबर होता है। इस सम्बन्ध के जानने से एक प्रथा से तापक्रम को दूसरी प्रथा के तापक्रम में परिवर्तित कर सकते हैं।



चित्र ६ — १–शतांशमापक
२–फ़हरनहीट
३–रोमर

उदाहरण—(१) यदि शतांशमापक में पारा २०° व –१०° के अंकों पर चढ़ा हुआ है तो बताओ फहरनहीट तापमापक में किन किन अङ्कों पर होगा ?

यह विदित है कि पारा हिमाङ्क से २०°श. ऊंचा है।

$$\text{पर } १^\circ\text{श.} = \frac{९^\circ}{५}\text{फ.}$$

$\therefore$ २०°श. = $\frac{९}{५}$ × २०° = ३६°फ. हिमाङ्क से ऊपर;

परन्तु फ़हरनहीट में हिमांक पर चिन्ह ३२° का होता है।

∴ फ़हरनहीट में ३६° फ का चिह्न (३६+३२) = ६८°फ़ तापक्रम से सूचित होगा। इसी प्रकार −१०° श. का तात्पर्य यह है कि तापक्रम हिमांक से १०° नीचे है।

$$\therefore १^\circ श. = \frac{९^\circ}{५} फ$$

∴ −१०°श. = −१८°फ (अर्थात् हिमांक से १८° न्यून)

∴ −१०°श. तापक्रम = (३२—१८)°फ = १४°फ से सूचित होगा। इसी भाँति +२०°श = १६° रो और −१०°श = −८°रा।

उदाहरण (२)—फ़हरनहीट तापमापक के −२५°फ और ९५°फ. को शतांश तापमापक में सूचित करो।

—२५°फ. हिमांक से ३२+२५ = ५७ कक्षा फ़हरनहीट नीचे है।

$$परन्तु\ १^\circ फ. = \frac{५^\circ}{९} श.$$

$$\therefore ५७ फ. = \frac{५ \times ५७}{९} = ३१\frac{२^\circ}{३} श.\ हिमांक\ से\ नीचे$$

$$= -३१\frac{२^\circ}{३} श.$$

इसी प्रकार ९५° फ हिमाङ्क से (९५—३२) अर्थात् ६३° फ ऊपर है।

$$परन्तु\ १^\circ फ = \frac{५^\circ}{९} श$$

$$\therefore ६३^\circ फ. = \frac{५ \times ६३}{९} = ३५^\circ श\ हिमाङ्क\ से\ ऊपर।$$

∴ ९५° फ. शतांशमापक पर ३५° श. से सूचित होंगे।

उदाहरण ३—वह कौन सी संख्या है जिस अंश पर फ़हरनहीट और शतांशमापक पर एक ही तापक्रम सूचित होगा ?

मान लो अंश की संख्या 'क' है। 'क°' पर दोनों यन्त्रों में एक ही तापक्रम सूचित होता है, तो क° फ. हिमाङ्क से ( क°—३२° ) फ. ऊपर हुआ।

$$\text{लेकिन } १° \text{ श} = \frac{९°}{५} \text{ फ}$$

$$\therefore \text{क}° \text{ श} = \frac{९}{५}\text{क}° \text{ फ}$$

$$\therefore \frac{९}{५}\text{क}° \text{ फ} = (\text{क}—३२)° \text{ फ}$$

$$\therefore \frac{९}{५}\text{क}—\text{क} = —३२$$

$$\therefore \frac{४}{५}\text{क} = —३२ \text{ अर्थात् क} = —४०°$$

∴ —४०° पर दोनों तापमापकों में एक ही सा तापक्रम सूचित होगा।

यन्त्र बनाने में अशुद्धियों की सम्भावना—(१) तापमापक बनाने के हेतु यह आवश्यक है कि नली की मोटाई घुंडी के ऊपर सब जगह एक सी ही होनी चाहिये। यदि मोटाई एक सी न होगी तो हिमाङ्क से कथनाङ्क की दूरी को बराबर बराबर बाँटने से प्रत्येक अंश से पारे का प्रसार बराबर बराबर प्रकट नहीं होगा जिससे कि तापक्रम की एक ही सी कक्षा सूचित हो सके। नली की एकाकृति देखने के लिये नली में कुछ पारा ( २ व ३ सेंटीमीटर की लम्बाई में ) भर लिया करते हैं और इसी टुकड़े की लम्बाई को तापमापक की नली में भिन्न भिन्न स्थानों पर नाप लिया करते हैं। यदि ऊपर से नीचे तक पारे की लम्बाई नली में वही रहे तो इससे सिद्ध होता है कि नली एकाकार है।

( २ ) जैसा पहले भी बता चुके हैं प्रत्येक द्रव का क्वथनाङ्क द्रव के ऊपर दबाव पर भी निर्भर होता है जल १००° श. व २१२° फ. पर केवल ७६० सहस्रांशमीटर दबाव पर उबलता है। यदि जल पर वाष्प दबाव ७६० सहस्रांशमीटर पारें से अधिक हो तो जल का क्वथनाङ्क भी १००° श. से अधिक होगा। यदि वाष्प दबाव इस मात्रा से कम हो तो क्वथनाङ्क भी १००° श. से कम ही पर होगा। इस बात को हम किसी अगले अध्याय में सिद्ध करेंगे। परन्तु इसके हेतु तापमापक में क्वथनाङ्क चिन्हित करते समय निम्नलिखित नियम के अनुसार शुद्धि कर लिया करते हैं। २६·८ सहस्रांशमीटर वायुभार की अधिकता से क्वथनाङ्क १° श बढ़ जाता है और १४·९ सहस्रांशमीटर वायुभार की अधिकता से १° फ. बढ़ जाया करता है। इसी प्रकार दबाव के इतने ही न्यून होने से क्वथनाङ्क भी १° श. व १° फ. घट जाता है। उदाहरणार्थ, यदि वायुजनित भार साधारण दबाव ( ७६० सहस्रांशमीटर पारे ) से २०·१ सहस्रांशमीटर न्यून हो, अर्थात् वायुजनित भार ७३९·९ सहस्रांशमीटर हो तो क्वथनाङ्क भी १००° श. से $\frac{२०·१}{२६·८}$ = ·७५° श न्यून हो जायगा। यदि इस वायुभार पर जल उबल रहा हो तो तापमापक अङ्कित करते समय जहाँ पर पारा स्थायी रूप से ठहर जाय वहाँ पर केवल ९९·°२५ श. का ही चिह्न रखना चाहिये, १००° का नहीं।

इसी प्रकार यदि कहीं वायुजनित भार ८००·२ सहस्रांशमीटर है तो वहाँ पर उबलते हुए पानी के तापक्रम पर पारा यन्त्र में जिस स्थान पर ठहर जाय उस स्थान पर १००° श. का नहीं किन्तु १०१° ५ श. का चिह्न रहना चाहिये।

**तापमापकों में केवल पारे का प्रयोग क्यों करते हैं ?**

इसके कई कारण हैं :—

( १ ) पारा ताप का अच्छा संचालक है, इसलिये यन्त्र जिस वस्तु में रक्खा जाता है उसी का तापक्रम शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है।

( २ ) पारे के तापक्रम बढ़ने में अधिक ताप की आवश्यकता नहीं होती, इसलिये जिस वस्तु का तापक्रम देखा जाता है उसके तापक्रम के तापमापक रखने से अधिक अन्तर की सम्भावना नहीं होती।

( ३ ) पारे का प्रसार समवृद्धिमान है, और प्रत्येक तापक्रम पर एक अंश के लिये इसका प्रसार एक सा ही होता है और काफी होता है।

( ४ ) पारा शुद्ध रूप में प्राप्य है।

( ५ ) पारा नली को न तो भिगोता है और न कांच में पानी की तथा अन्य द्रवों की भांति लगता है। इससे तापमापक का निरीक्षण करते समय अधिक देर की आवश्यकता नहीं होती।

( ६ ) अपारदर्शक होने के कारण पारे को अन्य द्रवों की अपेक्षा सरलता से देख सकते हैं। यह चमकदार होता है।

( ७ ) पारे का क्वथनाङ्क ३५७° श. है और जमने का तापक्रम – ३९°श. है इसलिये हम साधारण तापक्रम देखने के हेतु इसका भली भाँति प्रयोग कर सकते हैं।

## अन्य तापमापकयन्त्र

**ज्वरमापक यन्त्र** (Clinical thermometer)—शतांश-मापक, फ़हरनहीट और रोमर यंत्रों के अतिरिक्त विशेष कार्यों में सुविधा के लिये अन्य अन्य तापमापक यन्त्र बनाये जाते हैं। वैद्य व डाक्टर लोग मनुष्यों का ज्वर देखने के लिये साधारण ताप-मापक का प्रयोग नहीं कर सकते। एक तो ये तापमापक बड़े होते हैं और जेब में रखने के योग्य नहीं होते। दूसरे इनमें कुछ अशुद्धि

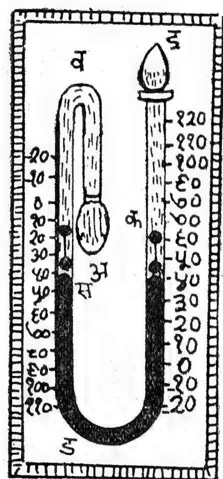
भी हो सकती है जो कि और कार्यों के लिये क्षम्य है। तीसरे इनके अंकों को दशमलव में नहीं पढ़ सकते। चौथे यदि साधारण तापमापक से शरीर का ज्वर भी देखा जाय तो शरीर से अलग होते ही इसका तापक्रम घट जायगा और रोगी के असली तापक्रम का डाक्टर को पता नहीं लग सकता। इन सब बातों के अतिरिक्त स्वस्थ मनुष्य का स्वाभाविक तापक्रम ९८°.४ फ. होता है और न्यूनाति न्यून ९५° फ और अधिकाधिक ११०° फ. हो सकता है। इसलिये मनुष्य का तापक्रम देखने के लिये फ़हरनहीट की अधिक कक्षाओं की आवश्यकता नहीं होती। ज्वरमापक यन्त्र में घुंडी के निकट पारे के ऊपर एक स्थान पर नली बहुत ही बारीक बना दी जाती है और इसके ऊपर अन्य तापमापकों की भाँति साधारण रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि इस तापमापक की घुंडी को रोगी के शरीर में लगाया जाता है तो पारे का नली में प्रसार होने के पश्चात् घुंडी वाले पारे का सम्बन्ध ठण्ढा होने पर शेष रेखा के से टूट जाता है। पारे की रेखा शरीर द्वारा जहाँ तब बढ़ी थी वहीं पर रह जाती है जिसको कि बाद में भी देख सकते हैं। यदि इसमें यह युक्ति न हो तो शरीर से हटाते ही पारा अपना स्थान छोड़ कर नीचे उतर आवेगा। इस यन्त्र में ९५° से ११०° फ तक चिह्न होते हैं। प्रत्येक अंश को आवश्यकतानुसार दस दस भागों में विभाजित किया जाता है और




चित्र १०—ज्वर-मापकयन्त्र

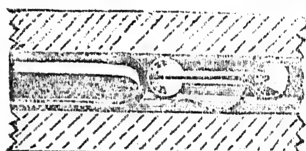
अशुद्धि की इस यन्त्र में कम सम्भावना रहती है। इस यन्त्र से हम कोई अन्य काम नहीं ले सकते। इसमें यह विशेष सुविधा है कि शरीर का तापक्रम इसके लगाने के कई घण्टे पश्चात् भी जाना जा सकता है। प्रयोग में लाने के लिये चढ़े हुए पारे को एक झटके से नीचे उतार लेते हैं, फिर इसकी घुँडी साधारणतया कुछ देरी के लिये मुँह में अथवा काँख में लगा देते हैं। एक व दो मिनट के बाद निकाल कर फिर यह देख लेते हैं कि पारा कहाँ तक चढ़ गया है।

**महत्तम और न्यूनतम तापमापक** ( Maximum aud minimum thermometer)—प्रयोगशालाओं और वेधालयों में प्रायः यह देखने को कि दिन भर में अधिक से अधिक और न्यूनातिन्यून कितना तापक्रम रहा है, एक विशेष यन्त्र की आवश्यकता पड़ती है। साधारण तापमापकों को प्रत्येक समय देखते रहना और लिखना असम्भव सा है, इस हेतु महत्तम और न्यूनतम तापमापक बनाया जाता है इसका रूप चित्र ११ से विदित है। 'अ व स ड इ' एक नली है जो कि दो स्थानों पर 'व' और 'ड' पर मुड़ रही है। नली के 'अ ब स' भाग में एलकाहल भरा हुआ है। 'स ड क' में पारा और 'क इ' भाग में फिर एलकाहल है। 'इ' घुंडी में कुछ स्थान बिलकुल शून्य रहता है (इस स्थान पर केवल एलकाहल का वाष्प रहता है)। दोनों ओर की नलियों



चित्र ११—महत्तम और न्यूनतम तापमापक।

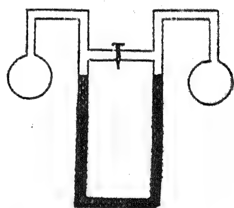
में पारे पर लोहे के चटुए सूचक का काम करते हैं। दिन भर में जब न्यूनातिन्यून तापक्रम होता है तो 'अ ब स' भाग के एलकाहल का संकुचित होने के कारण न्यूनातिन्यून घनफल रहा जाता है और 'स' पर पारा जितना ऊपर चढ़ सकता है उतना ही सूचक को 'ब' की ओर ढकेल देता है, और इस की नली में चिह्न ऊपर से नीचे को लगे रहने के कारण सूचक द्वारा कम से कम तापक्रम ज्ञात हो जाता है, क्योंकि सूचक जहाँ तक पारे से ढकेल दिया जाता है वहीं पर अटक जाता है। इस प्रकार किसी समय का न्यूनातिन्यून तापक्रम हम जान सकते हैं। इस भाँति जब वायुमण्डल का तापक्रम बढ़ता है तो 'अ' से 'क' तक का एलकाहल और पारा फैल कर सूचक को ऊपर ढकेल देता है। 'क' के ऊपर की ओर सूचक अटक कर रह जाता है। इसके द्वारा कितने ही समय के पश्चात् भी अधिक से अधिक तापक्रम विदित हो जाता है। लोहे के सूचक इस प्रकार बने होते हैं कि नली में किसी स्थान पर ठहर सकते हैं। पारे की अपेक्षा लोहा सदा हलका होता है, इस कारण दोनों ओर के सूचक पारे के ऊपर ही तैरते रहते हैं। यह सूचक जिधर को पारा उन्हें ढकेलता है उधर को ही चले जाते हैं। सूचकों को ठहरे हुए स्थान से उतारने के लिये साधारणतया इस तापमापक के साथ एक चुम्बक भी रहता है, जिसके द्वारा सूचक को फिर पारे के तल पर खींच सकते हैं। यह यन्त्र एक साधारण काठ की पट्टी पर चढ़ा रहता है।


चित्र १२—अटुआ सूचक

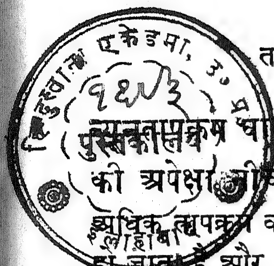
एलकाहल तापमापक—इस तापमापक में पारे के स्थान पर एलकाहल भरा जाता है। इसके द्वारा अन्य तापमापकों की अपेक्षा कम तापक्रम भी नापा जा सकता है। पारा – २९° श. तक

ठण्ढा करने से जम जाता है और एलकाहल – ११२° श तक न जमने के कारण इस कक्षा के शीत के तापक्रम को भी सूचित कर सकता है। परन्तु एलकाहल के तापमापकों में एक विशेष असुविधा यह है कि एलकाहल की भिन्न भिन्न तापक्रमों पर एक कक्षा शतांश के लिये पारे की भांति नियमानुसार समप्रसार नहीं होता। इस कारण इस तापमापक का प्रत्येक अंश बराबर नहीं रहता और इसमें चिह्न अङ्कित करते समय बड़ी देख रेख की आवश्यकता रहती है। इसका प्रयोग केवल शीत के तापक्रमों को देखने में होता है।

**असमतापमापक** (Differential thermometer)—कभी कभी दो द्रवों के तापक्रमों का इतना कम अन्तर होता है कि साधारण तापमापक से उनके तापक्रमों में भेद का भली भाँति बोध नहीं होता। इसके दर्शाने के लिये एक विशेष प्रकार का तापमापक बनाते हैं जिसका नाम असमताप-मापक है। इसमें चित्रानुसार एक काँच की नली सम कोणों में छः स्थानों पर मुड़ी रहती है। और इस बड़ी नली के दोनों सिरों पर एक एक बड़ी घुंडी रहती है और नली कहीं से भी खुली नहीं रहती। नली में रंगतदार जल व अन्य द्रव रहता है। जब दोनों घुंडियों का तापक्रम समान होता है तो बीच की नली में जल व द्रव का तल एक सा ही रहता है। परन्तु जब इसमें से कोई सी एक घुंडी दूसरी की अपेक्षा अधिक तापक्रम पर रहती है तो अधिक तापक्रम वाली घुंडी के पास की नली में जल का तल



चित्र १३—असमताप-मापक




न्यूनतापक्रम वाली घुंडी के निकटवर्ती नली में जल के तल की अपेक्षा ऊँचा हो जाता है। इसका कारण यह है कि अधिक तापक्रम वाली घुंडी में वाष्पीय दबाव अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है और अपनी ओर से द्रव को ढकेल कर दूसरी ओर कर देता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न वस्तुओं के तापक्रमों में यदि न्यूनान्तर होता है, तो तुरन्त इस यन्त्र से विदित हो जाता है। परन्तु इस यन्त्र के द्वारा किसी वस्तु का तापक्रम अंशों में नहीं जाना जा सकता। बीच की नली में एक ऐसी वायवागम्य डाट लगी रहती है कि इसको खोलने से भुजाओं का परस्पर सम्बन्ध हो जाता है। इसके द्वारा जब असमताप-मापक का प्रयोग करना होता है तो दोनों भुजाओं में द्रव एक ही तल पर कर लेते हैं, और डाट को बन्द कर देते हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( २ )।

( १ ) ताप की मात्रा और तापक्रम में क्या भेद है? तापमापक के कथनाङ्क की सत्यता निरीक्षण करने के हेतु जो प्रयोग तुमने किया हो उसका वर्णन करो।

( २ ) (अ) तापमापक किस सिद्धान्त पर बना है? (ब) तापमापकों से क्या नापते हो? (स) तापमापकों में पारे को सर्वोत्तम पदार्थ क्यों समझते हैं? क्या तापमापक में जल का भी प्रयोग कर सकते हैं?

( ३ ) तापक्रम की इकाई क्या है? फैहरनहीट और सेंटीग्रेड इकाइयों में क्या भेद है? शतांशमापक पर चिह्न कैसे अङ्कित किये जाते हैं?

( ४ ) तुम्हें शतांशमापक को जाँचने की आवश्यकता हो तो स्थिर बिन्दुओं की सत्यता देखने के लिये क्या क्या प्रयोग करोगे?

( ५ ) (अ) फैहरनहीट और सेंटीग्रेड तापमापकों पर किस तापक्रम पर चिह्नों की एक ही संख्या होगी ? (ब) फैहरनहीट पर शतांश तापमापक की अपेक्षा किस संख्या पर तापक्रम चौगुना होगा ?

( ६ ) यदि फैहरनहीट तापमापक पर तापक्रम ५९°, ०°, – १०°, ९८·४° हो तो इन तापक्रमों पर शतांश तापमापक पर क्या चिह्न होंगे ? ५° श और – १५° को फैहरनहीट अंशों में परिवर्त्तित करो ।

( ७ ) महत्तम और न्यूनतम तापमापक का सचित्र वर्णन करो । इसका प्रयोग काहे के लिये और कैसे होता है ?

( ८ ) साधारण तापमापक और ज्वरमापक में क्या २ भेद हैं ? ज्वर-मापकों के बनाने वाले ज्वरमापक पर कभी $\frac{१}{२}$ मिनट, कभी १ मिनट और कभी १$\frac{१}{२}$ मिनट लगाने के लिये लिख देते हैं । इनमें तुम क्या भेद समझते हो ?

( ९ ) किसी कमरे में २ तापमापक लटक रहे हैं । एक में तापक्रम १५° है और दूसरे में ५९° है । अपनी गणना से बताओ कि इस अन्तर से तुम क्या २ अभिप्राय समझ सकते हो ।

(१०) एक काँच की सुराही में छटांक भर जल है । इस सुराही पर एक वायवागम्य काग लग रही है । काग में सूराख करके एक मुड़ी हुई नली ऐसे लगा दी गई है कि इसका एक सिरा तो सुराही के जल में डुबा हुआ है और दूसरा सिरा खुले हुए जल के एक गिलास में । यदि सुराही के जल को थोड़ी देर उबाल कर ठण्ढा कर लें तो बताओ तुम्हें क्या क्या घटनायें दृष्टिगोचर होंगी और क्यों ?

(११) असमतापक और ज्वरमापक का वर्णन करो । इनमें क्या अन्तर होता है ?

(१२) डाक्टर ने ज्वरमापक को धोने के लिये एक लड़के को दिया। पास ही एक बरतन में जल उबल रहा था, लड़के ने ज्वरमापक उसी से धोकर डाक्टर को लौटा दिया। डाक्टर ने देख कर कहा कि ज्वरमापक खराब हो गया है। इसका क्या कारण है?

(१३) एलकोहल और जल के गुणों और अवगुणों का, तापमापक में प्रयोग करने के लिये, मुकाबला करो।

(१४) एक शतांशमापक की स्थिर विन्दुयें जाँचने पर ठीक उतरती हैं, परन्तु इससे कमरे के साधारण तापक्रम ठीक नहीं दिखाई देते, किन्तु अशुद्ध होते हैं। यह अशुद्धि किन किन कारणों से हो सकती है। अपने उत्तर का सत्यापन कैसे करोगे?

(१५) यह बात प्रयोग द्वारा कैसे दिखाओगे कि $१^\circ$श $= \frac{९}{५}^\circ$ फै.?

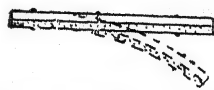
---

## तीसरा अध्याय।

## ठोस, द्रव और वायव्य पदार्थों के प्रसारगुणक।

**प्रसार में भिन्नता**—यह पहिले ही विदित हो चुका है कि यदि हम पदार्थों—ठोस, द्रव, व वायव्य—को तपाते हैं तो उन सब में कुछ न कुछ प्रसार होता है और वे ठंढा करने पर फिर सिकुड़ कर पूर्वरूप में आ जाते हैं।

प्रयोग ११—एक ही परिमाण की लगभग दो फ़ीट लम्बी भिन्न भिन्न धातुओं की पत्तियाँ लो (मान लो लोहे और पीतल की) और उन्हें कीलों द्वारा परस्पर जड़वा लो। मिश्र छड़ को सीधी कर लो और इस दोहरी पत्ती को गर्म कर लो। देखो कि गर्म करने पर मिश्र छड़ टेढ़ी पड़ जाती है। इसका कारण क्या हो



चित्र १४—भिन्न २ धातुओं का भिन्न २ प्रसार।

सकता है ? मुड़ने का कारण केवल यही है कि इनमें से एक पत्ती ( लोहे की ) दूसरी ( पीतल की पत्ती ) की अपेक्षा कम फैलती है। न्यून प्रसार वाली पत्ती भीतर की ओर झुक जाती है और पीतल की अधिक प्रसार करने वाली पत्ती ऊपर की ओर होती है। **इससे सिद्ध होता है कि भिन्न भिन्न ठोसों का प्रसार भिन्न २ सीमाओं तक होता है।** कोई कोई धातुएं तो ऐसी हैं जिनका प्रसार नहीं ही के बराबर होता है और कोई पदार्थ ( उदाहरणार्थ वायव्य ) ताप से इतना प्रसार पाते हैं कि ०° श से ३००° श तक गर्म करने से उनका आयतन दोगुने से भी अधिक हो जाता है।

प्रसारगुणक—यह प्रत्यक्ष है कि ठोस पदार्थों की सीमा ठीक ठीक नप सकती है इसलिये उनका प्रसार देखना आवश्यक है कि किस प्रकार से होता है। **पदार्थों का प्रसार ( Expansion ) जानने और उनकी तुलना करने के लिये पदार्थ को इकाई के परिमाण में ले लेते हैं। १° शतांश गर्म करने से जितना प्रसार होता है उस प्रसार को उस पदार्थ की इकाई का प्रसार अथवा प्रसार-गुणक कहते हैं।** अथवा यह कह सकते हैं **कि किसी पदार्थ का प्रसारगुणक (Coefficient of expansion) पदार्थ को १° श गर्म करने से जितना प्रसार होता है उसके और पदार्थ के प्रारम्भिक परिमाण के अनुपात को कहते हैं।**

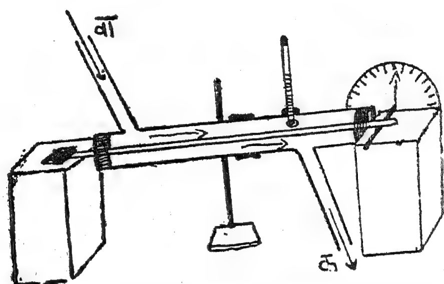
## ठोस पदार्थों का प्रसार

**लम्ब प्रसार गुणक**—मान लो हम दो मीटर लम्बी पीतल की छड़को १००° श गर्म करते हैं और नापने से पता चलता है

कि इसकी लम्बान में ·३७८ सेंटीमीटर की वृद्धि हो जाती है। इसलिये २०० सेंटीमीटर लम्बी छड़ का १००°श के लिये ·३७८ सें० प्रसार हुआ। यदि इसको केवल ५०° श ही गर्म करते हैं तो इसका प्रसार केवल ·१८९ सेंटीमीटर ही होगा। इसी प्रकार यदि केवल एक मीटर लम्बी लोहे की छड़ को १००° श गर्म करें तो प्रसार ·११७ सेंटीमीटर ही पाया जाता है और २००° श तक गर्म करने से प्रसार भी पहले से दुगुना अर्थात् ·२३४ सेंटीमीटर पाया जाता है, परन्तु ५० सेंटीमीटर लम्बी लोहे की छड़ को २००° श गर्म किया जाता है तो इसकी लम्बान में ·११७ सेंटीमीटर ही प्रसार होता है। इससे ज्ञात होता है कि लम्ब प्रसार गुणक साधारणतया आदिम लम्बाई और तापक्रम के भेद पर ही निर्भर रहता है। **इसलिये किसी पदार्थ का लम्ब प्रसारगुणक १° गर्म करने से लम्बाई में प्रसार और उस पदार्थ की आदिम लम्बाई का अनुपात होता है।** अथवा यह भी कह सकते हैं कि जो एक इकाई लम्बे छड़ का ०° श. से १° श. तक तापक्रम बढ़ाने से प्रसार होता है उसी को पदार्थ का लम्ब प्रसार-गुणक ( Coefficient of linear expansion ) कहते हैं।

प्रयोग १२—**लम्ब प्रसार गुणक नापने की विधि।** लम्ब प्रसार नापने के लिये, जो यन्त्र निम्नाङ्कित्र चित्र में दिया गया है, लो और इसका ध्यान से निरीक्षण करो। किसी धातु की एक छड़ लो जिसको एक ऐसी काँच की नली के बीच में रक्खो जिसमें भाफ जाने आने का मार्ग हो। 'वा' नली द्वारा काँच की मोटी नली में जिसमें कि धातु का छड़ रक्खा है जल की भाफ जाती रहती है और 'क' नली द्वारा निकलती रहती है। कुछ मिनट तक जब भाफ नली में छड़ पर से होकर जाती है

तो छड़ का तापक्रम बढ़ने पर प्रसार होता है। फलतः छड़ के नीचे की सूई कुछ घूम जाती है। सूई के सिरे पर एक




चित्र १५—धातु का लम्ब प्रसारगुणक निर्णय।

सींक लगी रहती है जो कि सूई के घुमाव को डिग्री व अंशों में पैमाने पर सूचित करती रहती है। यदि इस सूई का व्यास 'व' सेंटीमीटर है तो सूई के एक पूरे चक्कर में छड़ की लम्बाई २ ( व $\times \pi$ ) सेंटीमीटर बढ़ेगी। यदि सींक केवल घ° घूमी है तो छड़ की लम्बाई मेंप्रसार केवल २ $\pi$ व $\times \frac{घ}{३६०}$ सेंटीमीटर होगा, क्योंकि जितनी दूर सूई जावेगी उससे दोगुना प्रसार छड़ का होगा। इस कुल प्रसार को छड़ की लम्बाई और जितना इसका तापक्रम बढ़ा है उससे भाग दें तो इस धातु का लम्बप्रसारगुणक निकल आता है। इस प्रयोग में यह ध्यान देने योग्य बात है कि सूई का व्यास ठीक २ नापना चाहिये। इसके लिये एक ही प्रकार की कई एक सूइयाँ लेकर एक काग़ज़ पर बराबर २ रख लेते हैं और कुल चौड़ाई को नाप कर सूइयों की संख्या से भाग देकर एक सूई का औसत व्यास निकाल लेते हैं।

उपरोक्त विधि द्वारा हमें बहुत सी धातुओं अथवा ठोस पदार्थों का लम्ब प्रसार गुणक ज्ञात हो सकता है।

मान लो किसी छड़ की ०° श पर लम्बाई $ल_०$ है और त°श पर लम्बाई $ल_त$ सेंटीमीटर है। और लम्ब प्रसार गुणक 'ल' है

तो $$ल = \frac{ल_त - ल_०}{ल_० \times त}$$

$$\therefore \quad ल_त - ल_० = ल_० \times त \times ल$$

$$\therefore \quad ल_त = ल_० (१ + त \times ल) \text{ सेंटीमीटर}$$

इस समीकरण द्वारा, यदि हमें किसी पदार्थ की प्रारम्भिक लम्बाई, तापक्रम, और पदार्थ का लम्बप्रसारगुणक (Coefficient of linear expansion) मालूम हो तो पदार्थ की किसी तापक्रम त° श पर लम्बाई $ल_त$ भी जानी जा सकती है।

उदाहरण—ताम्बे का लम्ब प्रसारगुणक ·००००१७ है, यदि ३० गज़ लम्बी ०° श पर ताम्बे की छड़ लें तो बताओ १००° श पर इसकी क्या लम्बाई होगी ?

मान लो १००° श पर छड़ की लम्बाई $ल_{१००}$ होगी।

तो $ल_{१००} = ल_० (१ + ल \times त)$ [ उपरोक्त समीकरण अनुसार

$$= ३० (१ + ·००००१७ \times १००)$$

$$= ३०·०५१ \text{ गज़।}$$

∴ छड़ की लम्बाई १००° श पर ३०·०५१ गज़ हो जावेगी।

कुछ पदार्थों के लम्ब प्रसार गुणक :—

| धातु व पदार्थ | लम्ब प्रसारगुणक |
|---|---|
| आबनूस | ·००००७७ |
| एल्यूमिनियम | ·००००२२ |
| काँच | ·००००००८९ |
| गन्धक | ·००००६ |

| धातु व पदार्थ | लम्ब प्रसारगुणक |
|---|---|
| चाँदी | ·००००१९४ |
| जस्त | ·००००२९८ |
| ताम्र | ·००००१६७ |
| टीन | ·००००२३ |
| पक्का लोहा | ·००००११ |
| पीतल | ·००००१८९ |
| प्लाटिनम | ·०००००९९ |
| लोहा | ·००००११७ |
| सीसा | ·००००२८ |
| सुवर्ण | ·००००१४२ |
| हिम | ·००००५ |

इन संख्याओं के पढ़ने से प्रत्यक्ष है कि लगभग प्रत्येक ठोस पदार्थ का लम्ब प्रसारगुणक बहुत न्यून होता है। इसी कारण इसके नापने में बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं और सावधानता को आवश्यकता है। उक्त संख्याओं से यह भी प्रत्यक्ष है कि कांच और प्लाटिनम का प्रसारगुणक एक सा ही होता है। इसलिये वैज्ञानिक यन्त्रों में सदा जिस स्थान पर कांच के साथ धातु के जोड़ने की आवश्यकता पड़ती है प्लाटिनम ही झाला जाता है। यदि प्लाटिनम के स्थान पर अन्य धातु के तार को कांच के साथ झाल दें तो ठण्ढा होने पर कांच तड़ख जायगा। ऊपर की पाटी देखने से ज्ञात होता है कि अन्य धातुओं की अपेक्षा कांच कम संकुचित होता है इसलिये किसी अन्य धातु को काँच के साथ झालने से धातु ठण्ढी होने पर अपने अधिक संकुचन से कांच पर अधिक खिंचाव डालकर तोड़ डालती है। यदि काँच के बीच में किसी प्रकार ताम्बा व अन्य धातु जमा भी दिया जाय तो यन्त्र को गर्म

करते समय ताम्बा अपने अधिक प्रसार से कांच को तुरन्त तोड़ डालेगा।

**वर्गीय प्रसारगुणक**—उपरोक्त लेखानुसार प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक वस्तु गर्म करने पर लम्बाई में फैलती है। पर ऐसा ही नहीं है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रत्येक पदार्थ का प्रसार चारों ओर को भी होता है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ गर्म करने पर लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनों ही ओर को फैलता है। तल वाले पदार्थ को गर्म करने पर जो उसके १ वर्ग इकाई क्षेत्र में १° श. गर्म करने से प्रसार होता है उसे उस पदार्थ का क्षेत्र प्रसार गुणक व वर्गीय प्रसार गुणक कहते हैं। यह भी कह सकते हैं कि किसी तल को १° श गर्म करने पर जो प्रसार होता है उसका प्रारम्भिक तापक्रम वाले तल के क्षेत्र से जो अनुपात होता है, उसको पदार्थ का वर्गीय प्रसार गुणक ( Coefficient of superficial expansion ) कहते हैं।

यदि किसी तल का २° श. पर क्षेत्रफल $= ध_{\circ}$

और उसी तल का त° श. पर क्षेत्रफल $= ध_{त}$

$$\text{तो वर्गीय व क्षेत्र प्रसार गुणक } ब = \frac{ध_{त} - ध_{\circ}}{ध_{\circ}\, त}$$

$$\therefore ध_{त} = ध_{\circ}(१ + ब \times त)$$

परन्तु क्योंकि साधारण तलों को क्षेत्रफल में नापते हैं और क्षेत्रफल का परिमाण लम्बाइयों को नाप कर उसके गुणनफल पर निर्भर है इसलिये वर्गीय प्रसार गुणक भी लम्बप्रसार गुणक की मात्रा से ही निश्चित करते हैं। मान लो किसी धातु व अन्य पदार्थ

की एक सेंटीमीटर भुजावाली वर्गाकार चादर को १° श गर्म करते हैं। यदि धातु का लम्ब प्रसारगुणक 'ल' है तो वर्गाकार चादर की प्रत्येक भुजा प्रसार से ( १+ल ) सेंटीमीटर लम्बी हो जायगी। गर्म होने के पीछे चादर का क्षेत्रफल ( १+ल )$^2$ वर्ग सेंटीमीटर हो जायगा। परन्तु ( १+ल )$^2$ = १+२ ल+ल$^2$ वर्ग सेंटीमीटर। यहाँ पर 'ल' एक न्यून मात्रा होने के कारण ल$^2$ अतिन्यून हो जाती है, इसलिये इस संख्या को अपनी गणना से बिलकुल छोड़ देने में विशेष हानि नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य यही है कि १ वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र को १° श गर्म करने से क्षेत्रफल १+२ ल वर्ग सेंटीमीटर हो जाता है और एक वर्ग सेंटीमीटर का प्रसार '२ ल' वर्ग सेंटीमीटर होता है।

इसलिये व = २ल

∴ उपरोक्त समीकरण $ध_त = ध_० ( १+२ ल. त )$ हो जाती है। इस गणना से यह विदित है कि **किसी पदार्थ का क्षेत्र प्रसार गुणक उसके लम्ब प्रसार गुणक से दो-गुणा होता है।**

**भौतिक घनों का घनमूलीय प्रसारगुणक**—जैसा कि पहिले बता चुके हैं पदार्थ चारों ओर को फैलते हैं। उनको गर्म करने से उनके घनफल में वृद्धि हो जाती है। इसको नापने के लिये जितना घनप्रसार एक घन इकाई पदार्थ को १° श गर्म करने से होता है उसको घन व घनमूलीय प्रसारगुणक कहते हैं। मान लो किसी धातु का एक ऐसा समघन है जिसकी प्रत्येक भुजा १ सेंटीमीटर लम्बी है और जिसका लम्ब प्रसारगुणक 'ल' है। यदि ऐसे समघन को १° श. गर्म करें तो इसकी प्रत्येक भुजा प्रसार पाकर (१+ल ) सेंटीमीटर हो जायगी और इसका घनफल ( १+ल )$^3$ घन सेंटीमीटर हो जावेगा।

इसलिये घन प्रसारगुणक $= [(१+ल)^३ - १]$ घन सेंटीमीटर हुआ

$= १ + ३ ल + ३ ल^२ + ल^३ - १$

$= ३ ल + ३ ल^२ + ल^३$ घन सेंटीमीटर

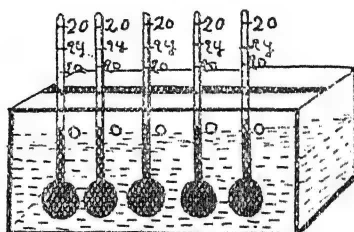
परन्तु 'ल' अतिन्यून संख्या होने के कारण $ल^३$ और $ल^२$ न्यूनातिन्यून संख्यायें होंगी जिनको त्यागने से हमारी गणना में कोई विशेष अशुद्धि नहीं हो सकती। **इसलिये घनप्रसार-गुणक लम्बप्रसार गुणक का तिगुना होता है (= ३ ल)।** इस प्रकार १ इकाई घनफल को १° श गर्म करने पर जो वृद्धि होती है उसे घन प्रसारगुणक (Coefficient of cubical expansion) कहते हैं।

इन सब गणनाओं का यह आशय हुआ कि यदि किसी पदार्थ का एक प्रकार का प्रसार गुणक दे रक्खा हो तो दूसरे दोनों प्रकार का भी प्रसारगुणक निकाल सकते हैं।

## द्रवों का प्रसारगुणक

**भिन्न भिन्न द्रवों के प्रसार।** प्रयोग १३—जिस प्रकार ठोसों के लम्ब प्रसारगुणक भिन्न भिन्न पदार्थों के लिये भिन्न भिन्न होते हैं, उसी प्रकार द्रवों के प्रसार गुणक भी भिन्न भिन्न होते हैं। चार व पाँच बराबर २ काँच की सुराहियाँ लो और इनमें ठीक ठीक बैठने वाली एक एक सूराख़ की काग लो। प्रत्येक सुराही की काग में एक एक सीधी लगभग एक फुट लम्बी नली लगा दो। प्रत्येक सुराही को गर्दन तक भिन्न भिन्न द्रवों से (जैसे दारू, पारा, पानी, तारपीन का तेल, मिट्टी का तेल) भर लो और इन सब सुराहियों में काग और नली इस भाँति लगाओ कि सब नलियों में द्रवों का एक ही तल रहे। फिर इन

पाँचों सुराहियों को एक साथ ही गर्दन तक गर्म पानी की एक नान्द में रख दो। अब तुम देखोगे कि यद्यपि पाँचों सुराहियों के तापक्रम ( Temperature ) और प्रत्येक में द्रवों के आयतन ( Volume ) एक से ही हैं। परन्तु तापक्रम बढ़ने पर द्रवों के तल भिन्न भिन्न हो जाते हैं। परीक्षा में देखा होगा कि सुराहियों को गर्म जल में रखने पर पहिले तो सब सुराहियों में द्रवों की सतह नीची हुई और तत्पश्चात् बढ़ कर भिन्न भिन्न तलों पर



चित्र १६—भिन्न भिन्न द्रवों के भिन्न भिन्न प्रसार।

ठहर गई। इस व्यवहार की भिन्नता का क्या कारण है? प्रथम तो द्रव तल के नीचा होने का कारण यह है कि ज्योंही कांच की सुराहियाँ गर्म जल में रक्खी गईं त्योंही कांच गर्म हुआ और सुराही का आयतन ( Volume ) बढ़ा जिससे कि द्रव का आयतन सुराहियों में प्रथमातिप्रथम घटता हुआ दिखाई दिया। परन्तु फिर जब द्रव पदार्थ भी गर्म हुये और सुराही की अपेक्षा अधिक फैले तो उनके तल ऊपर चढ़ते हुये विदित हुए। इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि कुछ द्रव पदार्थ तो उतनी ही कक्षा शतांश गर्म करने से अधिक प्रसरण ( Expand ) करते हैं और कुछ परस्पर अपेक्षाकृत न्यून। दूसरे शब्दों में यह भी कह

सकते हैं कि भिन्न भिन्न पदार्थों के घन प्रसार गुणक भिन्न भिन्न होते हैं।

**प्रत्यक्ष और वास्तविक प्रसारगुणक**—द्रव सदा किसी न किसी बर्तन में रक्खे जाते हैं और उनका कोई विशेष आकार न होने के कारण जैसे बर्त्तन में रक्खे जाते हैं उसी के आकार के हो जाते हैं। इसलिये द्रवों का घनप्रसारगुणक निकालते समय यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि द्रव को गर्म करने से केवल द्रव का ही प्रसार नहीं होता, किन्तु बर्त्तन का भी। इस प्रकार जो प्रसार हमें सुराही में प्रतीत होता है वह द्रव का वास्तविक प्रसार नहीं होता किन्तु वह केवल प्रत्यक्ष प्रसार (Apparent expansion) होता है। उपरोक्त प्रयोग में यदि द्रव कीअपेक्षा बर्तन का अधिक प्रसार हो तो द्रव को गर्म करने से सम्भवतः संकुचन ही दृष्टिगोचर होगा। इसी प्रकार यदि बर्तन और द्रव के प्रसार एक से ही हों तो उस दशा में द्रव का प्रत्यक्ष प्रसार किञ्चित भी न होगा। इसलिये किसी द्रव का सही प्रसार निकालने के लिये द्रव के प्रत्यक्ष व दृष्टित प्रसार में बर्तन का प्रसार भी जोड़ देना चाहिये। अर्थात्

**द्रव का वास्तविक प्रसार = प्रत्यक्ष प्रसार + बर्तन का प्रसार**

(Real Expansion = apparent expansion + expansion of the flask).

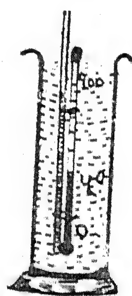
यदि किसी द्रव का त° श पर घनफल 'घ' घन शतांशमीटर हो तो थ° श तक गर्म करने से उक्त समीकरणानुसार **द्रव का घन प्रसारगुणक** (Real Coefficient of expansion)

$$= \frac{\text{वास्तविक प्रसार}}{\text{घ} \times (\text{थ}-\text{त})} = \frac{\text{प्रत्यक्ष प्रसार}}{\text{घ}(\text{थ}-\text{त})} + \frac{\text{बर्तन का प्रसार}}{\text{घ}(\text{थ}-\text{त})}$$

**= प्रत्यक्ष प्रसारगुणक + बर्तन का प्रसारगुणक**

= Apparent coefficient of expansion + cubical coefficient of Expansion of the vessel

प्रयोग १४—द्रवों का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक निकालना। प्रथम एक काँच की नली लो ( लगभग ३० श. मीटर × ·२ श. मीटर ) और जिस द्रव का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक निकालना हो इस नली में डाल दो। इस नली के साथ चित्रानुसार एक शताँशमापक और मीटर मापक डोरे से बाँध दो। इस कुल उपकरण को एक लम्बे गिलास में खड़ा कर हिम के बारीक टुकड़े इसके चारों ओर इस प्रकार रक्खो कि सारा द्रव बर्फ में हो जाय। कुछ समय पश्चात् द्रव का तापक्रम ०°श हो जावेगा। अब नली में इस तापक्रम पर द्रव की स्थिति मीटरमापक से देख लेनी चाहिये अथवा पेन्सिल से इस स्थान पर चिन्ह लगा लेना चाहिये। इससे ०°श पर नली में द्रव की लम्बाई ( जो कि द्रव के आयतन के समानुपाती होगी ) मालूम हो जायगी। तत्पश्चात् नली वाले उपकरण को एक दूसरे सील नवाये पानी के भरे लम्बे गिलास में ऐसे रक्खो कि कुल द्रव गर्म जल के तल से नीचे ही रहे। तापमापक द्वारा गर्म जल ( व द्रव ) का तापक्रम देख लो और मीटर मापक पर द्रव पदार्थ के तल पर नली में दूसरा चिन्ह लगा दो व मीटर द्वारा द्रव की लम्बाई देख लो। द्रव का आयतन दोनों बार जितनी भरे हुये द्रव की लम्बाई होगी उसी के समानुपाती होगा। दोनों चिह्नों की मध्यस्थ लम्बाई से कुल द्रव का प्रत्यक्ष प्रसार प्रतीत हो जायगा। परन्तु द्रव का यह वास्तविक प्रसार नहीं हो सकता। यदि दोनों चिह्नों के मध्यस्थ लम्बाई को नली में द्रव की प्रारम्भिक लम्बाई से और कुल शताँशकक्षा से ( जितना द्रव का तापक्रम बढ़ा है )



चित्र १७—द्रवों का प्रसारगुणक निर्णय

भाग दें तो द्रव का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक निकल आता है। यदि इसमें वर्तन के पदार्थ व धातु का घनप्रसारगुणक जोड़ दें तो द्रव का वास्तविक प्रसारगुणक (Real coefficient of Expansion) निकल आता है।

उदाहरण—लिटर् नाप की एक सुराही पर १५°श पर चिन्ह बनाया गया है। यदि इसकी गर्दन का व्यास १·६ श मीटर है तो बताओ कि यदि सुराही में ३५°श पर एक सहस्र ग्राम जल डालें तो चिन्ह से जलतल कितना ऊपर होगा। (काँच का लम्ब प्रसारगुणक $=८·३ \times १०^{-६}$ एक ग्राम जल का १५°श पर आयतन $=१·०००९$ घन शताँशमीटर और ३५°श पर $=१·००५९$ घन शतांशमीटर)।

१५°श पर सुराही का आयतन $=१०००·९$ शताँशमीटर

३५°श ,, ,,

$=१०००·९(१+३\times८·३\times १०^{-६} \times२०)$

$=१००१·४$ घन शताँशमीटर

∴ सुराही के आयतन में प्रसार $=·५$ घन शतांशमीटर

१ सहस्र ग्राम जल का ३५° श पर आयतन $=१००५·९$ घन-शतांशमीटर

जल का आयतनिक प्रसार $=१००५·९—१०००·९=५$ घन-शतांशमीटर

∴ चिन्ह से ऊपर जल का आयतन $५—·५=४·५$ घन-शतांशमीटर

∴ चिन्ह से जल तल की ऊँचाई $\times \pi (·८)^२ = ४·५$

∴ चिन्ह से जलतल की ऊँचाई $=\frac{४·५}{\pi (·८)^२}=२·२४$ शतांशमीटर

कुछ द्रवों के वास्तविक घनप्रसारगुणक:

| | | | |
|---|---|---|---|
| ईथर | ·००१५ | दारू | ·००११ |
| ग्लिसरीन तेल | ·०००५३ | तारपीन तेल | ·०००९ |
| जैतून तेल | ·०००७४ | बेंज़ीन | ·००१३८ |
| | | पारा | ·०००१८ |

**जल के प्रसार में विचित्रता और विशेषता**—जल का प्रसरण साधारण नियम के कुछ अपवाद है। यदि जल को ठंढा करें तो प्रथमातिप्रथम तो इसका संकुचन होता है और ४°श की ठंढक तक इसका आयतन घटता जाता है परन्तु जल को इससे अधिक ठंढा करने से इसका प्रसरण होने लगता है। ०°श पर जल का तापक्रम उस समय तक स्थायी रहता है जब तक कि कुल जल जम कर हिम नहीं बन जाता। परन्तु हिमरूप में परिवर्त्तित होते समय जल की अपेक्षा हिम आयतन में लगभग $\frac{1}{10}$ भाग बढ़ जाता है। यदि ०°श पर जल १० घनशतांशमीटर हो तो हिम बन कर इसका आयतन लगभग ११ घन शतांश-मीटर हो जायगा। तत्पश्चात् हिम का संकुचन ठोसों की भाँति होता है। तदनुसार यदि बहुत ठण्ढे हिम को लेकर गर्म करने लगें तो प्रथम तो ठोसों की भाँति इसका प्रसार होता रहेगा, परन्तु ०° श. पर यह पिघल कर द्रव रूप में परिवर्तित होते समय आयतन में लगभग अपने $\frac{1}{11}$ भाग के न्यून हो जावेगा और ४° श. तक गर्म करते रहने पर आयतन घटता जायगा। तत्पश्चात् साधारण द्रवों की भाँति इसका भी आयतन बढ़ता रहता है, किन्तु किसी पदार्थ को गर्म करने से उसकी मात्रा में अन्तर नहीं हुआ करता इसलिये ज्यों ज्यों ४° श. से १००° श. तक तापक्रम बढ़ता जावेगा व आयतन बढ़ता जावेगा त्यों त्यों जल का घनत्व भी और पदार्थों की भाँति घटता जायगा। अतएव ४°श को

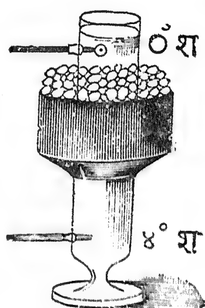
जल के अधिकाधिक घनत्व का तापक्रम भी कहते हैं। इसी तापक्रम पर जल का १ घन शतांशमीटर १ ग्राम जल होता है और इसी तापक्रम पर जल को आपेक्षिक घनत्व के हेतु प्रमाण मान रक्खा है। नीचे की पाटी से भिन्न भिन्न तापक्रमों पर जल का घनत्व ज्ञात होता है। ( घनत्व ग्राम में प्रति घन शतांशमीटर दे रक्खा है )।

| तापक्रम | घनत्व | तापक्रम | घनत्व |
|---|---|---|---|
| ०° श. | .९९९८८ | ४° श. | १.० |
| १° श. | .९९९९३ | ५° श. | .९९९९९ |
| २° श. | .९९९९७ | ६° श. | .९९९९७ |
| ३° श. | .९९९९९ | ७° श. | .९९९९४ |
| | | १०° श. | .९९९७४ |

यह दिखाने के लिये कि ४° श. पर जल का घनत्व अधिकात्यधिक होता है होप साहब ने एक विशेष यन्त्र निर्माण किया था। इसको होप साहब का उपकरण ( Hopes' apparatus ) कहते हैं।

प्रयोग १५—होप साहब के यन्त्र में किसी धातु ( ताम्बे ) की बारीक चादर का मोटा नल होता है ( चित्र १८ ) और इस के पेट में दोनों सिरों के पास एक एक सूराख़ रहता है। नल के बीच में बाहर की ओर चारों ओर एक चौड़ी नाली लगी रहती है। नल नीचे की ओर बिलकुल बन्द रहता है और दोनों सूराख़ों में काग द्वारा एक एक शतांशतापमापक ऐसे लगा रहता है कि उनकी घुँडी नल के बीच में रहे। प्रयोग करते समय नल में पानी ऊपर तक भर लो और नाली में चारों ओर हिम और नमक ( व शोरे ) का मिश्रण कूट कर भर दो। दोनों शतांश मापकों का निरीक्षण करने से मालूम होगा कि हिम के मिश्रण

भरने के पूर्व कुल जल का तापक्रम एक सा ही था। अब फिर देखो तुम्हें मालूम होगा कि नीचें वाले तापमापक का तापक्रम घटता जाता है, परन्तु ऊपर वाले तापमापक के तापक्रम में कोई भेद नहीं प्रतीत होता। इसका आशय यही हो सकता है कि हिम द्वारा जल नल के बीच में से ठण्ढा होकर नीचे की ओर चला जाता है और ऊपर नहीं आता। यह विधि देखो कब तक होती रहती है। अवलोकन से पता चलेगा कि ऊपर वाले तापमापक पर उस समय तक कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब तक कि नीचे वाले जल का तापक्रम ४° श. नहीं हो जाता। ज्योंहीं नीचे के जल का तापक्रम ४° श हो जाता है त्योंही ऊपर के तापमापक का तापक्रम भी न्यून होने लगेगा यहाँ तक कि नल में ऊपर वाले जल का तापक्रम ०° श तक हो जायगा। एक ही जल में तापक्रमों के इस भेद का क्या कारण है? निरीक्षण से यही अनुमान हो सकता है कि जल को ठण्ढा करते हुये इसका घनत्व ४° श तक बढ़ता गया और फिर यह घटने लगा जिसके कारण बीच में से ठण्ढा जल ऊपर की ओर आने लगा। यदि जल ४° श से नीचे ठण्ढा करने से संकुचित होता तो उसका घनत्व बढ़ जाता और होप साहब के यन्त्र में नीचे के तापमापक का तापक्रम ४° शतांश से भी कम हो जाता।



चित्र १८—होप साहब का उपकरण।

**जल की विशेषता का प्रकृति में प्रयोग**—यह तो प्रत्यक्ष ही है कि हिम जल पर तैरता है और इसलिये जल की अपेक्षा हलका होता है। हिम का घनत्व $\frac{१०}{११}$ व लगभग ·९ ग्राम प्रति घन-

शतांशमीटर होता है। इसी कारण पानी जम कर जब हिम में परिवर्तित होता है तो इतने जोर से फैलता है कि अपने लिये मनमानी ठौर बना लेता है; शीत देशों में नलों के अन्दर का जल जब जमता है तो फैलने में प्राय: नल तक को फाड़ डालता है। इसी प्रकार बरसाती जल बहुधा पहाड़ों की कन्दराओं में भर जाता है और जब शीत ऋतु में जमता है तो पहाड़ों को चूर चूर कर बड़े बड़े भौगोलिक परिवर्त्तन कर डालता है। प्रकृति में इस बात का बड़ा भारी उपयोग होता है। शीत और पाले की ऋतु में झीलों और तालाबों के ऊपर की ही सतह ठण्ढी होकर जम पाती है और नीचे का जल ४° श से न्यून तापक्रम पर तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक कि शीतकाल बहुत समय तक न पड़ता रहे। यही कारण है कि अति शीत पड़ने के पीछे भी जल जन्तु जीवित रह जाते हैं।

इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण खंडों में शीत ऋतु में समुद्रतल पर कोसों तक हिम ढक जाता है और ऊपर का वायु –२०°श तक ठंढा हो जाता है किन्तु नीचे का जल ३° व ४°श से न्यून नहीं हो पाता।

## वायव्य पदार्थों का प्रसार।

**वायव्य पदार्थों का प्रसारगुणक**—जैसे ठोस और द्रव पदार्थ गरमी से आयतन में फैल जाते हैं उसी प्रकार वायव्य पदार्थ भी गर्मी से प्रसरण करते हैं और ठंढक से सिकुड़ते हैं, परन्तु वायव्य पदार्थों का प्रसार ठोसों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। वायव्य पदार्थों में एक यह विशेषता और है कि यदि किसी वायु पर दबाव डाला जाता है, तो वह दब जाता है और दबाव को कम करने से फैल भी जाता है; किन्तु ठोस और द्रव इस प्रकार दब नहीं सकते। यदि किसी बन्द वायु पर दबाव दोगुना

कर दिया जाता है तो वायु का आयतन पहले की अपेक्षा आधा रह जाता है। इसी प्रकार यदि किसी वायु पर दबाव कम कर दिया जाय तो उसका प्रसार भी उसी हिसाब से अधिक हो जाता है। इसलिये प्रत्यक्ष है कि वायु के आयतन पर ताप और दबाव दोनों ही का प्रभाव पड़ता है। इसलिये इनमें से वायु पर एक का प्रभाव देखने के लिये दूसरे को स्थायी रखना आवश्यक है।

प्रयोग १६—स्थायी दबाव पर वायु का प्रसार गुणक (Co-efficient of expansion of a gas at Constant pressure) :—लगभग ४० शतांशमीटर लम्बी काँच की एक बारीक (·१ या ·२ श. मी. व्यासवाली) नली लो। दहकती हुई अंगीठी के ऊपर ले जाकर इसके अन्दर वाले वायु को सुखा लो और इसका एक सिरा बन्द कर दो। फिर ठण्ढी नली को कुछ गर्म करके नली के खुले सिरे को पारे में डुबा दो। ज्योंही कुछ पारा ($\frac{१}{२}$ शतांशमीटर) ऊपर को चढ़ने लगे त्योंही नली को पारे में से हटा कर सीधी कर लो। इस प्रकार नली में पारे की बून्द के नीचे साधारण वायुभार पर लगभग २५ शतांशमीटर सूखा वायु भर लो। फिर १७ वें चित्र के अनुसार इस नली में एक तापमापक और मीटर मापक डोरे से बान्ध दो और १४ वें प्रयोग की नाईं पहले बर्फ में और फिर गर्म जल में रक्खो। प्रत्येक तापक्रम पर नली में वायु की ऊँचाई देख लो। यदि नली की मोटाई सब स्थानों पर एकाकार हो तो वायु के घनप्रसार गुणक की गणना इस प्रकार हो सकती है :—

मान लो०° श. पर वायु का आयतन $=$ $ल_०$ घन श. मी.

और १००° श. ,, ,, ,, $=$ $ल_१$ घ. श. मी.

$\therefore$ आयतन में वृद्धि $= (ल_१ - ल)$ घ. श. मी.

$\therefore$ वायु का घन प्रसार गुणक $= \frac{ल_१ - ल_०}{ल_० \times १००}$

प्रयोग में देखोगे कि यह मान ( Coefficient of Cubical expansion for a gas ) लगभग $\frac{१}{२७३}$ ( ·००३६७ ) होता है। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि वायु चाहे जौन सा लो परन्तु वह सूखा होना चाहिये।

वायु के ऊपर दबाव और तापक्रम के अन्तर के प्रभाव के विषयों में मुख्यतया चार्ल्स और बायल ने अच्छी खोज कर कुछ नियमों का उल्लेख किया है। यदि किसी मात्रा वायु का त° श. पर और 'द' शतांशमीटर दबाव पर आयतन 'आ' हो तो पारस्परिक सम्बन्ध म. चार्लस और बायल ने इस प्रकार बताया है।

$\frac{द \times आ}{२७३ + त}$ = अवर्धनीय संख्या अर्थात् यह संख्या दबाव व तापक्रम बढ़ने घटने पर स्थायी रहती है।

चार्ल्स का नियम ( Charles' Law )—चार्ल्स ने बहुत से वायव्य पदार्थों की परीक्षा करके यह नियम खोजा था ( सन् १८०० ई० ) कि सब वायव्य पदार्थों का प्रसार-गुणक एक सा ही होता है और प्रत्येक वायु आयतन में किसी भी एक स्थायी दबाव पर प्रति १°श तापक्रम की न्यूनता व अधिकता से अपने ०° श वाले आयतन का $\frac{१}{२७३}$ वां भाग क्रमानुसार सिकुड़ता व फैलता है।

इसी नियमानुसार यदि किसी वायु का आयतन ०°श पर $आ_{०}$ घन शतांशमीटर हो तो उसी दबाव पर

इसका आयतन १° श. तापक्रम पर $आ_{०} + \frac{१\ आ_{०}}{२७३}$ अथवा

$आ_{०} \left(१ + \frac{१}{२७३}\right)$ घन श. मीटर हो जावेगा।

इसका आयतन २°श तापक्रम पर $आ_0 + \frac{२ आ_0}{२७३}$ अथवा

$आ_0 (१ + \frac{२}{२७३})$ घ श. मीटर हो जावेगा।

और यही आयतन त° श पर $आ_0 + \frac{त आ_0}{२७३}$ अर्थात्

$आ_0 (१ + \frac{त}{२७३})$ घ. श. हो जावेगा।

तदनुसार इसका आयतन $त_1$° श. पर

$आ_0 (१ + \frac{त_1}{२७३})$ घन श. मीटर होगा।

यदि त° श. और $त_1$° श. पर किसी वायु का आयतन $आ_त$ और $आ_{त_1}$ हों तो

$$आ_त = आ_0 \frac{(२७३ + त)}{२७३} \text{ घन शतांशमीटर}$$

$$आ_{त_1} = आ_0 \frac{(२७३ + त_1)}{२७३} \text{ घन शतांशमीटर}$$

$$\therefore \frac{आ_{त_1}}{आ_त} = \frac{२७३ + त_1}{२७३ + त} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots (१)$$

**तापक्रम का उष्णमान मापन** ( Absolute Thermometer )—चार्लस का नियम वायु के प्रसार तथा संकुचन दोनों में ठीक उतरता है। इस प्रकार कोई वायु जिसका आयतन ०° श पर २७३ घन शतांशमीटर है

उसका ५°श. पर आयतन $२७३ + \frac{५ \times २७३}{२७३} = २७८$ घन शतांशमीटर होगा

१०° श. पर आयतन $२७३ + \frac{१० \times २७३}{२७३} = २८३$ घन शतांश-मीटर होगा

—१०°श. पर " $२७३ + \frac{-१० \times २७३}{२७३} = २६३$ घन शतांश-मीटर होगा

और –२७३° श. पर " $२७३ + \frac{-२७३ \times २७३}{२७३} = ०$ घन शतांश-मीटर होगा।

इस प्रकार हम कल्पना कर सकते हैं कि वायु को ठण्ढा करते करते जब तापक्रम—२७३°श. हो जायगा तो उपरोक्त पाटी के अनुसार वायु का आयतन शून्य रह जावेगा। परन्तु वास्तव में यह बिलकुल असम्भव है। इस –२७३° श को हम उष्ण-मान का बास्तविक शून्यांक कहते हैं और तापक्रम की उस संख्या को जो शतांश तापक्रम में २७३ के योग करने से मिलती है उसको केवल उष्णमान का तापक्रम (Temperature absolute) कहते हैं। इस प्रकार

| शतांश मापक पर अंश संख्या | तदनुसार उष्णमानमापक पर अंश संख्या |
|---|---|
| —२७३° | = ०° |
| - ७३° | = २००° |
| ०° | = २७३° |
| १००° | = ३७३° इत्यादि इत्यादि |

परन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वास्तव में ऐसा उष्णमानमापक कोई यंत्र नहीं है, यह केवल काल्पनिक प्रमाण है जो कि शतांशमापक के अंशों पर निर्भर है।

**वायव्य पदार्थों के प्रसारगुणक का निर्धारण—** वायव्य पदार्थों का प्रसारगुणक निश्चय करने के हेतु प्रत्येक वायु का ०° श. पर आयतन देखने में कठिनता होती है, इसलिये उपरोक्त समीकरण ( १ ) द्वारा ०°श पर हमें वायु के आयतन का लेखा लगाना पड़ता है। मान लो त° और $त_१$°श के मध्य वायु का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक $अ_०$ है और $आ_त$, $आ_{त_१}$ क्रमानुसार त° और $त_१$° श पर आयतन है तो विदित है कि

$$आ_{त_१} = आ_त [ १ + अ_० ( त_१ - त ) ]$$

परन्तु प्रथम समीकरण द्वारा $\frac{आ_{त_१}}{आ_त} = \frac{२७३ + त_१}{२७३ + त}$

$$\frac{आ_{त_१}}{आ_त} = १ + अ_० ( त_१ - त ) = \frac{२७३ + त_१}{२७३ + त}$$ ( तो समीकरणों का एकीकरण करने पर )

$$\therefore अ_० ( त_१ — त ) = \frac{२७३ + त_१}{२७३ + त} — १ = \frac{त_१ — त}{२७३ + त}$$

$\therefore$ वायु का का घनप्रसारगुणक $अ_० = \frac{१}{२७३ + त}$

इस गणना से किसी भी वायु का वास्तविक प्रसारगुणक निंकल सकता है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( ३ )।

( १ ) ठोस के लम्ब प्रसारगुणक से तुम क्या समझते हो? ताँबे के एक छड़ का लम्बप्रसारगुणक निकालने के लिये तुम क्या और किस प्रकार प्रयोग करोगे? इसमें गणना किस भाँति होगी यह भी भली प्रकार समझाओ।

( २ ) पीतल का लम्बप्रसारगुणक ·००००१८६ है इससे तुम क्या आशय समझते हो ? किसी छड़ की ०°श पर लम्बाई २५० शतांशमीटर है और ८०°श गर्म करने से प्रसार ·३७६ शतांशमीटर होता है तो छड़ के पदार्थ का लम्बप्रसारगुणक निकालो।

( ३ ) यदि ग्रीष्म ऋतु में अधिकात्यधिक तापक्रम ५५°श. हो जाता है और शीतकाल में न्यूनातिन्यून तापक्रम ५°श. हो जाता है तो बताओ २५०० फ़ीट लम्बे गंगा जी के पुल के लोहे के शहतीरों के लिये क्या गुञ्जाइश छोड़नी चाहिये। लोहे का लम्बप्रसार-गुणक ·००००१०६ है।

( ४ ) यह कैसे दिखा सकते हो कि भिन्न २ ठोसों के लम्बप्रसारगुणक भिन्न २ होते हैं। एक सीसे का पैमाना १०°श. पर ठीक एक मीटर लम्बा है; यदि इस धातु का प्रसारगुणक ·००००३ हो तो ४०°श. पर इसमें प्रति शतांशमीटर कितनी अशुद्धि हो सकती है ?

( ५ ) ( अ ) किसी द्रव के प्रसारगुणक से क्या तात्पर्य है ?
( ब ) द्रव का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक निकालने के लिये किसी ऐसे प्रयोग का वर्णन करो जो तुमने देखा हो। ०°श. पर एक कांच की घुण्डी में ३६५ ग्राम पारा आता है। यदि इसका तापक्रम ६०°श. तक बढ़ा दिया जाय तो इसमें से कितना पारा निकल जायगा। ( पारे का आपेक्षिक घनत्व = १३.६ और प्रसारगुणक = ·०००१८ है। )

( ६ ) कांच की एक छोटी सुराही का भार १२·२ ग्राम है और पारे से भरने पर १०°श. पर भार १५६.६ ग्राम हो जाता है। ९५°श. तक गर्म करने से २·०२ ग्राम पारा बाहर निकल जाता है। पारे का प्रत्यक्ष प्रसारगुणक निकालो।

( ७ ) ठोसों के लम्बप्रसारगुणक और घनप्रसारगुणक में क्या सम्बन्ध होता है ? ताम्र के एक टुकड़े का १५° श. पर घनफल १ घन-फुट है; ०°श. और ५००°श. पर इसका घनफल निकालो। ( ताम्र का लम्बप्रसारगुणक = ·००००१७ )

( ८ ) लम्बप्रसारगुणक और घनप्रसारगुणक की व्याख्या करो। प्रसार के सम्प्रयोगिक मुख्य उपयोगों को बताओ।
०°श. पर किसी वायु का आयतन १०० घनशतांशमीटर है किसी दूसरे तापक्रम पर आयतन १०२ घनशतांशमीटर है, तो वह नया तापक्रम क्या होगा ?

( ९ ) जल के प्रसार में क्या २ विशेषताएं हैं ? किस तापक्रम पर जल का अधिकात्यधिक विशिष्ट गुरुत्व होता है ? इस बात को प्रयोग से कैसे दिखाओगे ? क्या १ ग्राम जल का भार सदा १ घन शतांशमीटर होता है ?

(१०) हिम के तापक्रम वाले जल के एक बरतन में काँच की दो घुडियां पड़ी हुई हैं। एक तली में ठहरी हुई है, परन्तु दूसरी जल के ठीक भीतर तैर रही है। जल को सहज २ गर्म करते हैं तो तली वाली घुंडी शीघ्र ही जल में ऊपर उठ आती है और फिर नीचे जाकर बैठ जाती है। इस व्यवहार का क्या कारण है। जल गर्म करते करते दूसरी घुंडी की क्या दशा होगी ?

(११) ०°श. पर २०० घन शतांशमीटर द्रव ( जिसका प्रसारगुणक ·०००१०५ है) एक घनत्व बोतल में है। ४०°श. तक गर्म करने पर बोतल ठीक ठीक भर जाती है। काँच का लम्बप्रसारगुणक ·००००९ हो तो ०°श. पर घनत्व बोतल की ग्रहण शक्ति निकालो।

(१२) एक ६० ग्राम भार वाली काँच की छड़ का १२°श. पर किसी द्रव में ४९.६ ग्राम भार होता है। परन्तु उसी द्रव में ६७°श.

पर इसका भार ५१,६ ग्राम उतरता है, तो काँच के घनप्रसार-गुणक को ·००००२४ मान कर द्रव का वास्तविक घनप्रसारगुणक निकालो ।

(१३) चार्लस का नियम क्या है ? २५°श. पर किसी वायु का आयतन १००० घनशतांशमीटर है तो बताओ कि इसका ०°श. पर क्या आयतन होगा ?

(१४) चार्लस के नियम का सत्यायन करने के हेतु क्या प्रयोग करोगे ? उष्णमान तापमापन से तुम क्या आशय समझते हो ?

(१५) होप साहब की विख्याति का क्या कारण है ? यह तुम प्रयोग द्वारा कैसे दिखा सकते हो कि जल का घनत्व ठंढा होने पर कम हो जाता है ?

---

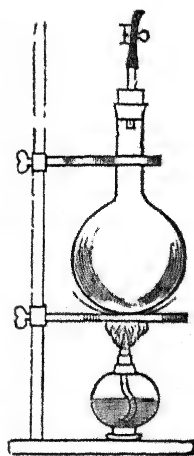
# चौथा अध्याय

## वायु भारमापक और बायल का नियम ।

**वायु का भार**—पिछले अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि वायु, दबाव और ठंढक दोनों से ही सिकुड़ता है । वायु पर ताप का प्रभाव हमें ज्ञात हो चुका है । अब हमें यह देखना है कि दबाव का वायु के आयतन पर क्या प्रभाव होता है और इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है । यही नहीं किन्तु वायुमण्डल का अन्य पदार्थों और पृथ्वी पर कितना दबाव पड़ता है और उसके क्या नियम हैं । रसायन विद्या से हमें यह विदित है कि भिन्न भिन्न पदार्थों की दशा चाहे नाशवान हो किन्तु इस संसार में उन पदार्थों के तत्व नाशवान नहीं हैं । तत्वों के भिन्न भिन्न संयोग तथा पदार्थों की दशा अथवा स्थिति परिवर्तन शील है । इसी के अनुसार जैसा कि हमें

ज्ञात है प्रत्येक पदार्थ गर्म करने से वायु रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। यद्यपि सब तत्त्वों का दशा-परिवर्त्तन से आयतन घट बढ़ जाता है परन्तु प्रत्येक दशा में उनका भार उतना ही रहता है। यही नहीं, किन्तु जो वायुमण्डल हमारी पृथ्वी को घेरे हुयेहै उसका भी धरा-तल पर बहुत भार पड़ता है। साधारण वायु का घनत्व निकालने के लिये एक सरल प्रयोग कर सकते हो।

प्रयोग १७—एक मज़बूत काँच की सुराही में थोड़ा सा जल ले कर इसमें एक ऐसी कार्क लगा दो जिसमें एक नली लगी हो। काँच की नली में एक क्लिपवाली रबड़ की नली लगा कर पानी को सुराही में उबलना रख दो। थोड़ी देर बाद सुराही में जल और वाष्प के सिवा कुछ भी न रहेगा। जब कुछ देर तक नली में से बराबर जलवाष्प बाहर आता रहे तो क्लिप को बन्द कर दो और सुराही को ठण्ढी होने पर तौल लो। इससे सुराही का और अन्दरवाले जल का भार मालूम हो जायगा। इस प्रयोग में सुराही की काग बिलकुल वायवागम्य होनी आवश्यक है। यदि अब क्लिप को खोल दो तो सुराही में सुर्र से वायु घुसता हुआ सुनोगे। इससे प्रतीत होता है कि सुराही के ठण्ढा होने पर आन्तरिक वाष्प द्रवरूप हो जाता है और जल के ऊपर का शेष स्थान शून्य युक्त हो जाता है। इस सुराही को अब फिर तौलो। तुम्हें विदित होगा कि सुराही का भार पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है। दोनों बार के भारों में जो अन्तर होता है वही जल के ऊपर वाले वायु का भार होगा। यदि कुल सुराही की ग्रहणशक्ति में से जल का आयतन घटा दो तो वायु का आयतन भी



चित्र १९—वायु का घनत्व निकालना।

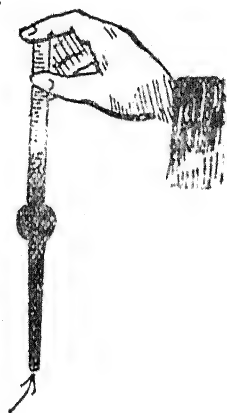
मालूम हो जावेगा । इस प्रयोग द्वारा वायु का आयतन और भार जान कर प्रयोगशाला के ताप क्रम पर वायु का घनत्व ( Density ) जान सकते हो। वायु में भार होने के कारण यह भी प्रत्यक्ष है कि धरातल पर वायुमण्डल का भार पड़ता है। ज्यों ज्यों वायुमण्डल में हम ऊपर को जाते हैं त्यों त्यों वायु मण्डल जनित भार भी कम होता जाता है। समुद्रतटों पर अन्य स्थानों की अपेक्षा वायु भार अधिक होता है और प्रति वर्ग इञ्च पर लगभग ७ सेर वायु भार होता है। धरातल से ६ मील की ऊँचाई पर यही भार केवल चौथाई रह जाता है और १५ मील की ऊँचाई पर धरातल की अपेक्षा वायुजनित भार केवल $\frac{१}{१०}$ भाग रह जाता है।

साधारणतया मनुष्य के शरीर के पृष्ठ का क्षेत्र लगभग १० वर्ग फीट होता है; इस लिये सामान्यतया मनुष्य पर वायु का लगभग ७ × १४४ × १०सेर = १८२ मन भार है। यह प्रकृति का आश्चर्य है कि इतना भार प्रत्येक मनुष्य को सहन करना पड़ता है किन्तु इससे वह बिलकुल अनभिज्ञ है। इसका कारण केवल यही है कि यह दबाव मनुष्य के चारों ओर पड़ता है। भौतिक नियमानुसार भार उसी समय प्रतीत होता है जब कि दबाव किसी पृष्ट तल की एक ही ओर पड़ता हो। इसके अतिरिक्त मनुष्य चारों ओर इस प्रकार दबे रहने से इतना अभ्यस्त हो गया है कि यदि मनुष्य किसी प्रकार शून्ययुक्त स्थान पर चला जाय तो उसका शरीर फटने लगता है और वह जीवित नहीं रह सकता। इस भाँति जब उड्यानविद्यानुरागी बहुत ऊँचाई पर चले जाते हैं तो उनके मर्म स्थान फूलने लगते हैं और रक्त निकल आता है।

प्रयोग १८—एक पतले काँच की अथवा टीन की वायवागम्य सुराही लो और इसमें थोड़ी देर तक जल उबाल कर एक ऐसी

डाट लगा दो कि बाहर के वायु से कोई सम्बन्ध न रहे अब इसमें जलवाष्प के अतिरिक्त कुछ और नहीं रह जाता। अब सुराही पर ठण्ढा जल डाल दो। देखोगे कि टीन की चादर की सुराही तुरन्त पिचक जावेगी और काँच की सुराही का काँच यदि पतला है तो भीतर की ओर दब कर टूट जायगा। इसका कारण क्या हो सकता है? सुराही के पिचकने व टूटने का कारण यही है कि जल वाष्प ठंढा होकर द्रव रूप में परिवर्त्तित हो जाता है अर्थात् सुराही में जल के ऊपर शून्य स्थान रह जाने के कारण सुराही में भीतर कीओर वाष्प दबाव लुप्त हो जाता है। ऊपर वाले वायु का भार इतना अधिक पड़ता है कि सुराही को तोड़ डालता है।

प्रयोग १९—एक गिलास को लेकर ऊपर तक पूर्णतया जल से भर लो और गिलास पर एक सादा काग़ज़ लगा कर गिलास को उलट दो। अब जल काग़ज़ के ऊपर गिलास में स्वयँ ही रुक जाता है। इस व्यवहार का मतलब यही हो सकता है कि काग़ज़ को नीचे की ओर से वायुमाडल का दबाव दबा रहा है, और क्योंकि यह दबाव गिलास के जलकी अपेक्षा अधिक होता है, इसलिये जल काग़ज़ को नीचे नहीं गिरा सकता।

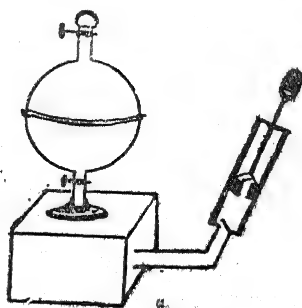


चित्र २०—पिपेट में ऊपर की ओर वायु का दबाव।

इसीभांति यदि किसी पिपेट में मुँह द्वारा थोड़ा सा द्रव खींच कर ऊपर के सिरे को उँगली से दबा लें तो वायु के दबाव के कारण ( Pipette ) पिपेट से जल नहीं

निकलता। इसमें वायु जनित दबाव ऊपर की ओर को रहता है। यदि पिपेट के ऊपर का सिरा खोल दो तो द्रव सूराख़ द्वारा तुरन्त नीचे गिर पड़ेगा। इसका कारण यही है कि उँगली हटाने से वायु का भार ऊपर की ओर नीचे की अपेक्षा अधिक पड़ता है।

प्रयोग २०—मैग्डीवर्ग साहब ने वायुजनित भार को दर्शाने के लिये एक प्रयोग दो अर्द्ध गोलाकार कटोरों से किया था। इन दोनों कटोरों के मुँह ऐसे चौड़े चिकने होते हैं कि दोनों एक दूसरे को दबाकर ढक लेते हैं। दोनों कटोरे परस्पर एक दूसरे को ढककर वायवागम्य हो जाते हैं। इनमें से एक कटोरे की तली में एक टोंटी-दार नली लगी रहती है, जिससे इस गोलाकार का सम्बन्ध एक वायुनिःसारक यंत्र से वायु निकालने के लिये किया जा सके। इन दोनों जुड़े हुए कटोरों के मुँह वेसलीन द्वारा चिपका कर इनमें से



चित्र २१—मैग्डीबर्ग के अर्द्ध गोलाकार कटोरे।

वायु निकाल लो तो दोनों कटोरों को जुदा करने के लिये बड़ी शक्ति की आवश्यक्ता पड़ती है। यह कहते हैं कि असली उपकरण में प्रयोग करते समय दोनों अर्द्ध गोलाकार कटोरों का जुदा करने के लिये १६ घोड़ों की आवश्यक्ता पड़ी थी। यदि कुल गोलाकार

में टोंटी खोलकर वायु को घुस जाने दें तो दोनों कटोरों को जुदा करने में किसी प्रकार की शक्ति की आवश्यक्ता नहीं होती। कटोरों के चिपकने का कारण यही है कि दोनों के मध्यस्थ वायु के अभाव से शून्य स्थान हो जाता है और कटोरों के चारों ओर बाहर से उनको वायु जनित भार दबाये रखता है। ज्योंही वायु भीतर जाता है त्योंही कटोरों ( Magdeburg Hemispheres ) पर बाहर से भीतर की ओर और भीतर से बाहर की ओर वायु का दबाव एक सा हो जाता है और उनको अलग अलग करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

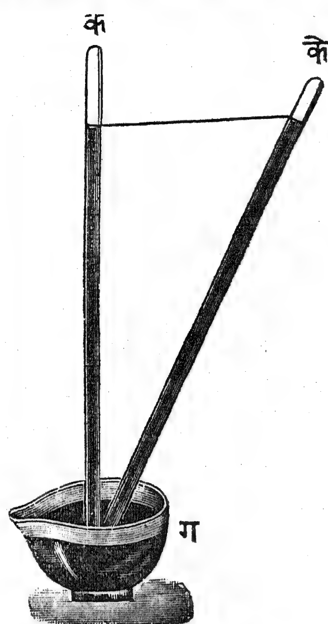
इन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि **वायु का दबाव धरातल पर सब स्थानों पर पड़ता है।** परन्तु यह बात कि वायुजनितभार कितना होता है किसी प्रयोग से सूचित नहीं हुआ। वायुमण्डल जनित दबाव की मात्रा को नापने के लिये सन् १६४३ ई० में विज्ञानवेत्ता गैलिलियो के एक शिष्य टौरिसेली ने एक यंत्र निर्माण किया था। इस यंत्र को वायुभार मापक कहते हैं।

प्रयोग २१—**वायुभार मापक यंत्र** (Barometer): लगभग एक गज़ लम्बी मज़बूत कांच की नली लो जिसका एक सिरा बन्द हो और दूसरा सिरा ( नीचे का सिरा चित्र २४ ) ऊपर की ओर मुड़ा हुआ हो। मुड़ी हुई भुजा खुली हुई और लगभग ८ इंच लम्बी है। इस नली में पारा इस प्रकार भर लो कि 'स' भुजा में पारा पूर्णतया भर जाय और वायु का किञ्चिन्मात्र अंश न रहे*। पारा भरकर नली को बिलकुल सीधा खड़ा करो, अब यह देखोगे कि खुली हुई भुजा में से कुछ पारा निकल जाता है और 'स' भुजा में ऊपर से पारे का तल नीचा हो जाता है। परन्तु दोनों भुजाओं में पारा ठहरने के बाद भी पारे तल का अन्तर लगभग

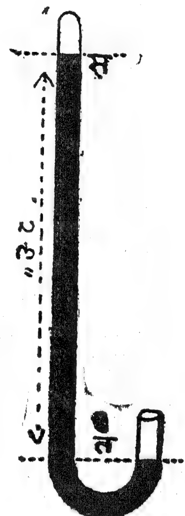
---

* नली को पूर्णतया भरने के लिये कुल नली को पड़ा लो और

३०इंच होगा। यदि अब हम 'त' में से कुछ पारा इस

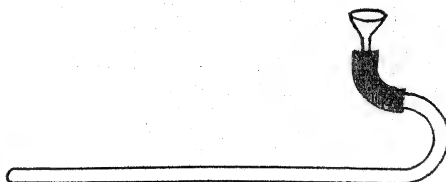



चित्र २३—वायुभारमापक




चित्र २४—वायुभारमापक

प्रकार निकाल दें कि वायु 'स' भुजा में न जा सके तो




चित्र २२

खुले हुए सिरे में एक रबड़ की नली लगाकर उसमें कीप रखकर पारा पूर्णतया भर सकते हो। फिर इसको खड़ा कर लो।

दूसरी भुजा में भी पारे का तल पूर्वापेक्षा नीचे उतर आवेगा, परन्तु दोनों भुजाओं में पारे के तलों का अन्तर फिर भी उतना ही रह जाता है। प्रयोग में देखोगे कि चित्रानुसार 'स' से 'त' तक लगभग २९ इंच ऊँचाई रहती है। अब यदि नली को कुछ तिर्छी कर दे तो 'स' में पारे के तल में कुछ भेद अवश्य पड़ जाता है परन्तु 'त' के ऊपर दूसरी भुजा में पारे की उर्ध्वाधार ऊँचाई लगभग २९" ही रहेगी। चित्र में पारा 'स' और 'त' पर स्थिर है। इन पारे के तलों में भेद का क्या कारण हो सकता सकता है? 'स' नली में स्पष्ट है कि पारे के अतिरिक्त अन्य कोई किसी प्रकार का पदार्थ नहीं है और पारे के तल के ऊपर शून्य स्थान के सिवा कुछ नहीं हो सकता। परन्तु खुली हुई नली 'त' में पारे के तल पर वायुजनित भार का दबाव पड़ रहा है। यह एक भौतिक नियम है कि एक ही बर्तन में एक तल पर दबाव सदा एक सा ही रहता है नहीं तो द्रव कम दबाव की ओर बह जायगा। अतएव इस नली में भी दोनों भुजाओं नें 'त' तल पर एक सा ही दबाव होना चाहिये वरना जिधर की ओर कम दबाव है पारा उधर की ओर बह जायगा। खुली नली में पारे के तल 'त' पर, ऊपर से नीचे को दबाव केवल वायुमंडल के भार का है और 'स' नली में भी उसी सतह पर दबाव केवल इस नली में पारे की ऊँचाई के कारण है। यदि 'त' सतह पर 'स' नली में नीचे की ओर को दबाव खुली हुई नली में 'त' की अपेक्षा अधिक होता तो खुली हुई नली में पारा ऊपर को चढ़ कर निकल जाता। इससे निश्चय है कि खुली नली में 'त' पर वायुजनित का दबाव ठीक उतना ही है जितना कि बन्द नली में इसी सतह पर पारे का। इस सतह से 'स' में पारे की जितनी ऊँचाई है उतना ही भार वायु-मंडल का समझ लेना चाहिये। २३ वें चित्र में भी वायुभार मापक को कुछ भिन्न रीति से दर्शाया है।

प्रयोग २२—एक गज्ज की सीधी नली, जिसका एक सिरा बन्द हो, लेकर ऊपर तक स्वच्छ पारे से लबालब भर लो और अँगूठे से इसको बन्द कर पारे से भरे हुए एक प्याले में उलट दो। नली को सीधी खड़ी रहने दो तो देखोगे कि यद्यपि नली के भीतर वायु किसी प्रकार नहीं घुसा है तथापि नली के ऊपर बन्द सिरे की ओर कुछ स्थान शून्य युक्त हो जाता है। इस दशा में भी पारे के तलों ( प्याले और नली ) की ऊँचाइयों में अन्तर (चित्र २३) केवल २९ इञ्च का ही रहता है। उपरोक्त दोनों प्रकार के यन्त्र वायुमंडल के वायु का भार नापने के काम में आते हैं। प्याले में पारे की सतह पर केवल वायु भार होता है और नली के मध्य में उसी सतह पर नली के अन्दर पारे का दबाव; और क्योंकि नली के भीतर और बाहर के तल स्थिर रहते हैं इसलिये दोनों के अन्तर से हमें वायुजनित भार व दबाव मालूम हो जाता है।

परन्तु वायुमण्डल की दशा सदा बदलती रहती है इससे वायुभार भी बदलता रहता है। इसको नापने के लिये क्या तो नली पर लम्बाई के चिन्ह लगा देते हैं अथवा नली के पीछे की ओर मीटर मापक लगा देते हैं जिसके द्वारा प्याले के पारे की सतह के ऊपर पारे की ऊँचाई ठीक ठीक नाप सकें। वायु का बोझ पृथ्वी के प्रत्येक स्थान पर समान नहीं होता। पहाड़ों पर तलेटियों की अपेक्षा कम होता है। इसलिए ४५° श. पर समुद्र तट पर वायुमण्डल का भार प्रमाणित बोझ (Normal pressure) मान रक्खा है। यह ७६ शतांशमीटर ऊँचे पारे के इकाई क्षेत्रफल पर बोझ के बराबर होता है। वायुभारमापक यन्त्र में पारे की ऊँचाई देखने से हमें ऋतु परिवर्त्तन का भी जल्दी ही पता चल जाया करता है। यदि वायुमण्डल

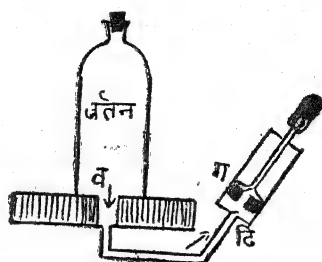
जनित दबाव अकस्मात् घट जाय तो उससे ऋतु में वर्षा और तेज़ वायु का संचार सूचित होता है। यदि अकस्मात् वायु का दबाव अधिक हो जाय तो उससे ऋतु की दशा भली प्रतीत होती है। वायुभारमापक में पारे की ऊँचाई धरातल से ऊपर जाते जाते कम हो जाती है इसलिये इस यन्त्र का प्रयोग पहाड़ों की ऊँचाई नापने* में भी हो सकता है। इस सादे वायुभारमापक के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी वायुभारमापक यन्त्र होते हैं। सादे वायुभार-मापक यन्त्र की नली में यन्त्र बनाते समय यह ध्यान देने योग्य बात है कि नली के भीतर वायु तनिक भी न रहे और पारा बिल-कुल सूखा और स्वच्छ हो। जिस समय यह यन्त्र बन जाता है नली में पारे के ऊपर शून्य स्थान वायुरहित हो जाता है। इस स्थान को टौरिसेली का शून्य स्थान ( Torricellian vacuum ) कहते हैं। वायुभारमापक के सिद्धान्त पर ही भिन्न २ प्रकार के वायुनिःसारक यन्त्र, पिचकारी इत्यादि बनाये जाते हैं।

**वायु निःसारक यन्त्र** ( Air Suction pump )— इसके मुख्य भाग्य चित्र २५ में दर्शाये गये हैं। जिस बर्तन में से हमको वायु निकालनी होती है उसको उलटा कर 'व' स्थान पर रख देते हैं। 'व' के नीचे से बर्त्तन का सम्बन्ध समकोणों में मुड़ी हुई नलियों द्वारा वायुनिःसारक पिचकारी से होता है। नली के मुँह पर 'ढि' एक ऐसी ढिपनी लगी है कि यदि इसके ऊपर की ओर किसी प्रकार का कोई दबाव पड़ता है तो नली को यह बिलकुल बन्द कर देती है और यदि नीचे की ओर से इस ढिपनी

---

* लगभग प्रति ३०० गज़ की ऊँचाई पर साधारणतया वायुभार एक इञ्च कम हो जाता है परन्तु अत्यधिक ऊँचाइयों पर वायु बहुत हलका और विरल होने के कारण यह बात सत्यशः ठीक नहीं है।

पर कोई दबाव पड़ता है तो यह तुरन्त खुल जाती है। 'ग' एक चमड़े का वायवागम्य ऐसा गट्टा लगा रहता है जिसके मध्य में एक दूसरी ऊपर को ही खुलने वाली नीचे की भाँति ढिपनी लगी रहती है। जिस समय किसी बर्तन को वायुशून्य करना चाहते हैं तो उस बर्तन के मुँह पर कुछ वेसलिन लगा कर यन्त्र की चकली पर सूराख के ऊपर उलट कर रख देते हैं। ज्यों ही पिचकारी में 'ढि' से गट्टा खींचा जाता है तो 'ढि' और 'ग' के बीच स्थान में वायु न होने से दबाव कम रह जाता है। इससे बर्त्तन का

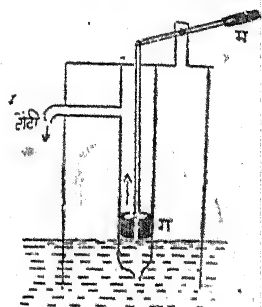



चित्र २५—वायु निःसारक यन्त्र।

वायु 'ढ' ढिपनी को ढकेल कर इस शून्य स्थान में घुस जाता है। साथ ही साथ ऊपर से वायु के भार के कारण गट्टे की ढिपनी बन्द रहती है। जब गट्टा ऊपर पहुँच जाता है तो फिर इसे नीचे को दबाते हैं, इस बार दबाते समय 'ग' और 'ढि' का मध्यस्थ वायु संकुचित होकर दबाव अधिक डालने लगता है और 'ढि' ढिपनी तुरन्त नीचे को बन्द हो जाती है और गट्टे की ढिपनी ऊपर को खुल जाती है। जो वायु गट्टे को खींचते समय पिचकारी में 'ढि' और 'ग' के मध्य भर गया था वह गट्टे को नीचे

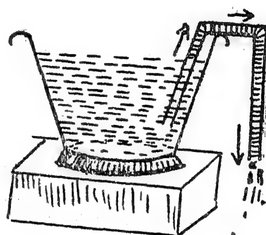
दबाते समय 'ग' में से बाहर निकल जाता है। इस प्रकार जब 'ग' 'ढि' तक पहुँचता है तो बर्तन में पहले की अपेक्षा कम वायु रह जाता है। इसी प्रकार जब बारम्बार पिचकारी को चलाते हैं तो बर्त्तन वायु रहित हो जाता है।

**जलनिःसारक यन्त्र** ( Water pump )—इनकी आवश्यकता शहरों के कुओं में से जल निकालने के लिये रहती है। इनकी बनावट पिचकारी की भाँति ही होती है भेद केवल इतना ही होता है कि गट्टे में एक सूराख होता है और इसमें ऊपर की ओर खुलने वाली एक ढिपनी लगी रहती है। इसके अतिरिक्त गट्टे की मूठ का ऐसा प्रबन्ध होता है कि मूठ 'म' को नीचे दबाने से गट्टा ऊपर को उठ जाता है। गट्टे के उठने से गट्टे के साथ साथ पिचकारी के सिद्धान्त पर जल भी ऊपर को उठ आता है क्योंकि वायु के भार से गट्टे की ढिपनी बन्द रहती है। फिर ज्योंही गट्टे को नीचे की ओर को दबाते हैं त्योंही नीचे के जल का दबाव ऊपर को पड़ कर ढिपनी खुल जाती है और जल 'ग' के ऊपर नल में चला आता है यहाँ तक कि 'ग' से ऊपर कुल नल जल से भर जाता है और ढिपनी बन्द हो जाती है। फिर यदि मूठ को दबाते हैं तो गट्टे के ऊपर उठने से ऊपर वाला पानी टोंटी में से बाहर निकल आता है। इसी प्रकार बारम्बार मूठ के दबाने पर टोंटी में से जल बाहर निकलता रहता है। इस साधारण सिद्धान्त पर पृथ्वी से जल खींचने के नल भिन्न भिन्न प्रकार के बने रहते हैं।



चित्र २६—जलनिःसारक यन्त्र।

प्रयोग २३—**साइफ़न यन्त्र** ( Syphon ) समतल में दो स्थानों पर मुड़ी हुई एक नली लो और जल से एक नान्द को भर लो। नान्द को मेज पर रख कर नली को जल से पूर्णतया भर लो। नली के दोनों सिरों को उङ्गलियों से बन्द कर नली का एक सिरा जल के भीतर उलटा कर के डुबा दो और दूसरानान्द से बाहर छोड़ दो। देखोगे कि सब का सब पानी नान्द से बाहर निकल जाता है। इस प्रयोग में इस बात का ध्यान अवश्य रहना चाहिये कि बाहर वाली भुजा का सिरा द्रव के तल से नीचा रहे। इस नली द्वारा नान्द का सारा जल खाली होने का क्या कारण हो सकता है ? यह बात स्पष्ट है कि साइफ़न की बाहर वाली भुजा का सिरा जल तल की अपेक्षा नीचा है अतएव इस सिरे पर नली के अन्दर द्रव का दबाव दूसरी नली की अपेक्षा अधिक होता है। अधिक दबाव के कारण नली में से द्रव निकलता रहता है। इस यंत्र द्वारा बड़ी २ हौज़ों और नान्दों में से कोई द्रव निकाल सकते हो अथवा एक वर्तन से दूसरे वर्तन में पलट सकते हो।

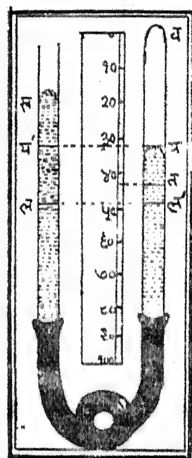


चित्र २७—साइफ़न।

**बायल का नियम** (Boyle's Law)—हमें ऊपर तापक्रम और वायु के आयतन का सम्बन्ध मालूम हो चुका है। वायु का आयतन उष्णमान के तापक्रम के समानुपाती होता है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक वायु दबाने से संकुचित होता है। भिन्न २ दबाव और उन दबावों पर वायु के घनफल के सम्बन्ध

में बायल साहब ने खोज कर एक नियम पाया है। इसकी सत्यता को कोई भी निम्न प्रयोग द्वारा प्रमाणित कर सकता है।

प्रयोग २४—लगभग ३ फ़ीट लम्बी काँच की एक मज़बूत नली ऐसी लो जिसका एक सिरा बन्द हो इसका व्यास लगभग १ सेंटीमीटर पर्याप्त होगा। इस नली के खुले हुए सिरे पर लगभग १½ फ़ीट लम्बी रबड़ की नली लगा कर धागे से बाँध दो ताकि रबड़ की नली काँच की नली से दबाव पड़ने पर छूट न जाय। रबड़ की नली के दूसरी ओर एक कांच की नली जो दोनों ओर से खुली हुई हो लगा दो। फिर चित्रानुसार दोनों नलियों को रबड़ की नली पर से मोड़ कर उर्ध्वाधार खड़ी कर लो। काठ की लम्बी पट्टी ले कर बीच में एक मीटर मापक जड़ दो और उपकरण को इस पर ऐसा लगादो कि इसकी दोनों भुजाओं की लम्बाइयों को मीटर पर देख सकें। इस नली में पहले पारा भरा जाता है और बन्द छोर वाली भुजा ('व य') में कुछ वायु बन्द रहता है। नली की दूसरी भुजा 'खल' खुली हुई है और मीटर मापक पर ऊपर नीचे को सरकाई जा सकती है, 'वय' नली का एकाकार होना अतिआवश्यक है ताकि वायु का आयतन वायु वाली नली की लम्बाई के समानुपाती हो। अब स्पष्ट है कि खुली हुई नली में पारे पर भार सदा वायुमण्डल जनित भार के बराबर होता है और बन्द नली में पारे पर भीतर वाली वायु के दबाव के बराबर। इस प्रकार जब दोनों भुजाओं में पारे के तल एक से ही होते हैं तो इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि 'वय' भुजा में



चित्र २८—बायल के नियम का सत्यापन।

वायु का दबाव व वायु पर दबाव बाहर वाले वायुमण्डल जनित भार के बराबर है। 'खल' नली को मीटर के सहारे कुछ ऊपर को चढ़ाओ देखोगे कि 'वय' नली में भी पूर्वापेक्षा पारा कुछ ऊपर चढ़ जाता है अर्थात् वायु का आयतन घट जाता है। परन्तु खुली नली में पारे का तल बन्द नली की अपेक्षा अधिक चढ़ता है। मानलो किसी स्थिति में बन्द भुजा में पारे का तल 'य' पर है और खुली में 'ख' पर। अब इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'ख' पर वायु मण्डल का भार है और 'य' पर नली के वायु का, किन्तु पारे के स्थिर होने के कारण 'यय'' तल पर दोनों भुजाओं में एक सा ही दबाव होना चाहिये। 'य' पर दबाव वायुमण्डल और—'ख' से 'य'' तक के पारे का ही है। वायुमण्डल जनित दबाव वायुभार मापक से विदित हो सकता है और 'ख' से 'य'' तक की लम्बाई मीटर से जानी जा सकती है। दोनों को जोड़ने से 'ख' या 'य'' पर कुल दबाव मालूम हो सकता है। इस प्रकार बन्द वायु पर दबाव मालूम हो सकता है। इसी भाँति यदि किसी दूसरी स्थिति में बन्द नली में पारे का तल 'त' पर और खुली नली में 'ल' पर हो तो 'ल' पर वायु जनित भार वायु भार मापक से जान सकते हैं और बन्द नली में 'ल'' पर भी इतना ही दबाव होगा। परन्तु 'ल'' पर दबाव 'वत' वायु का तथा 'तल'' पारे का है और यह कुल दबाव वायुमण्डल जनित भार के बराबर है। इस लिये केवल 'वत' वायु का दबाव वायुमण्डल जनित भार और 'तल'' वाले पारे के अन्तर के बराबर हुआ। इसको वायुमण्डल जनित भार में से 'तल'' के भार को घटाने से निकाल सकते हैं। मीटर मापक पर 'व' से 'त' तक लम्बाई देखकर वायु का आयतन जाना जा सकता है। खुली हुई नली को भिन्न भिन्न दूरियों पर ऊपर और नीचे सरका कर देखो और बन्द वायु का आयतन नापते रहो। देखोगे कि ज्यों ज्यों

नली को ऊपर की ओर सरकाते जाते हो त्यों त्यों बन्द वायु पर दबाव बढ़ने से इसका आयतन घटता जाता है। इसके विपरीत ज्यों ज्यों खुली हुई नली को नीचे सरकाते हैं त्यों त्यों आयतन बढ़ता जायगा। परीक्षा से देखोगे कि यदि 'वय' वायु पर दबाव दो गुणा करते हो तो वायु का आयतन आधा ही रह जाता है और यदि पूर्वापेक्षा ड्योढ़ा कर देते हो तो आयतन $\frac{2}{3}$ रह जाता है। ऐसे निरीक्षणों से **बायल साहब ने यह अभिप्राय निकाला कि जिस अनुपात में किसी वायव्य पदार्थ पर दबाव घटाया व बढ़ाया जाता है उसी के विषमानुपाती वायु के आयतन में भी परिवर्तन हो जाता है** अर्थात् **आयतन और वायु पर दबाव का गुणनफल सर्वदा एक स्थायी राशि होता है**। यंत्र में इस सिद्धान्त को तुम स्वयं भी प्रमाणित कर सकते हो। बारम्बार खुली हुई नली को ऊपर नीचे सरका कर प्रतिवार उसी मात्रा वायु का आयतन देख सकते हो और 'वय' नली में पारे के तल पर दबाव भी उपरोक्त रीति से जान सकते हो। यदि इन दोनों को गुणा करोगे तो देखोगे कि ( दबाव × आयतन ) में कोई भेद नहीं होता। इस प्रकार बायल साहब का नियम यह है कि **किसी मात्रा वायु पर दबाव भिन्न भिन्न किये जायं तो वायु का घनफल दबाव की अपेक्षा बिषमानुपाती परिवर्त्तित होता है**। इस प्रयोग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रयोग करते समय वायु की अन्य किसी दशा में अर्थात् तापक्रम इ. में भेद न होने पावे और वायु सूखा हो। इस नियम को चिह्नों में इस प्रकार दर्शाते हैं।

$$\text{द} \propto \frac{1}{\text{आ}}$$

$\therefore$ द × आ = स्थायी ( व अवर्धनीय ) राशि।

∴ Pressure × volume = Constant.

अर्थात् किसी स्थायी तापक्रम पर वायु के दबाव और आयतन का गुणनफल अवर्धनीय होता है।

जब किसी वायु का आचरण बायल के नियमानुसार ठीक ठीक होता है, तो उस वायु को पूर्ण सम्पन्न वायु (Perfect gas) कहते हैं। साधारणतया भिन्न भिन्न वायुओं के आचरण में बहुत थोड़ा ही भेद होता है।

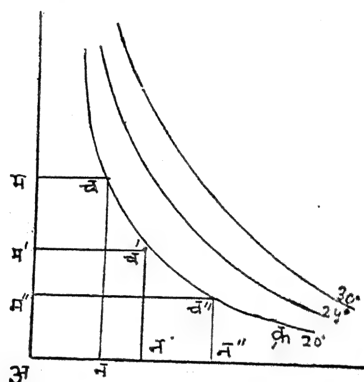
वायव्य पदार्थों में यह एक और विशेषता है कि जिस प्रकार स्थायी दबाव पर ताप के भेद से प्रसार गुणक $\frac{१}{२७३}$ होता है उसी प्रकार वायु का आयतन स्थायी रखने पर दबाव का समृद्धिगुणक भी $\frac{१}{२७३}$ ही होता है अर्थात् किसी वायु का तापक्रम १°श. बढ़ाने से वायु का दबाव उस वायु के ०°श. वाले दबाव का $\frac{१}{२७३}$ भाग बढ़ता है। यदि किसी वायु का ०°श. पर दबाव $द_०$ हो और त°श. पर $द_त$ हो तो वायु का आयतन स्थायी रखने पर

$द_त = द_० ( १ + स. त )$ यदि 'स' से हम दबाव का समृद्धि गुणक बोधित करें।

यदि किसी मात्रा वायु के दबाव और उसके आयतन को चित्रानुसार हम 'अद' और 'अत' रेखाओं पर प्रदर्शित करें तो प्रत्येक दबाव और तदनुसार संगत आयतन के लिये हमें एक बिन्दु मिलेगा। इसी प्रकार उसी वायु के ऊपर भिन्न भिन्न दबावों व आयतनों को चिन्हित कर विन्दुओं को लिखें और विन्दुओं को मिला वक्र बना लें तो इस वक्र को समतापक्रम वक्र कहते हैं।

यदि २०° वाले वक्र पर कोई सा भी विन्दु 'च', 'च′', व 'च″' से दोनों भुजाओं पर समकोण बनाती हुई रेखाएं खींचें तो प्रत्येक

दशा में जो समचतुर्भुज ( जैसे 'मचनअ' ) बनेंगे उन सब का क्षेत्रफल एक सा ही होगा। यह संख्या में हर बार दबाव और आयतन के गुणनफल के बराबर होगा। एक ही मात्रा वायु का भिन्न भिन्न तापक्रमों पर एक एक समतापक्रमक बन सकता है।




चित्र २६—समतापक्रम वक्र।

**तापक्रम और दबाव के लिये वायव्य पादार्थों के आयतन का शुद्धीकरण**—अब हमें वायु के आयतन और उसके दबाब तथा तापक्रम का सम्बन्ध ज्ञात हो गया है। यह और देखना शेष है कि यदि त°श० तापक्रम और 'द' शतांशमीटर दबाव पर किसी वायु का आयतन 'घ' हो तो $त_1$° श० तापक्रम और '$द_1$' शतांशमीटर दबाव पर वायु का आयतन कैसे निकालते हैं।

(१) प्रथमबार यह मान लो कि तापक्रम तो त° श पर स्थायी रहता है और दबाव 'द' शतांशमीटर के स्थान बदल कर '$द_1$' शतांशमीटर हो जाता है यदि नया आयतन 'अ' हो तो वायल के नियमानुसार

$$द \times घ = द_१ \times अ \therefore अ = \frac{द \times घ}{द_१}$$

अर्थात् केवल दबाव के बदलने पर वायु का आयतन $\frac{द \times घ}{द_१}$ हो जायगा।

(२) द्वितीय बार यदि $त^\circ$श० तापक्रम बदल कर $त_१^\circ$ श० हो जावे तो चार्ल्स के नियमानुसार वायु का नया आयतन भी निकाल सकते हैं। मान लो तापक्रम बदल कर $\frac{द \times घ}{द_१}$ से $घ_१$ हो जाता है। तो चार्ल्स के नियम के अनुसार

$$\frac{\frac{द \times घ}{द_१}}{घ_१} = \frac{२७३ + त}{२७३ + त_१}$$

$\therefore घ_१ \frac{२७३ + त}{२७३ + त_१} = \frac{द \quad घ}{द_१}$ यहाँ पर यदि $त^\circ$ श और $त_१$श० वास्तविक उष्णमानमापक पर $थ^\circ$ और $थ_१$ के समानुकूल हों तो यह समीकरण

$$\frac{घ_१ \times थ}{थ_१} = \frac{द \times घ}{द_१} \text{ हो जाती है}$$

$\therefore \frac{घ_१ \times द_१}{थ_१} = \frac{द \times घ}{थ}$ ( यहाँ $घ_१$, $द_१$ और $थ_१$ वायु के अन्तिम घनफल, दबाव और उष्णमानमापक पर तापक्रम हैं और द, घ, थ वायु के प्रारम्भिक दबाव, आयतन और उष्णमानमापक पर तापक्रम क्रमानुसार थे )

इस समीकरण द्वारा यह स्पष्ट है कि यदि इन संख्याओं में से हमें कोई ५ संख्याएं मालूम हों तो हमें छठी संख्या भी ज्ञात हो

सकती है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि थ° और थ°₁ उष्णमाननापक के तापक्रम हैं अन्य किसी तापमापक के नहीं।

उदाहरण १—२५°श तापक्रम और ७५ शतांशमीटर दबाव पर किसी वायु का आयतन ७७५ घन शतांशमीटर है तो बताओ कि ४५° श० पर और ७८ शतांशमीटर दबाव पर वायु का क्या आयतन होगा।

$$\frac{घ_1 \times द_1}{थ_1} = \frac{द \times घ}{थ} \therefore \text{ स्थानापन्नकर } \frac{घ_1 \times ७८}{२७३+४५} = \frac{७५ \times ७७५}{२७३+२५}$$

$$\therefore घ_1 = \frac{७५ \times ७७५ \times ३१८}{२९८ \times ७८} \text{घनशतांशमीटर} = ७९५\cdot२ \text{घनशतांशमीटर}$$

$\therefore$वायु का आयतन = ७९५·२ घनशतांशमीटर

उदाहरण २— —५१° शतांश और ७४ शतांशमीटर पर ओषजन वायु का आयतन ३०० घन शतांशमीटर है तो बताओ—२६° श पर यदि आयतन ३२५ घनतांशमीटर कर दिया जाय तो वायु का कितना दबाव होगा।

$$\text{उपरोक्त समीकरणानुसार } \frac{घ_1 \times द_1}{थ_1} = \frac{द \times घ}{थ}$$

$$\text{अर्थात् स्थानापन्न से } \frac{३२५ \times द_1}{२७३-२६} = \frac{७४ \times ३००}{२७३-५१}$$

यानी $\therefore$ $द_1$ = ७६श. मी

$\therefore$ओषजन पर ७६ शतांशमीटर पारे की बराबर दबाव होगा।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (४)।

( १ ) क्या वायु में भी भार होता है ? इसको दिखाने के लिये क्या २ प्रयोग करोगे, वायु का घनत्व कैसे निकाल सकते हो ?

( २ ) (अ) साधारण वायु भारमापक का वर्णन करो।

(ब) जब साधारण वायुभार ७५ शतांशमीटर है तो वायुभार मापक के शून्यस्थान में १० घनशतांशमीटर वायु चढ़ा दी गई है। पारे का तल तुरन्त कम हो कर २५ शतांशमीटर पर ठहर जाता है तो बताओ वायुभार मापक नली में वायु का क्या आयतन है ?

( ३ ) किसी ऐसे प्रयोग का वर्णन करो जिससे यह सिद्ध हो कि वायु में दबाव होता है। यदि वायुभारमापक में पारे के स्थान पर ग्लिसरीन का प्रयोग करें तो वायुभार मान की क्या ऊँचाई होगी ? पारा ग्लिसरीन से १०.७ गुणा भारी है। यदि वायु-भारमापक की बन्द नली ऊपर से चटख़ जाय तो क्या प्रभाव होगा ?

( ४ ) साइफन का कार्य किस बात पर निर्भर है ? इसके द्वारा पारा कितनी ऊँचाई तक चढ़ सकता है ? फाउन्टेन क़लम स्याही स्वयं कैसे भर लेता है ?

( ५ ) साधारण पम्प के द्वारा जल कैसे चढ़ जाता है ? साधारण पम्प द्वारा जल ३० फ़ीट से ऊपर क्यों नहीं चढ़ता चित्र द्वारा समझाओ।

( ६ ) वायु निःसारक यंत्र का सचित्र वर्णन करो।

( ७ ) वायल साहब के नियम का सत्यापन करने के लिये कोई प्रयोग दिखाओ। इसमें किन किन बातों पर विशेष ध्यान दोगे ? ७०० सहस्रांशमीटर दबाव पर ६०० घन शतांशमीटर वायु है यदि इसको ४०० घन शतांशमीटर ग्रहण शक्ति वाली कुप्पी में भर दिया जाय तो बताओ इस वायु पर क्या दबाव होगा।

( ८ ) वायु के घन प्रसारगुणक से तुम क्या तात्पर्य समझते हो ? उष्णमानमापन से क्या प्रयोजन है ? ७६ शतांशमीटर वायुभार और २५° श. तापक्रम पर किसी वायु का घनफल ४०

लिटर है तो बताओ कि यदि तापक्रम ७५° श हो तो किस वायुभार पर वायु का घनफल ३० लिटर होगा।

( ९ ) आधे वायुभार के दबाव पर ५०° श. तापक्रम पर हाइड्रोजन वायु का एक-दशांश घनमीटर घनफल है तो बताओ ७०० सहस्रांशमीटर और १०° श. तापक्रम पर वायु का क्या घनफल होगा ?

(१०) हिमालय की चोटी एवरेस्ट २९००० फीट से ऊँची है और वहाँ वायुभार सम्भवतः ७·५ इंच होगा। यदि समुद्रतट पर वायु का घनत्व ·००१२ ग्राम प्रति घन शतांशमीटर हो तो एवरेस्ट पर वायु का क्या घनत्व होना चाहिये ? हिमालय की चोटी पर जाने में क्या क्या विशेष कठिनाइयाँ पड़ेंगी ?

(११) प्रमाणित वायुभार और ०° श. पर एक लिटर वाली काँच की सुराही में वायु का भार १·२९३ ग्राम है। तो उसी तापक्रम पर और ७८ शतांशमीटर वायुभार पर सुराही में कितना वायु आवेगा ?

(१२) तापक्रम तथा दबाव द्वारा वायु का आयतन कैसे बदलता है ? बायल के उपकरण में २५° श. पर ६४० घन सहस्रांशमीटर वायु इकट्ठा करा है। साधारण वायुभार ७४५ सहस्रांशमीटर है परन्तु वन्द नली में खुली नली की अपेक्षा पारे का तल १२·५ शतांशमीटर ऊँचा है तो बताओ प्रमाणित दबाव और तापक्रम ( ७६ शतांशमीटर और ०°श) पर वायु का क्या आयतन होगा ?

(१३) वायु के आयतन के साथ वायु के तापक्रम का क्या सम्बन्ध होता है ?

(१४) यदि प्रमाणित वायुभार और तापक्रम पर वायु का घनत्व ००१२९३ ग्राम प्रति घन शतांशमीटर हो तो १२° श. और ७९·८ शतांशमीटर वायुभार पर दिखाओ कि ·००१२३९ ग्राम होगा।

(१५) पारे के ऊपर एक यूडियोमीटर ट्यूब में १५ °श पर आक्सीजन वायु का आयतन ४५ घन शतांशमीटर है और नली में पारा बाहर के पारे के तल से ८ शतांशमीटर ऊंचा है। बायुभार मापक में पारा ७४ शतांशमीटर पर है, तो वायु का आयतन प्रमाणित तापक्रम और वायुभार पर निकालो।

---

# पांचवाँ अध्याय।

## ताप परिमाण, आपेक्षिक ताप, तथा उष्णतामिति।

**ताप की मात्रा और तापक्रम में भेद**—यह हम दूसरे अध्याय में देख चुके हैं कि तापक्रम ताप की मात्रा को नहीं कहते। तापक्रम केवल किसी वस्तु की दशा को सूचित करता है। तापमापक को उबलते हुए जल के एक गिलास में रक्खो और वैसे ही दूसरे तापमापक को उबलते हुए जल की नान्द में रक्खो तो तुम्हें विदित होगा कि नान्द का और गिलास का तापक्रम एक सा ही है, किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि नान्द भरे उबलते हुए जल में गिलास भरे हुए जल की अपेक्षा ताप की मात्रा अधिक है। तापक्रम का अधिक होना केवल यही सूचित करता है कि इसमें से ताप कम तापक्रम वाले पदार्थ में चला जावेगा। यह एक साधारण अभ्यास की बात है कि यदि गर्म और ठंढी वस्तुएँ—चाहे वे छोटी बड़ी हों—परस्पर सन्निकट रक्खी जावें तो गर्म वस्तु पूर्वापेक्षा थोड़ी देर पीछे ठंढी हो जाती है और ठंढी वस्तु गर्म हो जाती है; इस प्रकार ताप का संचालन उस समय तक होता रहता है जब तक कि दोनों वस्तुओं का तापक्रम एक ही सा नहीं हो जाता।

प्रयोग २५—एक बीकर में लगभग १०० घन शतांशमीटर जल ले लो। इसी के बराबर एक दूसरे बीकर में जल ले लो। इस बीकर के जल को कुछ गर्म करो और तापक्रम तापमापक से देख लो। मान लो इसका तापक्रम त°श. है। अब ठंढे बीकर वाले जल का तापक्रम भी देख लो मान लो यह थ°श. है। ठंढे बीकर का जल गर्म जल वाले बीकर में डाल कर दोनों को मिला दो। इस मिश्रण का भी तापमापक द्वारा तापक्रम देख लो। प्रयोग से तुम्हें ज्ञात होगा कि यदि प्रयोग में कोई त्रुटि न होगी तो नवीन तापक्रम ठंढे और गर्म जलों के मध्यस्थ ही होगा। इन सब संख्याओं ( मात्रा व तापक्रम इ ) को निम्न प्रकार की पाटी में चढ़ाओ तो देखोगे कि ४ र्थ और ५ म ख़ानों में फल एक से ही होंगे।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|
| प्रत्येक बीकर में जल की मात्रा | ठंढे जल का ताप-क्रम | गर्म जल का ताप-क्रम त° | $\frac{(थ+त)°}{२}$ श. | मिश्रण का प्रत्यक्ष तापक्रम |

**ताप की इकाई (Heat Unit)**—इस सब फलों की परीक्षा में एक यही तात्पर्य निकलेगा कि गर्म जल का कुछ ताप ठंढे जल में चला गया और मिश्रण का तापक्रम ठंढे और गर्म जल के तापक्रमों के मध्यस्थ हो गया। ऐसे प्रयोगों से यही नहीं किन्तु एक और भी परिणाम निकलता है, कि यदि हम १०० ग्राम जल ६०°श. पर और १०० ही ग्राम जल २०°श. पर मिलायें तो मिश्रण का तापक्रम लगभग ४०°श. होगा अर्थात् १०० ग्राम जल में से जितना ताप

६०° से ४०° श तक ठंढा होने में निकलता है उतना ही ताप १०० ग्राम जल को २०° से ४०° श तक गर्म करने में लगता है। प्रत्येक मिश्रण की दशा में गर्म पदार्थ में से निकला हुआ ताप ठंढे द्रव में गये हुए ताप के बारबर होता है। अथवा १ ग्राम जल में से १° श ठण्ढा होने में जितना ताप निकलता है उतना ही ताप १ ग्राम जल को १°श· तक गर्म कर सकता है। इतने ही ताप की मात्रा को वैज्ञानिकों ने ताप की इकाई (Calorie) मात्रा मान रक्खा है।

इस प्रकार ताप की इकाई ताप की वह मात्रा होती है जिसकी हमें १ ग्राम जल को १°श. गर्म करने के लिये आवश्यकता होती है, अथवा उस ताप को जो १ ग्राम जल को १°श. ठंढा करने में निकलता है तापाङ्क व कलौरी* कहते हैं। ताप की मात्राओं के नापने को ही उष्णतामिति (Calorimetry) कहते हैं।

ताप १ ग्राम जल में से १°श. ठंढा होने में १ कलौरी निकलता है।
ताप ५० ,, ,, १°श. ,, ,, ५० कलौरी ,, ,, ।
५० ग्राम जल में से २५°श. ठंढा होने में ५० × २५ (=१२५०) कलौरी ताप निकलेगा
म ,, ,, त°श· ,, ,, म×त कलौरी ताप निकलेगा।

---

* वास्तव में जितने ताप की आवश्यकता ५० से ५१° श तक एक ग्राम जल को गर्म करने में होती है ०°श. से १°श. तक गर्म करने में उतने ही ताप की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु वैज्ञानिक व्यवहार में साधारणतया जितने ताप की आवश्यकता १ ग्राम जल को ०° से १००° श. तक गर्म करने के लिये होती है, उस ताप के शतांश भाग को कलौरी मानते हैं।

उदाहरण—यदि १०० ग्राम जल ७०° श. पर ३०० ग्राम जल में, जिसका तापक्रम २५° श. है, मिलावें तो मिश्रण का क्या तापक्रम होगा ?

मान लो नया तापक्रम त° श. है ।

१०० ग्राम जल में से ७०° श. से त° श. तक ठण्ढा होते समय [ १०० × (७०–त) ] कलौरी ताप निकलेगा परंतु ३०० ग्राम जल को २५ श° से त° श. गर्म होने में [ ३०० × (त–२५) ] कलौरी की आवश्यकता होगी ।

जितना ताप गर्म जल में से निकलता है वह कुल ठण्ढे जल को गर्म करने में लगता है ।

$$\therefore \quad १०० \; (७० - त) = ३०० \; (त - २५)$$

$$\therefore \; ७० - त = ३ \; त - ७५$$

$$\text{या} \quad ४ \; त = १४५° \; श$$

$$\therefore \; त = ३६.२५° \; श.$$

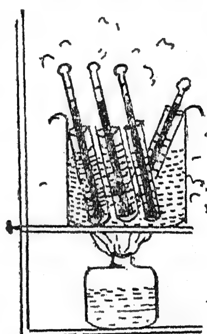
इस प्रकार मिश्रण का अन्तिम तापक्रम ३६·२५° श होगा ।

परन्तु इस प्रकार की गणना उसी समय ठीक हो सकती है जब हम यह समझ लें कि ताप एक जल में से निकल कर केवल दूसरे ही जल में जाता है । इसमें जो ताप बर्तन के ठण्ढा करने में लगेगा उसका विचार नहीं किया है ( यदि ठण्ढे जल वाले बर्तन में हमने गर्म जल डाला है ) ।

**भिन्न भिन्न पदार्थों में ताप की मात्राओं की तुलना:--** हम देख चुके हैं कि जल में ताप की मात्रा एक तो जल के भार पर और दूसरे तापक्रम पर निर्भर है। परन्तु यह देखने की आवश्यकता है कि अन्य पदार्थों को गर्म करने के हेतु भी उतने ही ( पानी के समानुकूल ) ताप की आवश्यकता होती है अथवा न्यूनाधिक। १०० ग्राम जल को ५०° श गर्म करने के हेतु हमें

५० × १००( =५०० ) कलौरी ताप की आवश्यकता पड़ती है, क्या १०० ग्राम पारे, लोहे, अथवा ताम्र को ५०° श गर्म करने के हेतु भी इतने ही ताप की आवश्यकता होगी ? इस बात को निर्णय करने के लिये निम्न प्रयोग को करना अनिवार्य है।

प्रयोग २६—चार भिन्न भिन्न परखनलियों में चार वस्तुएँ ( मान लो जल, पारद, लोहचून और ताम्रचूर्ण ) बराबर बराबर तौल कर लो और प्रत्येक में एक एक तापमापक रख सब परख नलियों का मुँह रूई से बन्द कर दो। इन सब परख नलियों को एक पानी के बीकर में रख कर गर्म करो। इनके तापक्रमों को देखने से विदित होगा कि सब का तापक्रम वही है जो बाहर जल का है। इतने ही में दूसरे चार बीकरों में एक ही तापक्रम पर बराबर बराबर जल ले लो। अब प्रत्येक बीकर में एक एक परखनली की वस्तु तापक्रम देखकर डाल दो और तापमापक द्वारा सहज से हिलाकर प्रत्येक बीकर के मिश्रण का तापक्रम निश्चित करो। इन सब को देखने से ज्ञात होगा कि सब बीकरों का तापक्रम एक सा ही नहीं है। वस्तुओं की मात्रा परख नलियों में एक सी ही थीं और उनका तापक्रम भी एक ही था और इसी प्रकार बीकरों में भी एक ही तापक्रम पर बराबर बराबर जल की मात्राएँ थीं परन्तु मिश्रण के तापक्रम फिर भी भिन्न भिन्न निकले। इन सब निरीक्षणों से यही फल निकल सकता है कि भिन्न भिन्न पदार्थों की एक सी ही मात्राओं में भी एक ही तापक्रम पर ताप की



चित्र ३०—भिन्न भिन्न पदार्थों की भिन्न २ तापसम्बन्धी ग्रहणशक्तियाँ

**मात्राएँ भिन्न २ होती हैं,** यदि ऐसा न होता तो सब बीकरों में अन्तिम तापक्रम एक से ही होते।

प्रयोग २७—इसी परिणाम को सादी रीति में दर्शाने के लिये भिन्न भिन्न धातुओं की कुछ गोलियाँ लो और सब को एक ही गर्म रेत में रख कर गर्म करो जिससे कि इन सब का तापक्रम एक सा ही हो जाय। फिर मोम की लगभग १ शतांश-मीटर मोटी चकली पर एक साथ ही सब गोलियों को रख दो। इस प्रयोग से विदित होगा कि लोहे की गोली सब से पहले छेद जाती है और इस गोली द्वारा सब से अधिक मोम पिघल जाता है। इसके पश्चात् मोम के पिघलाने में जस्त, ताम्र और सीसे की गोलियों का नम्बर आता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न धातुओं की बराबर बराबर मात्राओं ने एक ही तापक्रम पर होते हुये भी ताप की भिन्न भिन्न मात्राएँ मोम को दी हैं जिससे मोम की भिन्न भिन्न मात्राएँ पिघल सकीं।

**जितने ताप की मात्रा की हमें किसी पदार्थ को १° श गर्म करने के लिये आवश्यकता होती है उसे पदार्थ की तापसम्बन्धी ग्रहण शक्ति** (Capacity for heat) **कहते हैं।** उपरोक्त प्रयोगों के फलों से यह परिणाम निकलता है कि भिन्न भिन्न पदार्थों की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्तियों में अन्तर होता है। छब्बीसवें प्रयोग में उस मिश्रण का तापक्रम जिसमें कि परखनली से गर्म जल डाला था अन्य बीकरों की अपेक्षा अधिक था। इससे यह बात सिद्ध हुई कि चारों पदार्थों में से जल की ताप-सम्बन्धी ग्रहणशक्ति सब से अधिक है।

जैसा कि हमें ज्ञात है १ ग्राम जल को १° श गर्म करने के हेतु १ कलौरी ताप की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु

१ ग्राम पारद का १° श. तापक्रम बढ़ाने के लिये केवल ·०३३ कलौरी और १ ग्राम ताम्र को १° श. गर्म करने के लिये केवल ·०९५ कलौरी और लोहे को केवल ·११२ कलौरी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जल की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्ति अपेक्षाकृत सब से अधिक होने के कारण, जल को ही ताप की मात्रा का इकाई मानने के लिये प्रमाण मान रक्खा है।

जिस प्रकार हम जल की अपेक्षा दूसरे पदार्थों का विशिष्ट गुरुत्व व आपेक्षिक घनत्त्व निकालते हैं; उसी प्रकार दूसरे पदार्थों की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्तियों की तुलना जल की तापसम्बन्धी ग्रहण शक्ति से कर सकते हैं। इसी निष्पत्ति को हम विशिष्ट ताप ( Specific heat ) कहते हैं। इस भाँति यह कह सकते हैं कि यदि हम किसी मात्रा पदार्थ को किसी तापक्रम से किसी दूसरे तापक्रम तक गर्म करें और उतने ही जल को उतनी ही कक्षा तापक्रम गर्म करें तो क्रमशः जितने ताप की आवश्यकता होती है उनकी निष्पत्ति को विशिष्ट ताप कहते हैं। अथवा किसी पदार्थका विशिष्ट ताप वह संख्या है जितनी बार जल की ताप सम्बन्धी ग्रहणशक्ति उस पदार्थ की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्ति में सम्मिलित है।

अतएव विशिष्ट ताप ( Specific heat )

$$= \frac{\text{जितना ताप म ग्राम पदार्थ को त° श गर्म करें}}{\text{जितना ताप म गर्म जल को त° श गर्म करे}}$$

$$= \frac{\text{त × म ग्राम पदार्थ की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्ति}}{\text{त × म ग्राम जल की ताप सम्बन्धी ग्रहणशक्ति}}$$

$$= \frac{\text{म} \times \text{१ ग्राम पदार्थ की तापसम्बन्धी ग्रहणशक्ति}}{\text{म} \times \text{१ ग्राम जल की ताप सम्बन्धी ग्रहणशक्ति}}$$

$$= \frac{\text{१ ग्राम पदार्थ की तापसम्बम्धी ग्रहणशक्ति}}{\text{१}}$$

जब यह कहते हैं कि पारे का विशिष्ट ताप ·०३३ (या $\frac{१}{३०}$) है तो कहने का तात्पर्य यह है कि किसी मात्रा पारे का तापक्रम बढ़ाने के लिये उतने ही जल का उतना ही तापक्रम बढ़ानेवाले ताप की अपेक्षा $\frac{१}{३०}$ वें भाग की आवश्यकता पड़ती है। इस लिये 'म' ग्राम पदार्थ का तापक्रम त° श बढ़ाने के लिये, यदि पदार्थ का विशिष्ट ताप 'व' हो, तो म × त × व कलौरी की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि म ग्राम पदार्थ को त°श ठंढा करें तो पदार्थ में से म × त × व कलौरी ताप निकलेगा।

उदाहरण १—यदि पारे का विशिष्ट ताप ·०३३ है तो ५०० ग्राम पारद का ३०° श. से १५०°श तापक्रम बढ़ाने के हेतु कितने ताप की आवश्यकता होगी ?

यहाँ म = ५०० ग्राम

व = ·०३३

त = १५० − ३० = १२०° शतांश कक्षा

∴ ताप की आवश्यक मात्रा = म × व × त = ५०० × ·०३३ × १२० = १९८० कलौरी।

उदाहरण २—यदि २०° श पर ७० ग्राम जल में ५०° श पर १०० ग्राम जल मिलावें तो मिश्रण का तापक्रम क्या हो जायगा ?

मान लो नवीन तापक्रम त°श होगा, तो

१०० × (५० − त) × १ = ७० (त − २०) १

व १७० त = ६४००

∴ त = ३७·°६ शतांश कक्षा।

**विशिष्टताप निर्धारण**—विशिष्ट ताप निकालने के लिये पदार्थ की कुछ मात्रा को किसी विशेष तापक्रम तक गर्म कर लेते हैं और इसको फिर एक पतली धातु की चादर के गिलास उष्णता व कलौरी मापक* में थोड़े से ठंढे जल में डाल देते हैं। यदि ताप विकिरण व अन्य कारणों से व्यर्थ नष्ट न हो तो जितना ताप गर्म पदार्थ में से निकलेगा वह कुल ठंढे ही जल में जायगा। इस प्रकार मिश्रण में सदा जितना ताप गर्म पदार्थ से निकलता है उतना ही ताप ठंढे जल में जाता है। उदाहरणार्थ मान लो ८०° श पर ४० ग्राम सीसे के छर्रे २०° श पर ५० ग्राम जल में डाल दिये गये, यदि मिश्रण का तापक्रम २१°·५ श. हो (मान लो विशिष्ट ताप 'व' है) तो

सीसे से निकला हुआ ताप $=$ ४० (८० $-$ २१°·५) $\times$ व कलौरी

जल में गया हुआ ताप $=$ ५० (२१·५ $-$ २०) $\times$ १ कलौरी

$\therefore$ ४० (८० $-$ २१·५) व $=$ ५० (२१·५ $-$ २०) १.

या २३४० व $=$ ७५

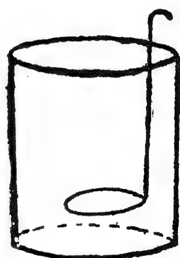
$\therefore$ व $= \frac{\text{७५}}{\text{२३४०}} =$ ·०३२

इस प्रकार सीसे का विशिष्ट ताप ·०३२ निकलता है।

उपरोक्त उदाहरण में विशिष्ट ताप का निर्धारण तो हुआ परन्तु

---

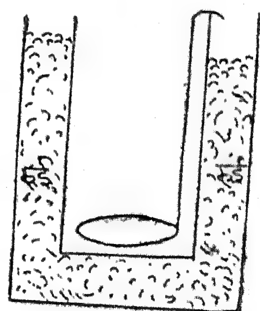
* जिस बरतन में गर्म जल व पदार्थ का मिश्रण करते हैं वह एक खोखला बेलनाकार ताम्र व पीतल का छोटा सा गिलास होता है। इसी को कलौरी मापक ( Calorimeter ) कहते हैं। इसमें एक तार का बना हुआ चालक भी होता है (चित्र ३१) जो मिश्रण को चलाने के काम में आता है।



चित्र ३१—कलौरीमापक।

जब यह विचारते हैं कि कुल गर्म वस्तु से निकले हुए ताप में से कुछ ताप की मात्रा व्यर्थ भी जाती है ( उदाहरणार्थ कुछ ताप विकिरण द्वारा व्यर्थ जाता है और कुछ ताप कलौरी मापक गिलास को गर्म करने में लगता है ) तो विशिष्ट ताप निर्धारण की क्रियात्मक विधि कुछ और संकीर्ण हो जाती है। जो ताप की मात्रा विकिरण द्वारा निकल जाती है उसे गणना से छोड़ देते हैं क्योंकि ऐसा ताप बहुत न्यून मात्रा में व्यर्थ जाता है। परन्तु जो ताप कलौरी मापक को गर्म करने में व्यय होता है उसकी गणना अवश्य करनी पड़ती है। **जल की उस मात्रा को जिसे १° श गर्म करने के हेतु उतने ही ताप की आवश्यकता पड़ती है, जितनी इस उष्णतामापक ताम्र को १° श. गर्म करने में होती है, उसको उष्णतामापक का तुल्यशक्तिक जल** ( Water equivalent of Calorimteer ) कहते हैं।

प्रयोग २८—**उष्णतामापक ताम्र के तुल्यशक्तिक जल का निश्चय करना**—एक उष्णतापमापक ताम्र को तौल कर उसको लगभग तिहाई जल से भर लो। इसको फिर तौल कर एक टीन के बड़े गिलास में जिसमें चारों ओर रुई के गाले ( फाए ) लगे हों रख दो ताकि जल में से ताप विकिरण द्वारा न आ जा सके। फिर एक बीकर में कुछ जल गर्म कर लो। इसका और ठण्ढे पानी का ठीक ठीक तापक्रम पढ़कर उष्णतामापक में थोड़ा सा गर्म जल डाल दो ( लगभग दो-तिहाई




चित्र ३२—रक्षक सहित कलौरी मापक।

तक)। मिश्रण को चालक द्वारा धीरे धीरे चला कर तुरन्त मिश्रण का तापक्रम देख लो। तत्पश्चात् उष्णतामापक को तौल कर गर्म जल की जो मात्रा डाली है निकाल लो। किसी प्रयोग में

| | | |
|---|---|---|
| मान लो उष्णतामापक का भार | = | ८० ग्राम |
| उष्णतामापक+ठण्ढा जल | = | १२३·४ ग्राम |
| ∴ केवल ठण्ढे जल का भार | = | ४३·४ ग्राम |
| ठण्ढे जल का तापक्रम | = | २०° शतांश |
| गर्म जल का तापक्रम | = | ४५° शतांश |
| मिश्रण का अन्तिम तापक्रम | = | २८° शतांश |
| उष्णतामापक+ठण्ढा जल+गर्म जल | = | १४७·४ ग्राम |
| ∴ केवल गर्म जल का भार | = | २४ ग्राम |

इस प्रयोग में २४ ग्राम जल में से ४५° से २८° श. तक ठण्ढा होते समय २४ × १७ कलौरी ताप निकलेगा। ४३·४ ग्राम ठण्ढा जल २०° से २८° श. तक गर्म होने में ४३·४ × ८ कलौरी ताप ग्रहण करेगा। यदि उष्णतामापक का तुल्य शक्तिक जल 'ज' ग्राम हो तो इसको २०° से २८° श. तक गर्म करने के लिये ८ ज कलौरी की आवश्यकता होगी। परन्तु कुल ताप जो गर्म जल से निकलता है वह केवल उष्णतामापक तथा ठण्ढे जल के गर्म करने में लगता है अर्थात् गर्म जल से निकला ताप, ठण्ढे जल और उष्णतामापक में गये हुये ताप की मात्रा के बराबर होता है।

∴ २४ × १७ कलौरी = ( ४३·४ × ८ + ८ ज ) कलौरी

∴ ज अर्थात् उष्णतामापक का तुल्यशक्तिक जल = ७·६ ग्राम

**इस क्रियात्मक विधि के अतिरिक्त तुल्य शक्तिक जल निश्चय करने की और भी विधि है।** यदि 'म' ग्राम उष्णतामापक का भार हो और 'व' धातु का विशिष्ट ताप हो तो उष्णतामापक को १°श गर्म करने के लिये म × व × १ कलौरी की

आवश्यकता होगी। परन्तु जल की वह मात्रा जिसके लिये म × व कलौरी की आवश्यकता १° श. तापक्रम बढ़ाने के लिये होती है म × व ग्राम होगी। इस प्रकार उष्णतामापक ताम्र का तुल्य-शक्तिक जल निकालने के हेतु उष्णतामापक के भार को उस धातु के विशिष्टताप से भी गुणा कर लिया करते हैं।

विशिष्टताप के निर्धारण में लिये हुए ठंढे जल में उष्णतामापक का विचार न कर इसका तुल्यशक्तिक जल योग कर लेना चाहिये। यदि किसी प्रयोग में उष्णता-मापक ताम्र का भार ५० ग्राम और उसमें ३० ग्राम जल लिया हो तो जल के ही तापक्रम पर कुल का भार ३०+५० × ·०९५ अर्थात् ३४·७५ ग्राम ( ·०९५ उष्णतामापक की धातु का विशिष्ट-ताप है ) मान कर गणना करनी चाहिये।

प्रयोग २९—ठोसों के विशिष्टताप ( Specific heat ) निर्धारण की क्रियात्मक विधिः जिस पदार्थ का विशिष्टताप निकालना हो उसके लगभग ५० ग्राम के एक टुकड़े को परखनली में रक्खो और इस नली के मुँह को रूई से बन्द कर इसमें एक तापमापक फँसा दो और कुल नली को गर्म जल के एक बीकर में रख दो। पदार्थ का तापक्रम तापमापक द्वारा पढ़ा जा सकता है। फिर एक उष्णतामापक को ( जिसका तुम तुल्यशक्तिक जल निकाल चुके हो ) तौल कर तिहाई के लगभग जल से भर लो और जल का भार इसे दुबारा तौल कर निकाल लो। इसमें एक अन्य तापमापक रख कर उष्णतामापक को टीन के एक रक्षक में रख लो।

पदार्थ के गर्म हो जाने पर परखनली और उष्णता-मापक में ठंढे जल के तापक्रम पढ़कर जल में पदार्थ को

शीघ्रता से डाल दो और मिश्रण को चला कर अन्तिमस्थिर तापक्रम ले लो ।

| | | |
|---|---|---|
| १ | ठोस की मात्रा | = म ग्राम |
| २ | उष्णतामापक का तुल्यशक्तिक जल | = तु ग्राम |
| ३ | उष्णतामापक का भार | = ...ग्राम |
| ४ | उष्णतामापक + जल का भार | = ...ग्राम |
| ५ | ∴ केवल ठंढे जल का भार (४) − (३) | = $म_1$ ग्राम |
| ६ | ठंढे जल का तापक्रम | = ...°श |
| ७ | गर्म पदार्थ का तापक्रम | = ...°श |
| ८ | मिश्रण का तापक्रम | = ...°श |
| ९ | ∴ ठोस के तापक्रम में न्यूनता (७)-(८) | = त° श |
| १० | ∴ उष्णतामापक तथा ठंढे जल के तापक्रम में वृद्धि (८)-(६) | = $त_1$° श |
| | मान लो ठोस का विशिष्टताप | = व |

म ग्राम ठोस त °श ठंढा होने में म × व × त कलौरी ताप देता है ; परन्तु उष्णतामापक तथा ठंढे जल में गये हुए ताप की मात्रा = $म_1 \times त_1 \times १ + तु \times त_1 \times १$

$$\therefore म. व. त. = (म_1 + तु)\, त_1$$

$$\therefore व = \frac{(म_1 + तु)\, त_1}{म\, त}$$

इस विधि से प्रत्येक ठोस का विशिष्टताप निश्चित कर सकते हो।

**प्रयोग ३०—द्रवों का विशिष्टताप**—द्रवों में ठोसों की अपेक्षा एक विशेषता यह है कि जब द्रवों को गर्म किया जाता है तो वे प्रायः उड़ भी जाते हैं। इसलिये उष्णतामापक को तौल कर आधे के लगभग इष्ट द्रव से भर लो और द्रव का ठीक ठीक भार निकाल

लो। इसका शुद्ध तापक्रम पढ़ कर इसमें कुछ गर्म जल जिसका ठीक तापकम देख लिया हो मिला दो। दोनों द्रवों का भली भाँति मिश्रण कर तापक्रम पढ़ लो। ठंढा होने पर कुल का भार निकाल कर जितना गर्म जल मिलाया है उसका भार निकाल लो। इस प्रकार द्रव का विशिष्टताप निर्णय कर सकते हो।

उदाहरण १—३०० ग्राम सीसे के एक गेन्द को ९९.५° श तक गर्म करके एक उष्णतामापक में जिसका भार २७.५ ग्राम है और जिसमें १८° श. पर ५४ ग्राम जल है डाल दिया। यदि अन्तिम तापक्रम २९.५° श हो और ताम्र का विशिष्टताप .०९५ हो तो सीसे का विशिष्टताप निकालो।

मान लो सीसे का विशिष्ट ताप 'व' है।

तो सीसे से निकला हुआ ताप = ३०० (९९.५ – २९.५) व कलौरी

ठंढे उष्णतामापक और जल में गये हुए ताप की मात्रा = ५४ ( २९.५ – १८ ) + २७.५ ( २९.५ – १८ ) × .०९५ कलौरी

∴ ३०० ( ९९.५ – २९.५ ) व = ५४ ( २९.५ – १८ ) + २७.५ ( २९.५ – १८ ) × .०९५

∴ २१००० व = ६२१ + ३०.०४

अर्थात् $व = \frac{६५१.०४}{२१०००}$

∴ सीसे का विशिष्टताप = .०३१.

उदाहरण २—एक उष्णतामापक में जिसका तुल्यशक्तिक जल ५ ग्राम है १५°श पर २५० ग्राम तारपीन का तेल है। इसमें ६२°.५ श पर ३० ग्राम जल मिलाया गया है और अन्तिम तापक्रम २५°श. हो तो तारपीन का विशिष्टताप निकालो।

मान लो तारपीन का विशिष्टताप 'व' है।

जल में से निकले हुए ताप की मात्रा = ३० (६२·५ – २५) कलौरी

उष्णतामापक और तारपीन में गये हुए ताप की मात्रा

= ५ (२५ – १५) + २५० (२५ – १५) व

∴ ३० (६२·५ – २५) = ५ (२५ – १५) + २५०(२५ – १५) व

या ११२५ = २५०० व + ५०

$$व = \frac{११२५ - ५०}{२५००} = ·४३$$

∴ तारपीन का विशिष्टताप व = ·४३ है।

साधारण पदार्थों के विशिष्टताप की पाटी :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| एल्यूमिनियम | = ·२१४ | टीन | = ·०५५ |
| कांच | = ·१९८ | पीतल | = ·०९४ |
| ग्लिसरीन | = ·५७६ | पारद | = ·०३३ |
| गंधक | = ·१८४ | लोहा | = ·११४ |
| ताम्र | = ·०९४ | सीसा | = ·०३१ |
| तारपीन | = ·४२ | हिम | = ·४७१ |
| दारु | = ·६२ | मिट्टी का तेल | = ·५११ |
| जस्त | = ·०९३ | | |

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (५)।

( १ ) (अ) ताप और तापक्रम में भेद कैसे दर्शा सकते हो ?

(ब) ताप की इकाई से क्या आशय समझते हो ? क्या भिन्न भिन्न पदार्थ एक ही तापक्रम की कक्षा में गर्म होने के लिये एक ही मात्रा में ताप लेते हैं ?

( २ ) तुल्य शक्तिक जल से क्या प्रयोजन है ? चान्दी के आध सेर ग्रहणशक्ति वाले गिलास का तुल्यशक्तिक जल कैसे निकालोगे ?

(ब) ०° श पर एक आवंस जल को यदि ६०° श. तापक्रम

वाले १० आउंस जल में मिलावें तो मिश्रण का क्या तापक्रम हो जावेगा ?

( ३ ) यह बात तुम किन प्रयोगों द्वारा दिखा सकते हो कि जब भिन्न भिन्न पदार्थों को एक से ही तापक्रम में गर्म करते हैं तो उन्हें भिन्न भिन्न ताप की मात्राओं की आवश्यकता होती है ?

( ४ ) पदार्थ की ताप के लिये ग्रहणशक्ति और विशिष्ट ताप किसे कहते हैं। ताम्बे और पारे के विशिष्ट ताप की तुलना प्रयोगों द्वारा कैसे करोगे ?

( ५ ) तापक्रम और ताप की मात्रा में क्या भेद है ? चान्दी का विशिष्ठ ताप निकालने के लिये इसके १०.२१ ग्राम के एक टुकड़े को १०१·९° श. तक गर्म करके ८१·३४ ग्राम जल लेकर एक कलौरीमापक में डाल दिया है। जल का तापक्रम ११·१° श से ११·७° श तक बढ़ गया। यदि कलौरीमापक, चालक और ताप मापक का तुल्य शक्तिक जल २·६१ ग्राम हो तो चान्दी का विशिष्ट ताप निर्णय करो।

( ६ ) विशिष्ट ताप की व्याख्या करो। एक ग्राम कोयले को जलाने से ७००० कलौरी ताप निकलता है तो बताओ १५०० ग्राम कोयले को जलाने से (अ) ४०००० ग्राम जल का तापक्रम कितना बढ़ जावेगा (ब) १००००० ग्राम ताम्र का क्या तापक्रम बढ़ेगा। ( ताम्र का विशिष्ट ताप = ·०९५ )

( ७ ) किसी ठोस पदार्थ का विशिष्ट ताप कैसे निकालते हो ? १००°श पर ९० ग्राम पारा २०° श. तापक्रम वाले १०० ग्राम जल में डाला जाता है। यदि मिश्रण का तापक्रम २२° श हो तो पारे का विशिष्ट ताप क्या होगा ?

( ८ ) (अ) वर्णन करो कि उड़न शील द्रव एलकोहल जैसे पदार्थ का विशिष्ठ ताप कैसे निकालोगे ?

(८) १४७·५ ग्राम ताम्बे का एक टुकड़ा १००° श. तक गर्म करके एक ५४·२ ग्राम भार के ताम्र कलोरीमापक में ११७·२ ग्राम जल में जिसका तापक्रम १८° श. है डाला गया है। मिश्रण का तापक्रम २६·३° श हो जाता है तो ताम्बे का विशिष्ट ताप निकालो।

( ९ ) विशिष्ट ताप से तुम क्या तात्पर्य समझते हो ?
४०० ग्राम प्लाटिनम धातु का एक गेन्द किसी भट्टी में देर तक गर्म किया गया है। उसे निकाल कर ५ ग्राम तुल्य शक्तिक जल के गिलास में जिसमें ४६५ ग्राम जल है तुरन्त डाल देते हैं। यदि जल का तापक्रम २२° से ४०° श. तक हो जाय तो भट्टी का क्या तापक्रम होगा। प्लाटिनम का विशिष्ट ताप ·०३६५ है।

(१०) अधोलिखित निर्दिष्ट बातों से पारे के विशिष्ट ताप की गणना करो : १००° श तापक्रम पर ६० ग्राम पारे को २०° श. वाले १०० ग्राम तारपीन के तेल में डाला है। इसका तापक्रम बढ़ कर २५° श हो जाता है तो पारे का विशिष्ट ताप बताओ ( तारपीन का विशिष्ट ताप ·४२ होता है )।

(११) ताप सम्बन्धी ग्रहण शक्ति और विशिष्ट ताप में क्या सम्बन्ध होता है। किसी द्रव का विशिष्ट गुरुत्व ·८ है और बराबर आयतन के इस द्रव और जल की ताप के लिये ग्रहण शक्तियों का अनुपात १:२२ है तो बताओ द्रव का विशिष्ट ताप क्या होगा।

(१२) ५० ग्राम ताम्बे का एक टुकड़ा पहिले किसी भट्टी में झोंक दिया है, जब वह खूब गर्म हो गया तो उसे निकाल कर तुरन्त १५ ग्राम तुल्य-शक्तिक जल वाले कलोरी मापक में १०° श. पर २५० ग्राम जल में डाल दिया। यदि जल का तापक्रम २१·३° श. हो जाय तो भट्टी का तापक्रम बताओ ( ताम्बे का विशिष्ट ताप = ·०९५ )।

(१३) निम्न दशाओं में क्या जल का अन्तिम तापक्रम एक सा ही होगा ? यदि नहीं तो क्यों ?

(अ) १००° श. १ सेर पारे को ०° श. वाले १ सेर पानी में डालते हैं ।

(ब) ०° श. पर १ सेर पारे को १००° श. वाले १ सेर पानी में डालते हैं ।

---

## छठा अध्याय ।

### दशा परिवर्त्तन और गुप्त ताप ;

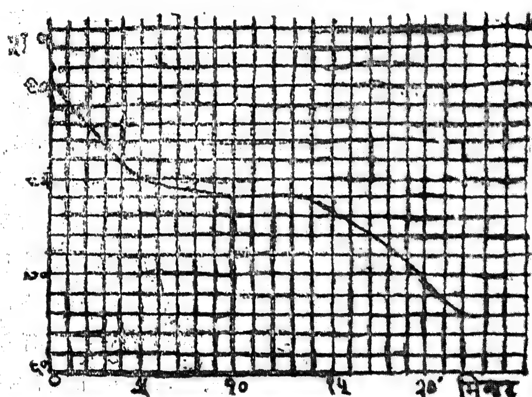
**द्रवीभवन का तापक्रम** ( Melting point )—जब ठोसों को गर्म करते हैं तो प्रायः किसी न किसी तापक्रम पर वे दशा परिवर्त्तन से द्रवरूप में आ जाते हैं । भिन्न भिन्न ठोस भिन्न भिन्न तापक्रमों पर द्रवरूप में परिवर्त्तित होते हैं । जिस तापक्रम पर कोई ठोस पदार्थ द्रवरूप में परिवर्त्तित होता है वह उस पदार्थ का द्रवणाङ्क कहा जाता है । उदाहरणार्थ सीसे को यदि आग में तपाओ तो लगभग ३२६° श. पर पिघल कर एक चमकदार सफ़ेद द्रव में परिवर्त्तित हो जाता है । इसी प्रकार गर्म करने पर हिम, मोम, लोहा इ. भी क्रमानुसार ०°, ६५° और १३६०° श. पर पिघल जाते हैं । यही इन पदार्थों के द्रवणाङ्क (Melting points) होते हैं । तुम लोगों ने देखा होगा कि धूप में बर्फ़ एकदम नहीं गल जाता बल्कि गर्मी लगने पर बहुत सहज सहज पिघलता रहता है । इसी प्रकार जब जल उबलता है तो अकस्मात ही वह वायु रूप होकर नहीं उड़ जाता किन्तु बहुत सहज सहज उड़ता है और वाष्पीभवन में ताप की आवश्यकता होती रहती है । तापमापक द्वारा देखने से पता लगता है कि साधारणतया जब कोई ठोस

द्रव में परिवर्त्तित होने लगता है तो उसका तामक्रम उस समय तक नहीं बढ़ता जब तक कि कुल ठोस द्रव नहीं बन जाता। इस प्रकार पदार्थों का द्रवणाङ्क सदा स्थायी ही रहता है। कोई कोई पदार्थ ऐसे भी हैं जैसे कांच, लोहा इ. जो गर्म करने पर पूर्णतया द्रवित नहीं होते बल्कि शहद की समान गाढ़े (Viscous) हो जाते हैं; इसलिये ऐसे पदार्थों का द्रवणाङ्क नियत नहीं होता।

प्रयोग ३१—हिम का द्रवणाङ्क निर्णय —एक बीकर में हिम के साफ़ साफ़ (हरफ़ सोख से पोंछ कर) टुकड़े लो और उनमें एक तापमापक की घुण्डी ऐसे रख दो कि पारा हिम के टुकड़ों में पूर्णतया ढक जाय। फिर बीकर को गर्म बालू पर व लैम्प पर रख दो और सहज सहज गर्म करो। तापमापक द्वारा तापक्रम देखते रहो। इस प्रयोग से यह ज्ञात होगा कि कुल हिम जब तक पिघल नहीं जाता तब तक हिम का और द्रव का तापक्रम एक सा ही (०° श) रहता है। किन्तु यह भी प्रत्यक्ष है कि इतनी देर तक ताप का स्थानान्तर भी बालू अथवा लैम्प से बीकर को ही होता रहा। इसका आशय केवल यही हो सकता है कि दशापरिर्त्तन में भी ताप की आवश्यकता होती है और जब तक पूर्णपरिवर्त्तन नहीं हो चुकता तब तक तापक्रम भी स्थायी रहता है। इसी भाँति जब पदार्थ वाष्प से द्रव में या द्रव से ठोस में परिवर्त्तित होता है तो ताप का पदार्थ में से निकास होता है।

प्रयोग ३२—वक्र द्वारा द्रवणाङ्क निकालना ( Cooling curve ): किसी ठोस (नैफ़थालीन) को ताप से गला कर फिर ठंढा करो और पदार्थ का तापक्रम प्रति मिनट बाद देखो। देखोगे कि पदार्थ के जमते समय तापक्रम नियत सा ही रहेगा। इन समयों और संगत तापक्रमों को एक वर्गाङ्कित काग़ज़ पर लिखो। तुम्हें

मालूम होगा कि पदार्थ के जमने का समय काग़ज़ पर लगभग एक क्षितिज रेखा से ही विदित होता है इस रेखा के क्षितिज भाग से पदार्थ का द्रवणाङ्क ज्ञात होगा। इस भाँति वर्गाङ्कित काग़ज़ पर भिन्न भिन्न पदार्थों का द्रवणाङ्क साधारण रीति से निकाल सकते हो। चित्र में नैफथालीन का द्रवणाङ्क इस रीति से लगभग ७९° श मिलता है। चित्र में देखते हैं कि इस तापक्रम पर ठोस द्रव के




चित्र ३३—शीतली भवनवक्र।

रूप में परिवर्त्तित होता है यद्यपि ताप इसमें बराबर जाता रहता है। जितना ताप एक ग्राम पदार्थ को एक ही तापक्रम पर ठोस से द्रवरूप में परिवर्त्तित करने में लगता है, उसको पदार्थ के गलने का गुप्तताप (Latent heat of fusion) कहते हैं। या यह भी कह सकते हैं कि जितना ताप स्थायी तापक्रम पर एक ग्राम पदार्थ में से द्रवरूप से ठोस रूप में परिवर्त्तित होते समय निकलता है उसको उस पदार्थ के

गलने का गुप्ततापं कहते हैं। ( Latent heat of fusion of ice ) हिम के गलने का गुप्तताप ८० कलौरी होता है। इसे कैसे निकाल सकते हैं ?

प्रयोग ३३—हिमीभवन का गुप्ततापः एक उष्णतामापक गिलास को तौल कर उसमें कुछ गर्म जल ( ३५° श. पर आधे के लगभग ) लो। जल का भार भी निकाल लो। जल का तापक्रम ठीक ठीक देख कर कुछ साफ़ सूखे हुए ( हरफचट से पोंछे हुये ) हिम के टुकड़े इसमें डाल दो फिर चालक अथवा तापमापक द्वारा जल को जबतक कि कुल हिम न गल जाय चलाते रहो। घुलते हुये मिश्रण में स्थायी तापक्रम का निरीक्षण कर लो। यह जानने के लिये कि उष्णतामापक में कितना हिम पड़ा है फिर उष्णतामापक को तौल लो। निम्न लेखानुसार गुप्तताप जान सकते हो।

| | | |
|---|---|---|
| मान लो | कलौरी मापक का भार | $=म_1$ ग्राम |
| | गर्म जल का भार | $=म_2$ ग्राम |
| | मिश्रितहिम | $=म_3$ ग्राम. |
| | जल का प्रारम्भिक तापक्रम | $=त_1$° श |
| | अन्तिम ताप क्रम | $=त_2$° श |
| | और जलीय गुप्तताप | $=ग$ कलौरी |

यदि उष्णतामापक का विशिष्ट ताप ·०९ हो तो इसका तुल्य-शक्तिक जल $=म_1 \times$ ·०९ ग्राम होगा।

∴ उष्णतामापक तथा जल से निकला हुआ ताप $= (म_2 + म_1 \times \cdot ०९)(त_1 - त_2)$।

हिम में गया हुआ ताप = हिमगलन का गुप्तताप + ताप जिससे हिम ०° से $त_2$° श तक गर्म हुआ $= ग \times म_3 + म_3 \times त_2$

$$\therefore (म_2 + म_1 \times \cdot ०९)(त_1 - त_2) = ग \times म_3 + म_3 \times त_2$$

$$\therefore ग = \frac{(म_2 + म_1 \times \cdot ०९)(त_1 - त_2) - म_3 \times त_2}{म_3}$$

जैसे हिम को गलने के लिये ताप की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अन्य ठोसों को भी होती है। भिन्न भिन्न ठोसों के गुप्तताप :—

| | |
|---|---|
| गन्धक ९४ कलोरी | पारा ३ कलौरी |
| जस्ता २८ कलौरी | मोम ३५ ,, |
| चाँदी २१ कलौरी | हिम ८० ,, |

**हिम के गुप्ततताप के प्रभाव**—उपरोक्त पाटी से विदित है कि हिम का गुप्त ताप औरों की अपेक्षा अधिक है। यह बात भी जल प्रसार की भाँति अत्यधिक नूतन है। यदि जल को जमने में थोड़ी ठण्ढक की आवश्यकता होती अर्थात् इसका गुप्तताप न्यून होता तो प्रति वर्ष हिम ऋतु में बहुत से ताल और झील तथा जल के अन्य उद्गम स्थान जम कर जलचरों तथा स्थल चरों के नाश का कारण हुआ करते। इसी कारण पहाड़ों में ग्रीष्म ऋतु आने पर सारा हिम पिघल कर एक दम नहीं बह निकलता किन्तु धीरे धीरे बहता है और बड़े बड़े हानिकारक बहाव रुक जाते हैं।

**हिमीभवन में आयतनिक प्रसार**—यह साधारण बात कि हिम जल पर तैरता है इस बात का स्वत: प्रमाण है कि जल की अपेक्षा हिम का घनत्व न्यून है। सत्य तो यह है कि १०० घन शतांश-मीटर जल जम कर लगभग १०९ घन शताँशमीटर हो जाता है। साधारणतया पिघलते समय सब पदार्थों का प्रसार हो जाया करता है, परन्तु हिम तुल्य कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो पिघल कर संकुचित हो जाते हैं। लोहा, हिम, पीतल, विस्मत आदि धातु पिघलने पर संकुचित हो जाती हैं। मोम, सीसा, सोना, चांदी, और ताम्बा इ. पिघलने पर फैलते हैं, यही कारण है कि लोहा साँचों में को ढल सकता है हिमीभवन के प्रसार में इतना अधिक बल होता है कि

लोहे के नल व बोतल तक जल जमने से शीत ऋतु में फट जाते हैं।

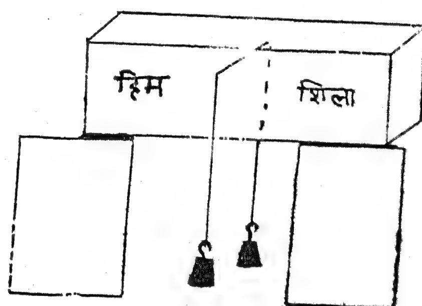
प्रयोग ३४—बारीक कांच की एक नली लो और फुंकनी से एक सिरा बन्द कर दो। तीन चार इञ्च की दूरी पर इसको दारू लैम्प पर पिघला कर खींच लो और ठंढी कर इस स्थान से तोड़ लो। अब बार २ इस नली को गर्म कर और इसके बारीक मुँह को पानी के नीचे डुबो कर जल से इसे भर लो। फिर इस नली को शीतजनक* मिश्रण में सीधी रख कर कम्बल से ढक दो। कुछ ही मिनटों के बाद देखोगे कि नली में तरेड़ आजाती है और नली फट जाती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष हो जायगा कि जमते समय जल का प्रसार होता है।

प्रयोग ३५—हिमीभवन की पुनरावृत्ति (Regelation):- हम देख चुके हैं कि ताप से हिम पिघल कर जल रूप में हो जाता है। दबाव का प्रभाव भी हिम पर यही होता है कि०°श. पर यह द्रवरूप में परिवर्त्तित हो जाता है। हिम की एक लम्बी शिला लो और चित्रानुसार इसके दोनों सिरों को पास पास रक्खी हुई दो मेज़ों पर रक्खो। एक मज़बूत बारीक तार में दोनों सिरों पर लगभग एक एक पसेरी का बोझ बाँध दो और हिम शिला के ऊपर से दोनों बोझों को दोनों ओर से लटका दो। अब देखोगे कि तार हिम की शिला को काट जाता है परन्तु शिला फिर भी जुड़ी ही रह जाती है, यहाँ तक की तार शिला के आरपार हो जाता है, और शिला साबित ही रह जाती है। इस घटना

---

* शीतजनक मिश्रण ( feezing mixture ) बनाने के लिये हिम को छोटे २ टुकड़ों में तोड़ लेते हैं और इनमें लगभग हिम से तिहाई भाग पिसे हुए नमक, नौसादर व शोरे को मिश्रित कर देते हैं। इसी मिश्रण को शीतजनक मिश्रण कहते हैं।

का कारण क्या है? इसका कारण यही है कि जब तार हिम के ऊपर रहता है तो उतने ही स्थान में हिम पर दबाव पड़ता है जिसके कारण तार के नीचे से हिम द्रवरूप में हो जाता है; इस प्रकार तार हिम में नीचे को सरकता जाता है परन्तु हिम व जल के तापक्रम में कोई अन्तर नहीं होता और न कहीं गुप्तताप ही




चित्र ३४—हिम की पुनरावृत्ति।

प्रकट हो कर निकलता है। ज्यों ही तार नीचे को जाता है त्यों ही तार के ऊपर का जल दबाव रहित होने से जम जाता है। इस प्रकार हिम दबाव के कारण तार के नीचे पिघलता रहता है और तार के भार रहित होने से जम जाता है और हिम की शिला ज्यों की त्यों दृष्टिगोचर होती है यद्यपि इसके मध्य से तार आर-पार जला जाता है।

इसी घटना के अनुसार पर्वतों की हिम शिलाओं पर बड़े बड़े पत्थर भी गिर जाते हैं तो वे हिम के नीचे बैठ जाते हैं और हिम शिला बिना गले ज्यों की त्यों प्रतीत होती है।

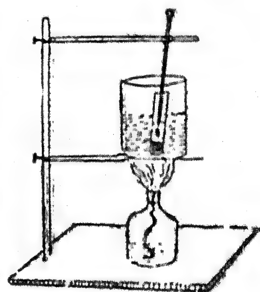
वाष्पीय गुप्तताप (Latent heat of steam):—ठोसों की भाँति प्राय: द्रव दशापरिवर्तन से वाष्प बन जाते हैं। परन्तु कुछ

वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो ठोस से सीधी वाष्परूप में परिवर्तित होती दृष्टिगोचर होती हैं; जैसे, नौसादर, आयडीन, कपूर, नैफ्थलीन इ.। परन्तु इनमें से यदि पिछली तीन वस्तुओं को धीरे धीरे गर्म करें तो वाष्पीभवन के अतिरिक्त ये द्रवरूप में भी परिवर्त्तित होती हैं; किन्तु इनके द्रवणाङ्क और वाष्पाङ्क में इतना न्यून अन्तर है कि ज्यों ही ये वस्तुएँ द्रवित होती हैं त्यों ही शीघ्रता से इनका वाष्पीभवन हो जाता है। साधारणतया पदार्थ गर्म करने से वाष्परूप हो जाते हैं। परन्तु जो विशेषता हमने ठोसों के गलने अथवा द्रवों के जमने के तापक्रमों में देखी है वही विशेषता पदार्थों के वाष्पीभवन में भी हैं प्रत्येक द्रव किसी ऐसे तापक्रम पर अवश्य पहुँच जाता है कि गर्म करते रहने पर भी उसका तापक्रम उस समय तक स्थायी रहता है जब तक कि सारा द्रव वाष्परूप में परिवर्तित नहीं हो जाता। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही तापक्रम पर प्रत्येक पदार्थ को द्रवरूप से वाष्परूप में परिवर्तित होते समय ताप की कुछ मात्रा की आवश्यकता होती है जो कि तापमापक द्वारा प्रकट नहीं होती। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ में से कुछ ताप वाष्प से जल होते समय निकलता है।

प्रयोग ३६—कांच की एक मजबूत सुराही लेकर उसमें एक ऐसी डाट बिठलाओ जिसके बीच में काँच की एक खुली नली और एक तापमापक लगे हों। सुराही में थोड़ा सा जल ले लो और तापमापक को इसको तल पर रहने दो। यदि अब जल को उबालो तो देखोगे कि प्रथम तो वह वायु जो जल में घुला रहता है बुलबुले बन कर निकल जाता है, फिर भाफ के बुलबुले उठने लगते हैं और वाष्प बनता रहता है। परन्तु यह वाष्प सुराही व ऊपर की नली में दृष्टिगोचर नहीं होता; दिखाई तभी देता है

जब नली में से बाहर निकलता है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही हो सकता है कि जल वायुरूप में नहीं दिखाई देता। दिखलाई केवल उसी समय देता है जब नली के बाहर निकल कर फिर द्रवरूप में ( छोटे छोटे कणों के रूप में ) हो जाता है। निरीक्षण से विदित होगा कि तापक्रम १००° श पर पहुँच कर रुक जाता है। चाहे आंच कितनी ही क्यों न लगाई जाय परन्तु जब तक जल एक बून्द भी रहता है तब तक तापक्रम स्थायी ही रहता है। इस तापक्रम को जल का क्वथनाङ्क ( Boiling point ) कहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव का क्वथनाङ्क स्थायी ही रहता है। ऐसा क्यों होता है? तापमापक में पारा ऊपर क्यों नहीं चढ़ता? इसका कारण यही हो सकता है कि सारा ताप जल को अथवा द्रव को वायुवत् करने के काम में व्यय हो जाता है।

प्रयोग ३७—**एलकाहल का क्वथनाङ्क** (Boiling point) **निकालना**: एक परखनली में एक ऐसी काग लगाओ जिसमें दो सूराख हों। इनमें से एक में तापमापक लगा दो और दूसरे में एक लम्बी काँच की नली जिसके द्वारा वाष्प निकलती रहे व द्रवरूप में परिवर्त्तित होती रहे। परखनली में थोड़ा सा एलकाहल डाल कर परखनली को एक काँच के बीकर में जिसमें जल हो रख दो। तापमापक की घुंडी, यह ध्यान रहे, कि एलकाहल की सतह के ऊपर हो। जल को गर्म करो। जब एलकाहल उबलने लगे तो तापमापक का निरीक्षण करो। देखोगे कि एलकाहल का क्वथनाङ्क स्थायी रहता है। ध्यान रहे कि



चित्र ३५—प्रज्वलनशील पदार्थों का क्वथनाङ्क।

लैम्प की लौ एलकाहल के निकट न आवे वरना यह भभक जायगा।

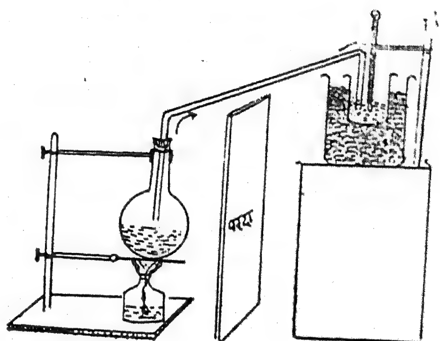
कुछ साधारण पदार्थों के कथनाङ्क

| | | | |
|---|---|---|---|
| एलकाहल | ७८°.१ श. | गन्धक | ४४४°.७ श |
| कर्बन द्विगन्धेत | ४६°.२ श. | पारा | ३५७° श. |
| क्लारोफारम | ६१°.२ श. | वेंज़ीन | ८०°.२ श. |

तुम्हें ज्ञात है कि जलीय गुप्तताप केवल ८० कलौरी होता है किन्तु १००° श. पर एक ग्राम जल को १००° श. पर वाष्परूप में परिवर्त्तित करने के लिये ५३६ कलौरी की आवश्यकता होती है, अर्थात् **जल का वाष्पीय गुप्तताप ५३६ कलौरी होता है**। जितना ताप जल को वाष्प बनाने के काम में आता है उतना ही ताप जल की पुनरावृत्ति में निकलेगा भी; यही कारण है कि वाष्प से जलना उबलते हुए जल से जलने की अपेक्षा अधिक दुःखदायक होता है। यही नहीं बल्कि अग्नि से जलना इतना दुःखदायक नहीं होता जितना जल की वाष्प से ( वायुरूप जल से ) झुलसना।

**प्रयोग ३८—जलवाष्पीय गुप्तताप** ( Latent heat of steam ):काँच की एक मज़बूत सुराही में एक सूराख वाली काग लगा दो। सुराही में थोड़ा सा जल लेकर डाट में एक मुड़ी हुई काँच की नली लगा दो जिसके द्वारा भाफ निकलता रहे ( चित्र ३६ )। फिर एक उष्णतामापक को तौल कर उसमें आधे के लगभग साधारण जल लो और दुबारा तौल लो। जब सुराही का जल उबलने लगे और नली द्वारा वाष्प आता रहे तो उष्णतामापक का तापक्रम ले लो। फिर नली के मुँह को रूमाल से पोंछ कर उष्णतामापक के जल में दे दो ताकि जल का वाष्प उष्णतामापक के ठण्ढे जल में द्रवित हो जाय। उष्णतामापक में जल को चालक द्वारा चलाते रहो। जब उष्णतामापक का तापक्रम लग-

भग १५° श. बढ़ जाय तो उष्णतामापक को शीघ्रता से हटा लो; और मिश्रण का अधिक से अधिक स्थायी तापक्रम ठीक ठीक देख लो। यह जानने के लिये कि ताम्र में कितना भाफ जल बन गया है उष्णतामापक को फिर तौल लो। इस प्रयोग में सावधान रहना चाहिये कि ताप विकिरण ( Radiation ) तथा अन्य किसी रीति से उष्णतामापक में न आजा सके और नली में से जल




चित्र ३६—वाष्पीय गुप्तताप निर्णय।

उष्णतामापक में केवल वाष्परूप में ही जाय। प्रथम बात की रोक के लिये प्राय: उष्णतामापक और सुराही व लैम्प के मध्य एक काग़ज़ का पट्ठा अथवा लकड़ी का पर्दा खड़ा कर दिया करते हैं। गणना निम्न भांति होती है।

| | |
|---|---|
| मान लो उष्णतामापक ताम्र का भार | = $म_1$ ग्राम |
| ठंढे जल का भार | = $म_2$ ग्राम |
| वाष्प का भार | = $म_3$ ग्राम |
| प्रारम्भिक तापक्रम (उष्णतामापक) | = $त°_1$ श |
| अन्तिम तापक्रम (मिश्रण का) | = $त°_2$ श |
| और वाष्पीय गुप्तताप | = ग कलोरी मान लो |

यदि ताम्र का विशिष्टताप = ·०९५ हो तो उष्णतामापक तथा जल में गया हुआ सारा ताप = $(\text{म}_1 \times \cdot\text{०९५} + \text{म}_2)(\text{त}_2 - \text{त}_1)$

वाष्प से निकला हुआ कुल ताप $= \text{म}_3 \times \text{ग} + \text{म}_3 (\text{१००} - \text{त}_2)$

$$\therefore \text{म}_3 \text{ग} + \text{म}_3 (\text{१००} - \text{त}_2) = (\text{म}_1 \cdot\text{०९५} + \text{म}_2)(\text{त}_2 - \text{त}_1)$$

$\therefore$ जल वाष्पीय गुप्तताप ग

$$= \frac{(\text{म}_1 \times \cdot\text{०९५} + \text{म}_2)(\text{त}_2 - \text{त}_1) - \text{म}_3 (\text{१००} - \text{त}_2)}{\text{म}_3}$$

उदाहरण १—एक उष्णतामापक, जिसका विशिष्टताप ·१ है, भार में ८० ग्राम है। इसमें २५° श पर २०० ग्राम जल डाल कर १००° पर ५ ग्राम वाष्प मिश्रित किया गया है। मिश्रण का तापक्रम ३९·५° श हो तो वाष्पीय गुप्तताप 'ग' निकालो।

$$\text{५ ग} + \text{५} (\text{१००} - \text{३९·५}) = (\text{२००} + \text{८०} \times \text{·१})(\text{३९·५} - \text{२५})$$

$$\therefore \quad \text{५ ग} = \text{२०८} \times \text{१४·५} - \text{५} \times \text{६०·५}$$

$$\therefore \quad \text{ग} = \text{५४२·८ कलौरी}$$

( वस्तुतः वाष्पीय गुप्तताप ५३६ कलौरी होता है )

उदाहरण २—४० ग्राम हिम को ०° श पर गलाने के लिये कितने जलीय वाष्प की आवश्यकता होगी?

मान लो 'क' ग्राम वाष्प की आवश्यकता होगी, तो

$$\text{क} \times \text{५३६} + (\text{१००} - \text{०})\,\text{क} = \text{४०} \times \text{८०}$$

$$\therefore \text{५३६ क} + \text{१०० क} = \text{३२००}$$

$$\therefore \text{६३६ क} = \text{३२००}$$

$$\therefore \text{क} = \text{५·०३ ग्राम}$$

**वाष्पीय गुप्तताप के प्रभाव**—तुम्हें यह नहीं समझना चाहिये कि १००° श के अतिरिक्त किसी अन्य तापक्रम पर वाष्पीकरण नहीं होता, क्योंकि जल से भाफ तो प्रत्येक तापक्रम पर बन कर उड़ता रहता है। जल खुला रखने से उड़ जाता है। इसी

प्रकार अन्य सब द्रव भी भाफ बन कर उड़ते रहते हैं परन्तु साधारणतया अन्य द्रवों के गुप्तताप जल की अपेक्षा न्यून ही होते हैं। जिन द्रवों के कथनाङ्क अत्यधिक हैं साधारण तापक्रम पर उनकी भी भाफ बनती रहती है।

जल के वाष्पीय गुप्तताप की अधिकता के कारण ही ग्रीष्म ऋतु में सुराहियों अथवा घड़ों का जल शीघ्र ही ठंढा हो जाता है। मिट्टी के वर्त्तन सुषिर (porous) होते हैं और इन छिद्रों द्वारा घड़े का जल सहज सहज चारों ओर से रिसता और उड़ता रहता है। परन्तु वाष्प बनने के लिये ताप की आवश्यकता होती है, इसलिये घड़े के जल के ताप को बाहर खींच सतहका जल वायु के प्यासे रहने के कारण उड़ जाता है और सुराही व मिट्टी के घड़े का जल ठण्ढा हो जाता है।

मिट्टी के बर्त्तन के अभाव में बहुतों ने देखा होगा कि ग्रीष्म ऋतु में जल भरे धातु के बर्त्तन के मुँह पर कपड़ा बाँध कर बर्त्तन को उलटा टांग दिया करते हैं, जिससे कि जल कपड़े में को रिस रिस कर भाफ बन कर उड़ता रहता है और शेष जल को पूर्व अपेक्षा ठण्ढा कर देता है। यही कारण है कि गर्मी में जब मनुष्य के शरीर पर पसीना आ जाता है तो वायु गर्म होने पर भी शीतल मालूम पड़ता है। गर्म वायु अधिक प्यासा होने के कारण जब शरीर के पसीने को सुखाता है, तो पसीने के वाष्पीभवन में वाष्पीय गुप्त ताप की शरीर में से अधिक मात्रा जाने के कारण शरीर शीतल हो जाता है। यदि अपने हाथ पर कुछ एलकाहल व ईथर ले तो तुम्हें ठण्ढक मालूम होगी; इसका कारण भी शीघ्र वाष्पीभवन ही है।

**अपद्रव्य ( Impurity ) से द्रवणाङ्क (m. p.) पर प्रभाव।**

(१) हिम के टुकड़ों का तापक्रम देखो, ०°श. होता है।

(२) यदि हिम में सादा नमक मिला दो तो तुम्हें मालूम होगा कि इसका तापक्रम ०° श से भी न्यून हो जाता है।

यदि हिम में कोई भी अपद्रव्य होता है तो हिम का द्रवणाङ्क ०° श से न्यून हो जाता है।

**शीतजनक मिश्रण** (Freezing mixtures)—जब कोई ठोस पदार्थ द्रव में घुलता है तो घुलने में ताप के शोषण के कारण अक्सर घोल का तापक्रम कम भी हो जाता है। यही कारण है कि दूध व कुलफ़ी जमाने के हेतु हिम और साधारण नमक के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। ऐसे मिश्रणों को, जिनके द्वारा असाधारण ठण्ढक प्राप्त हो सकती है और जिनका प्रयोगशाला में अन्य पदार्थों को ठण्ढा करने के लिये उपयोग होता है, शीतजनक मिश्रण कहते हैं। कुछ शीतजनक मिश्रण :—

(१) हिम ३ भाग और नमक सादा १ भाग—इस मिश्रण का तापक्रम −२०° श तक हो जाता है और नमक को सुखा कर फिर काम में ला सकते हैं।

(२) खटिक हरिद के रवे (Calcium chloride) ४ भाग और हिम ३ भाग इस मिश्रण का तापक्रम −४०° श. तक हो जाता है।

(३) नौसादर १ भाग, शोरा १ भाग, सोड़ा गन्धेत (Soda Sulph.) १ भाग का ८ भाग जल के मिश्रण से ०° श तक तापक्रम हो जाता है।

पहले दो मिश्रणों द्वारा विद्यार्थी दूध का बर्फ़ जमा कर भली भाँति देख सकते हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( ३ )।

( १ ) (अ) ठोस के द्रवणाङ्क से क्या तात्पर्य है ?

(ब) यह प्रयोग द्वारा कैसे दिखा सकते हो कि मोम का द्रवणाङ्क स्थायी रहता है ?

(स) मोम व गन्धक के द्रवणाङ्क कैसे निश्चय करोगे ?

( २ ) (अ) जलीय गुप्तताप कैसे निकालते हो ? तुम्हारे प्रयोग में किन किन कारणों से अशुद्धियाँ हो सकती हैं और उत्तर को ठीक २ निकालने के लिये किन किन बातों को ध्यान में रक्खोगे ?

(ब) ८०° श तापक्रम पर ३० ग्राम जल में ०° श तापक्रम वाले २० ग्राम हिम मिलाने से क्या परिणाम होगा ?

( ३ ) हिमीभवन के गुप्तताप की व्याख्या करो।

—१०° श. तापक्रम वाले ५० ग्राम हिम को गला कर १००° श पर भाफ बनाने के लिये कितने ताप की आवश्यकता होगी ? ( हिम का वि. ता. = ·५, हिम और भाफ़ के गुप्तताप क्रमशः =८० और ५४० कलौरी )।

( ५ ) ०° श. पर एक सेर जल को सेर भर उबलते हुए जल में मिलाने से मिश्रण का तापक्रम ५०° श होता है परन्तु ०° श पर सेर भर हिम सेर भर उबलते हुये जल में मिलाने से केवल १०·५ श होता है तो सेर भर हिम केगलने में जितना ताप लगा हो उसका निर्णय करो।

( ४ ) विशिष्ट ताप और गुप्तताप में क्या भेद है ? ८८° श. तापक्रम वाले ५०० ग्राम तेल से ०° श. पर कितना हिम गल जावेगा ? ( हिम का गुप्तताप = ८० तेल का वि. ता. = ·६ )

( ६ ) हिम की पुनरावृत्ति दर्शाने के लिये किसी प्रयोग का वर्णन करो। यदि हिम ०° श. से न्यून तापक्रम पर हो तो इसके

छोटे छोटे टुकड़ों को दबाकर हिम का गोला क्यों नहीं बना सकते ?

( ७ ) (अ) १०० ग्राम उबलते हुए जल में १०० ग्राम हिम डालने से क्या परिणाम होगा ? मिश्रण का तापक्रम बताओ ।

(ब) ४०° श. पर १०० ग्राम जल में कितना हिम डालना चाहिये कि मिश्रण का तापक्रम १०° श. हो जाय ।

( ८ ) यदि –१०° श. पर हिम को किसी गिलास में गर्म करो तो तुम्हें क्या परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होंगे । इनका वर्णन करो ।

( ९ ) हिम के गुप्तताप से क्या आशय है ? पाँच पाउंड लोहे का एक गेन्द २५०° श गर्म करके पिघलते हुये हिम में रख दिया गया है । बताओ कितना हिम जल में परिवर्त्तित हो जावेगा । ( लोहे का वि. ता. = ·११४ है )

(१०) हिम की शिला में सूराख करके १००° श. तापक्रम वाले ताम्बे का ८० ग्राम का एक टुकड़ा रख दिया है और सूराख को एक दूसरी हिम की शिल से ढक दिया है तो बताओ कितना हिम गल जायगा । ( ताम्र का गुप्तताप = ·०९५ )

(११) ०° श. वाला एक आउंस जल ६०° श पर १० आउंस जल में मिलाया गया है तो मिश्रण का क्या तापक्रम होगा ? एक आउंस हिम को ७०° श. पर दस आउंस जल में घोलते हैं, तो मिश्रण का तापक्रम ५६° श. से कुछ अधिक हो जाता है । इस प्रयोग से तुम्हें क्या क्या बातें मालूम हो सकती हैं ?

(१२) ५०० ग्राम ताम्र के गोले को किसी पकते हुए तेल में गर्म करके हिम के एक गड्ढे में डालने से १०० ग्राम हिम गल जाता है । यदि ताम्र का विशिष्ट ताप ·०९३३ हो तो बताओ तेल का क्या तापक्रम होगा ।

(१३) वाष्पीय गुप्ततap से क्या आशय समझते हो ? इसका किस प्रयोग से और कैसे निर्णय करोगे ?

१०४° श. पर कुछ जलवाष्प ०° श पर १०० ग्राम जल और १० ग्राम हिम में सम्मिलित करते हैं। हिम घुल कर तापक्रम ५° श. हो जाता है। यदि बर्तन का तुल्यशक्तिक जल गणना में न लें तो बताओ उसमें कितनी भाफ घुली होगी। ( जल का गुप्ततap = ८० क. और भाफ का गुप्ततap = ५३६ कलौरी )।

(१४) (अ) भाफ लगने से उसी तापक्रम पर उबलते हुए जल की अपेक्षा शरीर क्यों अधिक झुलस जाता है ?

(ब) हिम का गुप्ततap ८० कलौरी और वाष्पीय गुप्ततap ५३६ कलौरी होता है इन बातों से तुम क्या समझते हो ?

(१५) ०° श. पर २ ग्राम हिम को इतना गर्म किया कि वह भाफ बन कर उड़ गया। दूसरी बार १० ग्राम पारे को ०° श. से १००° श. तक गर्म किया। इन दोनों दशाओं में ताप की मात्राओं की तुलना करो। ( पारे का वि. ताप. = $\frac{१}{३०}$ )

(१६) वाष्पीय गुप्ततap के प्रकृति में प्रभाव, ठोसों में अपद्रव्य से द्रवणाङ्क पर प्रभाव और शीतजनक मिश्रणों पर टिप्पणी लिखो।

(१७) उबलने के नियमों का वर्णन करो। १०० ग्राम भार के कलौरी मापक में जिसमें कि ३०° श. पर ४०० ग्राम जल है १००° श. पर भाफ मिलाने से मिश्रण का तापक्रम ३५° श हो जाता है। तो कितना भाप द्रवित हुआ है ? ( ताम्बे का वि. ताप = ·०६ और भाफ का गुप्ततap = ५४० )

---

# सातवाँ अध्याय

## वाष्पों के गुण—वाष्पी-भवन और आर्द्रतामिति।

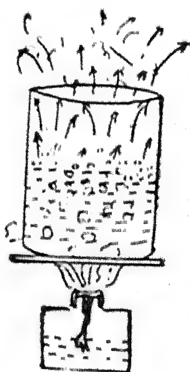
**पदार्थों का अणुक संस्थान और गतिकारक सिद्धान्त ( Kinetic theory )**—इस स्थान पर यह बतलाना अति आवश्यक है कि पदार्थों का अणुक संस्थान किस प्रकार का होता है। यह एक साधारण बात है कि नमक पानी में घुल जाता है और किसी प्रकार से यदि एक वायु का दूसरी वायु से सम्बन्ध होता है तो वे परस्पर फैल कर मिल जाते हैं। इसलिये यह मानना पड़ता है कि प्रत्येक पदार्थ अणुओं से बना हुआ होता है और अणुओं के मध्यस्थ अणवान्तरिक स्थान होते हैं। जल में यदि नमक व चीनी घोली जाती है तो घोल का घनफल उतना ही नहीं बढ़ता जितना नमक व चीनी और जल का होता है, किन्तु कुछ कम। गन्धक के शुद्ध तेजाब में यदि जल मिलावें तो मिश्रण का घनफल उतना नहीं होता जितना दोनों पदार्थों का पृथक् पृथक् मिलकर। इससे प्रतीत होता है कि ऐसे घोलों में अणवान्तरिक स्थान ( Intramolecular spaces ) कम हो जाते हैं।

कुछ साधारण घटनायें इस बात को बताती हैं कि अणु परस्पर लगातार शीघ्र गति में रहते हैं। गर्म करने पर पदार्थों में अणुओं की गति और भी शीघ्र हो जाती है और द्रवों में से अणु अधिकाधिक फैल कर निकल जाते हैं। ठोस की अपेक्षा द्रव में और द्रवों की अपेक्षा वायव्य पदार्थों में अणवान्तरिक स्थान अधिक होते हैं। वायव्य पदार्थों के अणु लगातार बाहर की ओर फैलने के लिये टक्कर खाते रहते हैं। यदि बर्तन में से बाहर जाने का कोई मार्ग हो अथवा बर्तन की चादर अधिक निर्बल हो तो अणु फैल जायँगे। इसी कारण बर्तन के चारों ओर दबाव पड़ता है। बायल साहब के नियमानुसार यदि किसी वायु का आयतन

आधा कर दिया जाता है तो उस वायु का दबाव द्विगुण हो जाता है। यदि यह बात मानी जाय कि प्रत्येक वायु का दबाव उसके अणुओं के परस्पर शीघ्र गामी होने और उनकी टक्कर खाने पर निर्भर है तो फिर यह समझने में तो कोई कठिनाई ही नहीं पड़ती कि घनत्व के द्विगुण करने पर अणुओं की बर्तन के चारों ओर टक्करों की संख्या भी द्विगुण हो जाती है जिससे दबाव भी द्विगुण हो जाता है।

अणु इतने छोटे होते हैं कि अत्युत्तम सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा भी दृष्टिगोचर नहीं होते। एक अणु का औसत व्यास लगभग $\frac{१}{२५०००००}$ सहस्रांश मीटर होता है अण्वान्तरिक स्थानों ही के कारण वायुओं में असीम प्रसार और आकुञ्चन की शक्ति होती है।

**द्रवों का वाष्पी भवन (Evaporation)**—यह बात प्रत्यक्ष है कि यदि जलको खुले वायु में रक्खो तो उड़ जाता है। ऐसा वाष्पी भवन प्रायः अन्य द्रवों में भी होता रहता है। द्रव से अणुओं के निकलने का तात्पर्य्य यही हो सकता है कि द्रव के अणु सदा कम्पायमान गति में रहते हैं। जब इन अणुओं की गति अति अधिक हो जाती है तो द्रव निकटवर्त्ती अणु उड़ कर वायु में मिल जाते हैं और वे वायु की भाँति व्यवहार करने लगते हैं। इन्हीं को वाष्प कहते हैं।


चित्र २७—अणुओं की गति से वाष्पीभवन।

यदि द्रव का तापक्रम बढ़ता है तो अणुओं की गति पूर्वापेक्षा बढ़ जाती है और द्रव-पृष्ठ से स्वतन्त्रता से अणु वायु में को उड़ जाते हैं। इस प्रकार थोड़ा घना

वाष्पीकरण प्रत्येक द्रव में से होता रहता है। समुद्र, झील, नदी, नालों तथा तालाबों और अन्य जल के उद्गमों से प्रत्येक समय वाष्पीभवन के कारण वायुमण्डल में प्रतिपल सहस्रों मन जल वाष्परूप में उड़ता रहता है। ये बातें साधारण प्रयोगों से सिद्ध कर सकते हैं कि—

**(१) वायुमण्डल की प्रत्येक अवस्था में वाष्प के संयोग की सदा कुछ न कुछ सीमा रहती है।**

**(२) गर्म वायु में जलवाष्प की धारणा शक्ति शीतल वायु की अपेक्षा अधिक होती है।** कमरे के वायु में वाष्प का संयोग निम्न सादे प्रयोगों से दिखा सकते हैं :—

प्रयोग ३९— काँच की सूखी कटोरी में खटिक हरिद (Calcium chloride) को कमरे के वायु में रक्खो। देखोगे कि थोड़े ही समय में यह भीग जाता है और वायु की सील खटिक हरिद का घोल बना देती है।

प्रयोग ४०—एक बीकर में जल को हिम मिश्रित करके शीतल करो। तो देखोगे कि बीकर के बाहिरी पृष्ठ पर भी सील जम जाती है। यह सील कहाँ से आती है? ठण्ढक से बीकर के चारों ओर के वायु की वाष्प के लिये धारणाशक्ति कम हो जाती है, और सील बीकर के चारों ओर द्रवीभूत हो जाती है।

यह स्पष्ट ही है कि हिम ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में ओदी धोतियाँ या गीली सड़कें जल्दी सूख जाती हैं। परन्तु वाष्पी-भवन प्रत्येक ही तापक्रम पर होता है, यहाँ तक कि हिम भी बहुत सहज सहज वाष्परूप बन कर उड़ता रहता है। परन्तु कुछ द्रवों का वाष्पीभवन परस्पर अपेक्षाकृत शीघ्र हो जाता है और कुछों का देर में। उदाहरणार्थ ईथर, दारू और मिट्टी का तेल जल की अपेक्षा शीघ्र उड़ जाते हैं। **भौतिक विज्ञान को उस शास्त्र को जिसमें**

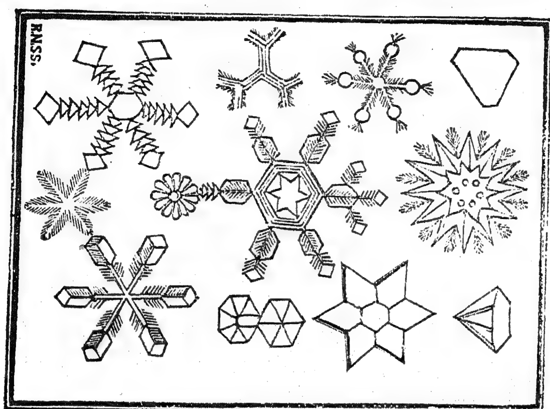
वायुमण्डल और तत्सम्बन्धी वाष्पों की दशाओं का ज्ञान होता है आर्द्रतामिति (Hygrometry) कहते हैं।

बादलों की बनावट—उद्‌जन की अपेक्षा वायु का घनत्व १४½ के लगभग रहता है, किन्तु वाष्परूप जल का घनत्व उद्‌जन की अपेक्षा केवल ९ ही होता है। इसलिये वाष्परूप जल की अपेक्षा वायु अधिक भारी होता है। ऐसे ही वाष्प मिश्रित वायु साधारण वायु से हलका होता है, इसके अतिरिक्त दिन में वायु की अपेक्षा धरातल अधिक गर्म रहता है। इन कारणों से नीचे का हलका वायु ऊपर चढ़ जाता है। ज्यों ज्यों यह ऊपर चढ़ता है त्यों त्यों ऊपरी दबाव कम होने से यह अधिकाधिक फैलता है। परन्तु यह एक भौतिक नियम है कि वायु के फैलने में कुछ शक्ति का व्यय होता है और फैलने से शीतलता आती है। इसी कारण वाष्प संतृप्त (Saturated) वायु ऊपर जाकर फैलता और नीचे की अपेक्षा ठण्ढा हो जाता है। शीतलता के कारण जब वायु-मण्डलवर्त्ती वाष्प द्रवीभूत होती है तो पानी के नन्हें नन्हें कण गौज कर बादल के रूप में दिखाई देने लगते हैं। वस्तुतः जल वाष्परूप में दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु केवल बादल रूप में ही; अर्थात् जब स्थूल रूप में नन्हे नन्हें कणों द्वारा बादल बने होते हैं और प्रकाश का परावर्तन करते हैं तो ही दृष्टिगोचर होते हैं। जब बादल और ऊँचे व ठण्ढे स्थान पर पहुँचते हैं तो कण परस्पर मिलकर बड़ी बड़ी बूँदें होकर बरस पड़ते हैं। वर्षा को साधारणतया वृष्टिप्रमापक *यन्त्र द्वारा नापते हैं।

तुषार (Frost)—यदि वायु में वाष्प अधिक हो और तापक्रम ०°श से न्यून हो तो जल के कण ठोस रूप में धरातल

*वृष्टिप्रमापक (Rain gauge) यन्त्र कई प्रकार के होते हैं। साधारणतया यन्त्र में धातु का एक बेलनाकार गिलास होता है

पर ज्यों के त्यों रूई के गालों के रूप में पड़ जाते हैं। इसी को



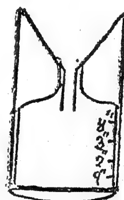

चित्र ३९—तुषार के भांति २ के रवे।

पाला व तुषार कहते हैं सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा ये तुषार के कण भांति भांति के छकोणे स्फटिक से दीख पड़ते हैं।

प्रयोग ४१—किसी टीन के खुले हुए मुँह वाले छोटे डब्बे को तारकूल भली प्रकार पोत लो। इसको कुछ समय तक सूखने दो।

---

जिसका व्यास ऊपर नीचे से एक साही रहता है। इस गिलास में एक कीप होता है जिसके ऊपर का व्यास एक बोतल के व्यास के बराबर होता है। कीप द्वारा वर्षा का जल उसी बोतल में जाता रहता है, जिसके ऊपर इन्चों में चिन्ह रहते हैं। जब वर्षा समाप्त हो जाती है तो ऊपर की रेखाओं द्वारा, वर्षा के पानी की ऊँचाई को बोतल पर इंचों में पढ़ लेते हैं। यंत्र को ऐसे स्थान पर रखते हैं, कि अन्य बूंदों के छींटे गिलास में न जा सकें।



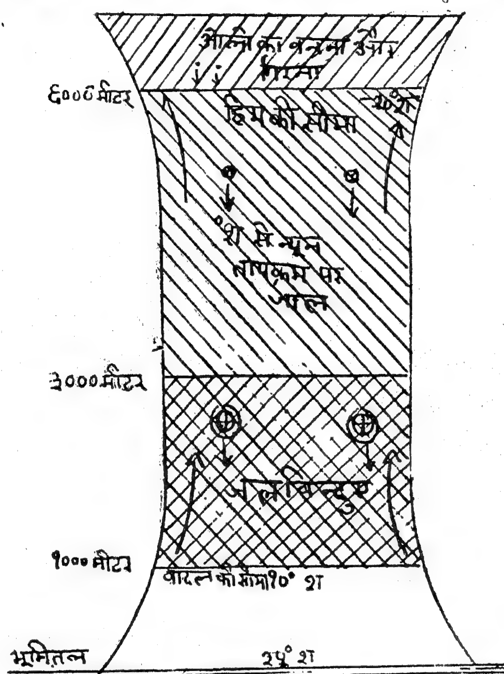
चित्र ३८—वृष्टि-प्रमापक।

फिर डब्बे में शीतजनक मिश्रण भर दो। थोड़ी देर बाद देखोगे कि जल के कण डब्बे की सतह पर चारों ओर बन जाते हैं; फिर शीघ्र ही ये जल के कण हिमरूप तुषार के स्फटिक कणों में परिवर्तित हो जायंगे। काला डब्बा इनके द्वारा श्वेत प्रकट होने लगेगा। यदि इस पर फूंक मारो तो देखोगे कि तुषार जल रूप हो जाता है।

**ओले**—यदि वर्षा की बूँदों को वायु का वेग बारम्बार ठंढे स्थानों में को ले जाता है तो वर्षा की बजाय ओले गिरने लगते हैं। ओलों की बनावट प्रायः तहदार होती है, इससे प्रत्यक्ष है कि वर्षा की बूँदें केवल ०°श. से कम वाली ही वायु के तह में को नहीं जातीं किन्तु वायु का वेग इन्हें ऐसी कई तहों में को ले जाता है ओलों की बनावट चित्र ४० से भली भाँति दर्शायी जा सकती है। मानलो पृथ्वीतल पर तापक्रम २५° श. है और सील वायु में ५० प्रतिशतक है। १००० मीटर की ऊँचाई पर तापक्रम केवल १०°श. रह जाता है। यदि यही आर्द्रताङ्क हो तो वाष्प जल रूप (बादल) दृष्टिगोचर होने लगेगा। यह जल कण इतने छोटे होते हैं कि ऊपर ही चढ़ते रहते हैं। ३००० मीटर ऊँचे तापक्रम लगभग ०°श. हो जाता है परन्तु अत्यन्त शुद्ध होने के कारण यह जल ऊपर उठ और अधिक ठंढा हो जाता है।

शुद्ध जल अक्सर—२०° श तक बिना जमे ठण्ढा हो जाया करता है। यह तापक्रम ६००० मीटर की ऊँचाई पर होता है इससे ऊँचे जल कण जम कर शीघ्र ही बड़े होने और गिरने लगते हैं पथ में और जल जब इनसे छूता है तब इन टुकड़ों के चारों ओर वायु के कण सहित जम जाता है। यही कारण है कि ओले के मध्य में पक्का हिम और चारों ओर श्वेत और

कच्चा हिम होता है। तत्पश्चात् ओले भूमि पर आ गिरते हैं। यदि ऊपर का वायु तीव्र होता है तो पुनः ये ऊपर को उड़ जाते




चित्र ४०—वायुमण्डल में वाष्प की अवस्था।

हैं और ओले पर जल की कई तह एक पर दूसरी जम जाती हैं। यह एक साधारण ज्ञान की बात है कि ओले को काटने पर कई एक तह दृष्टिगोचर होती हैं।

**कोहरा ( Fog )**—जब बादल वायुमण्डल के नीचे के भाग में बनते हैं तो इन्हीं को कोहरा कहते हैं।

कोहरे के हेतु यह आवश्यक है कि पृथ्वी के निकटवर्त्ती वायु की तह ऊपर वाली तहों की अपेक्षा अधिक शीतल हो। इस दशा में ऊपर के वायु में जो सील होती है वह वायु के नीचे वाली तह में आकर वाष्परूप से द्रवीभूत हो कुहरे के सदृश हो जाती है। जब कोहरा समुद्र तट पर पड़ता है तो उसे ही धुन्ध कहते हैं। धुन्ध और कोहरे में अधिक भेद नहीं होता। कोहरा धुन्ध से अधिक घना अवश्य होता है।

**ओस ( Dew )**—दिन में सूर्यताप से पृथ्वी पर वाष्पीभवन हुआ करता है और सूर्यास्त अनन्तर पृथ्वी से ताप विसर्जित होने लगता है। पृथ्वी के ठण्ढी होने से जो वायु धरातल के सन्निकट होता है वह भी ठण्ढा हो जाता है। फलतः वायु में वाष्प के लिये धारणाशक्ति न्यून हो जाती है और जो नमी वायु में होती है वही रात्रि को ठण्ढे पदार्थों पर द्रवीभूत हो ओस बन जाती है।

**ओस पड़ने के हेतु निम्न बातें होनी चाहियें:—**

(१) **निर्मल आकाश**—इससे पृथ्वी से तापविसर्जन सरलता से होता है। बादल तापविसर्जन में बाधित हुआ करते हैं।

(२) **वायु की स्थिरता**—यदि वायु स्थिर न हो तो पदार्थों के चारों ओर का ठण्ढा वायु उड़ कर उनके निकट ताजा वायु आता रहेगा। इससे ओस का तापक्रम नहीं हो सकता। वायु-मण्डल यदि शान्त रहे तो वायु एक ही स्थान पर चिरकाल तक रह अपनी सील पदार्थ को दे देगा।

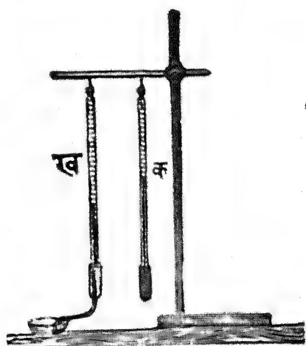
(३) **पदार्थ को कुचालक और अच्छा विसर्जक होना चाहिये**—इससे पदार्थ शीघ्र ठण्ढा हो जायगा और ताप को शीघ्रता से शोषित नहीं करेगा जैसे पत्ते और पत्थर इत्यादि।

उपरोक्त बातों से यह विदित है कि वृष्टि, कोहरा, ओस इत्यादि सब वायु की सील पर निर्भर हैं। इसलिये वायु में मिले वाष्प की मात्रा जानना भी बड़े महत्व का विषय है। यह पहले ही कह चुके हैं कि गर्म वायु में वाष्प की धारणाशक्ति अधिक होती है। वायु वाष्प से पूर्णतया संतृप्त नहीं रहता। यदि सीलदार वायुका तापक्रम घटा दें, तो किसी न किसी तापक्रम पर वायु पूर्णतया संतृप्त हो जायगा। और अधिक ठण्ढा करने पर इसकी नमी ओसरूप में होकर झड़ जायगी। इस तापक्रम को जिस पर वायु पूर्णतया संतृप्त हो जाता है और जिस पर सील द्रवरूप हो झड़ने लगती है ओस का तापक्रम कहते हैं। ओस का तापक्रम स्थायी नहीं रहता, यह तापक्रम वायु के जलीय वाष्प की मात्रा पर निर्भर रहता है। **ओस का तापक्रम प्रायः ग्रीष्म ऋतु में शीतकाल की अपेक्षा अधिक होता है। ओस के तापक्रम को आर्द्रताङ्क (Dew point) भी कहते हैं।** कभी वायु इतना सूखा होता है कि आर्द्रताङ्क ०° श. पर या इससे भी न्यून होता है। इस दशा में यदि अधिक ठंढक पड़ने लगती है तो ओस के स्थान पाला पड़ने लगता है।

प्रयोग ४२—**आर्द्रताङ्क मापक** (Hygrometer): काँच का एक बीकर लो और इसमें थोड़ा पानी डाल कर हिम डाल दो और चलाते रहो। कुछ देर पश्चात् देखोगे कि ओस के स्थूल कण बीकर के चारों ओर जमने लगते हैं। ज्यों ही यह सील दृष्टिगोचर हो त्योंही बीकर के चारों ओर का तापक्रम ले लो। यही तापक्रम आर्द्रताङ्क होगा। इसके लिये बहुधा ऐल्यूमिनियम का गिलास भी ले लेते हैं और इसके सहारे तापमापक इस प्रकार बाँध देते हैं कि इसकी घुण्डी ठीक जल के

बराबर रहे। जब जल के कण गिलास से विलीन होने लगें उस समय भी तापक्रम देख लो। इन दोनों तापक्रमों का औसत निकालने से आर्द्रताङ्क ज्ञात हो जाता है।

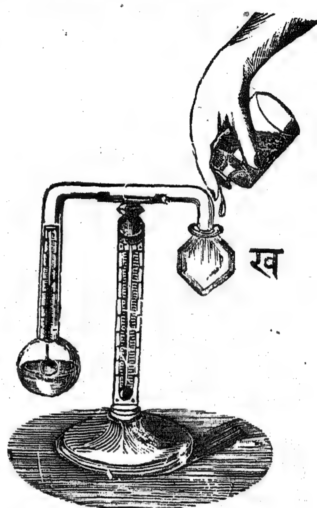
**मेसन का आर्द्रताङ्क मापक**—(mason's hygrometer) इस यन्त्र में एक ही भाँति के दो तापमापक (चित्र ४१) आसपास लगे रहते हैं। एक की घुण्डी पर मलमल का कपड़ा बँधा होता है जिसका सिरा जल के कटोरे में लटक रहा है। इसका उपयोग दो सिद्धान्तों पर निर्भर है। वाष्पीभवन में ताप ( गुप्तताप )व्यय होता है और वायु में वाष्प ग्रहण की शक्ति वायु की संतृप्ति पर निर्भर होती है । मलमल द्वारा एक तापमापक की घुण्डी पर जलकेशाकर्षण से चढ़ता है और ज्यों ज्यों जल घुण्डी पर से सूखता है है त्यों त्यों चारों ओर का वायु संतृप्त हो जाता है और आर्द्र-तापमापक में शुष्क तापमापक की अपेक्षा न्यून तापक्रम हो जाता है। जब घुण्डी के चारों ओर का वायु पूर्णतया संतृप्त हो जाता है आर्द्रतापमापक के तापक्रम को आर्दताङ्क कह सकते हैं। इस यन्त्र को आर्द्र और शुष्क तापमापक ( Wet and dry bulb thermometer ) भी कहते हैं।



चित्र ४१—मेसन का आर्द्रताङ्क मापक ।

इस यन्त्र के अतिरिक्त एक और यन्त्र भी प्रयोग में आता है। चित्र ४२ में 'क' और 'ख' दो बड़ी घुंडियाँ दो समकोणों पर मुड़ी हुई एक नली में जुड़ी हैं। 'क' घुंडी में ईथर के ऊपर नली में एक तापमापक लगा देते है। इस यन्त्र के भीतर ईथर,

तापमापक, और ईथर वाष्प के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं होता। 'ख' पर लिपटा मलमल का टुकड़ा ईथर से भीगा रहता है। ईथर के उड़ने से 'ख' घुंडी ठण्ढी हो जाती है जिससे इसके अन्दर ईथर वाष्प द्रवित हो जाता है। और 'क' घुंडी में से ईथर का वाष्पीभवन होता रहता है। यह उस समय तक ठंढी होती रहती है जब तक कि उस पर ओस के कण नहीं आ जाते। ओस का तापक्रम होने पर भीतर का तापमापक पढ़ लेते हैं। 'ख' पर ईथर डालना बन्द कर देते हैं तो इसमें गर्म होने पर वाष्प फिर बन जाता है और 'क' घुंडी से ओस कण लुप्त होने लगते हैं। इसका तापक्रम फिर पढ़ लिया जाता है। दोनों तापक्रमों का औसत लेने से आर्द्रताङ्क निकल आता है।




चित्र ४२—आर्द्रताङ्क मापक।

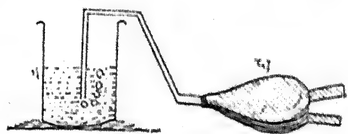
कभी कभी रेल के एञ्जिन से वाष्प निकलने पर बादल के बादल बहुत देर तक एञ्जिन के पीछे दिखाई देते हैं और कभी कभी यह देखा जाता है कि वे शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं। इसका क्या कारण है? शीतकाल में जब वाष्प एञ्जिन से निकलता है तो वाष्प के स्थूल जलकण बन जाते हैं और वे स्थिर वायु में कोहरे की भाँति फैल जाते हैं। पुनः वाष्पी भवन नहीं होता इसलिये ये ही बादल दिखाई देते हैं। परन्तु ग्रीष्म ऋतु में वायु प्यासा होता है इससे

भाफ जलकण बन फिर भाफ में परिवर्तित हो अदृष्य हो जाते हैं।

**वाष्पी-करण से शीतोत्पत्ति**—जब कोई द्रव वायुरूप में परिवर्त्तित होता है तो इस विधि में पदार्थ को गुप्तताप की आवश्यकता होती है। यदि द्रव का कृत्रिम रीति से भाष्पी-करण करें और बाहर से ताप न दें तो आवश्यक है कि ताप शेष द्रव से ही लिया जावेगा। फलतः यह पूर्वापेक्षा ठण्ढा हो जावेगा। अतएव यदि किसी द्रव का बिना गर्म करे शीघ्र वाष्पीभवन हो तो शेष द्रव का तापक्रम पूर्वापेक्षा न्यून रह जायगा।

इसलिये यह एक भौतिक नियम है कि वाष्पीभवन से शीत उत्पन्न होता है, परन्तु वाष्पीभवन वायु की संतृप्ति पर निर्भर है। तुम्हें ज्ञात है कि गर्मियों में कोरे घड़े का जल वर्षा ऋतु की अपेक्षा अधिक ठण्ढा हो जाता है। अपने हाथ पर थोड़ी सी दारू ( alcohol ) डालने से तुम्हें ठण्ढक प्रतीत होगी परन्तु दारू की बोतल इतनी ठण्ढी नहीं होती। इसका कारण यही है कि बोतल की अपेक्षा हाथ से वाष्पीभवन शीघ्र हो जाता है।

प्रयोग ४३—काठ की एक पट्टी पर कुछ पानी डाल कर एक बीकर में थोड़ा ईथर (Ether Snlphuric) लेकर इस पर रख दो। धौंकनी 'ध' द्वारा इसमें वायु फूंको (चित्र ४३)। देखोगे कि ईथर शीघ्र ही उड़ जाता है। ईथर के वाष्पीभवन में ईथर बीकर के ईथर और नीचे वाले जल में से ताप लेकर बीकर को पट्टी पर ही हिम द्वारा जमा देता है। वाष्पीभवन के ही कारण ठण्ढक की उत्पत्ति होती है।



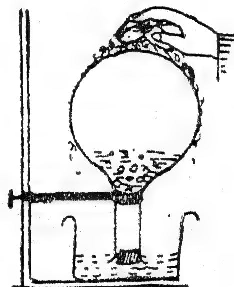
चित्र ४३—वाष्पीभवन से शीत।

हिमीकारक यन्त्रों ( Refrigerating machines ) में

इसी नियय के अनुसार एमोनिया ( Liquid ammonia ) के ऊपर दबाव कम करके वाष्पीकरण कर लेते हैं और जल को जमाने योग्य शीत की उत्पत्ति हो जाती है।

**क्वथनाङ्क में भेद**—वाष्पीभवन प्रत्येक तापक्रम पर होता रहता है परन्तु जब किसी द्रव के भीतर का तापक्रम क्थनाङ्क से अधिक हो जाता है तो बुलेबुले उठने लगते हैं। गर्म करते रहने से बर्त्तन की तली वाला जल ऊपर वाले जल की अपेक्षा कुछ गर्म रहता है इसके अतिरिक्त क्थनाङ्क सदा द्रव की स्वच्छता और उसके ऊपर दबाव पर निर्भर होता है। यदि एक ही द्रवतल पर दबाव न्यूनाधिक हों तो क्थनाङ्क भी न्यूनाधिक होंगे। द्रव वाष्प का व्यवहार भी बहुधा वायु की भाँति होता है और तदनुसार भाफ के दबाव से भी क्वथनाङ्क में भेद हो जाता है।

प्रयोग ४४—कांच की एक मज़बूत सुराही में कुछ जल लेकर थोड़ी देर तक उबालते रहो। सुराही में से वायु निकल कर इसके स्थान पर जल वाष्प हो जायगा। यदि अब सुराही में एक डाट लगा कर दबादो तो तुरन्त ही द्रव का उबलना कुछ देर के लिये बन्द हो जायगा लेकिन डाट को फिर खोलते ही द्रव उबलने लगेगा। डाट के लगा देने से क्षण भर के लिये सुराही में वाष्पदबाव बढ़ जाता है और पहला तापक्रम द्रव के उबालने के लिये काफ़ी नहीं होता। यदि डाट लगा कर सुराही को गर्म करते रहो तो सुराही में वाष्प दबाव इतना बढ़ जायगा कि सुराही प्रायः फूट तक जावेगी। इसलिये शीघ्रता से सुराही के मुँह में वायवागम्य डाट लगा कर लैम्प हटा दो।



चित्र ४४—क्थनाङ्क पर दबाव का प्रभाव।

यदि अब इसको उलट कर चित्रानुसार रख दो और सुराही की तली पर ठण्ढा जल डालो तो देखोगे कि जल फिर उबलने लगता है। तीन चार मिनट यही बात होती रहेगी यद्यपि इतने समय में इसका तापक्रम १००° श से कहीं कम हो गया है। इसका कारण यही है कि सुराही में का वाष्प ठंढक से द्रवरूप में परिणत हो गया और सुराही में द्रव के पृष्ठ पर दबाव अति न्यून रह गया। इससे जल फिर उबलता हुआ दिखाई देता है। यदि शीतल जल के स्थान पर ईथर सुराही की तली पर छिड़क दें तो वाष्प दबाव के न्यूनातिन्यून रहने के कारण जल १०० ° श से बहुत कम तापक्रम पर रह जाने पर भी उबलता रहता है। इससे सिद्ध होता है कि द्रवतल पर दबाव की न्यूनता से क्वथनाङ्क भी थोड़ा हो जाता है* ।

इस प्रकार भिन्न २ प्रयोगों से ऐसा विदित होता है कि:—

(१) प्रत्येक शुद्ध द्रव किसी भी विशेष दबाव पर एक स्थायी क्वथनाङ्क पर उबलता और भाफ बन जाता है।

(२) पीछे बता चुके हैं कि शुद्ध द्रव का क्वथनाङ्क मैलदार द्रव के क्वथनाङ्क की अपेक्षा न्यून होता है। इसका कारण यही है कि प्रत्येक विशेष घोल के ऊपर इसका वाष्पीय दबाव घोलक के वाष्पीय दबाव की अपेक्षा न्यून होता है इससे घोल के ऊपर वायुजनित भार के बराबर दबाव डालने के लिये अधिक गर्म करने की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये घोल (Solution)

* साधारणतया प्रति ५९० फ़ीट ऊँचाई से जल के क्वथनाङ्क में १° फ. का भेद हो जाता है।

का कथनाङ्क घोलक ( Solvent ) के कथनाङ्क की अपेक्षा अधिक होता है* ।

(३) जब द्रव के पृष्ठ पर साधारण वायु जनित भार से दबाव बढ़ा दिया जाता है तो द्रव का कथनाङ्क भी अधिक हो जाता है, और जब दबाव को कम कर देते हैं तो कथनाङ्क तापक्रम भी कम हो जाता है ।

साधारणतया पर्वतों पर वायु जनित भार तलेटियों की अपेक्षा न्यून रहता है और इस कारण जल का कथनाङ्क १००° श से न्यून होता है । पर्वतों पर जल पर वाष्पीय दबाव बाहर के बराबर १००° श. से पूर्व ही हो जाता है और इस प्रकार जल वाष्प बन कर पहले ही उड़ जाता है* । फलतः जब कोई दाल व शाक पार्वतों पर

---

* गणना की रीति दूसरे अध्याय में दे चुके हैं । इस बात को दिखलाने के लिये एक काँच की सुराही में कुछ जल लेकर तीन सूराख़ वाली काग लगादो । डाट में दो तापमापक इस भाँति लगाओ कि एक घुंडी जलके ऊपर रहे और दूसरी जल में । जल को उबालने पर विदित होगा कि दोनों तापमापकों में एक ही तापक्रम होता है । यदि अब सुराही में कुछ नमक डाल दो तो देखोगे कि वाष्प का तापक्रम ( क्वथनाङ्क ) पहले ही जैसा रहता है किन्तु दूसरे का तापक्रम पूर्वापेक्षा कुछ बढ़ जाता है इससे प्रत्यक्ष है कि किसी द्रव का क्वथनाङ्क निकालने के हेतु तापमापक की घुंडी सदा द्रव से कुछ ऊपर होनी आवश्यक है ।

† पर्वतों की ऊँचाई नापने की एक विधि कथनाङ्क की न्यूनता देखना भी है । लगभग प्रति ११०० फ़ीट की ऊँचाई पर जल का कथनाङ्क १° श. कम हो जाता है । हिमालय पर्वत की ऊँची चोटियों पर कथनाङ्क सम्भवतः ७५° श. से अधिक न होगा । हिमालय की चोटी पर साधारण वायु भार केवल ११″ पारे की बराबर है ।

पकाये जाते हैं, १००° श से न्यून ही तापक्रम पर क्वथनाङ्क होने से वे तलेटियों की भाँति भली प्रकार नहीं पक सकते। तापक्रम बढ़ाने के लिये अक्सर दाल में कुछ सोडा डाल लेते हैं। इसी भाँति कुकर्ज़ में बन्द होने के कारण बर्तनों पर वाष्प दबाव अधिक हो जाता है जिससे क्वथनाङ्क भी अधिक हो जाता है। कुकर्ज़ में दाल, शाक इत्यादि अधिक तापक्रम पर पचने के कारण अधिक स्वादिष्ट लगते हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (७)।

( १ ) पदार्थों में गतिकारक सिद्धान्त का सूक्ष्मतया वर्णन करो। ईथर द्रव को दो बरतनों में—एक बोतल में और एक तश्तरी में—थोड़ा सा डाल कर मेज़ पर रख देते हैं? क्या ईथर दोनों में एक ही तापक्रम पर रहेगा? यदि नहीं तो अपने उत्तर में इस अन्तर के कारण लिखो।

( २ ) 'ताप' पदार्थ में आन्तरिक और अणुक गति का ही दूसरा नाम है, इस लेख की भली प्रकार सतर्क व्याख्या करो।

( ३ ) पदार्थ का गर्म होना, गर्मी से पदार्थों का प्रसार, वाष्पीभवन इन सब घटनाओं का गतिकारक सिद्धान्त के आधार पर वर्णन करो। अणवान्तरिक संस्थान के और क्या क्या प्रभाव होते हैं?

( ४ ) यह कैसे दिखा सकते हो कि साधारणतया वायु में जलवाष्प सम्पृक्त रहता है। गर्मियोंमें वायु में अधिक सील होती है या जाड़ों में? अपना उत्तर सतर्क लिखो।

( ५ ) ओस और वर्षा में क्या भेद है? ओस किन किन दशाओं में पड़नी सम्भव है? और बादल कैसे बनते हैं।

( ६ ) ओले और तुषार कैसे और क्यों पड़ते हैं?

(७) आर्द्रताङ्क और तुषाराङ्क में क्या अन्तर है। ओस कैसे, क्यों और किन किन दशाओं में पड़ती है। इसके क्या कारण हैं कि ओस कुछ पदार्थों पर अधिक पड़ती है कुछों पर कम।

(८) (अ) आर्द्रताङ्क की व्याख्या करो।
(ब) अपनी प्रयोगशाला में आर्द्रताङ्क का कैसे निर्णय करोगे ? किसी सरल आर्द्रताङ्क मापक का वर्णन करो। इसका क्या उपयोग है।

(९) संतृप्त वायु किसे कहते हैं संतृप्त और असंतृप्त वायु का भेद दिखाने के लिये किसी प्रयोग का वर्णन करो।

(१०) प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय वायु का तापक्रम २९° श. है और आर्द्रताङ्क तुम्हें प्रयोग से १७° श. मिलता है, तो वायु की दशा का तुम्हें क्या ज्ञान होता है ? वाष्पीकरण से शीतलता होने के क्या कारण हैं ?

(११) उड़नशील पदार्थों का क्वथनाङ्क कैसे निकालोगे ?
क्वथनाङ्क पर दबाव का क्या प्रभाव पड़ता है; इसको देखने के लिये किसी प्रयोग का सचित्र वर्णन करो।

(१२) ७५० सहस्रांशमीटर वायुभार पर तापमापक का क्वथनाङ्क निरीक्षण से पूर्ण १००° मिलता है। क्या यह शतांश तापमापक ठीक है ? यदि नहीं तो क्वथनाङ्क तापमापक में सामान्य से अधिक है या न्यून। अपने उत्तर के हेतु लिखो।

(१३) तापमापक में क्वथनाङ्क की शुद्धता को कैसे निश्चय करोगे। यदि वायुभारमापक में पारा ७७ शतांशमीटर पर हो और जल का क्वथनाङ्क निरीक्षण से ९९·५° श. विदित हो तो क्वथनाङ्क में क्या अशुद्धि है और अवलोकन में क्या शुद्धीकरण करोगे ? ( प्रति सहस्रांशमीटर वायुभार के अन्तर से क्वथनाङ्क में ·०३७° श. का अन्तर होता है )।

(१४) (अ) पहाड़ों पर साधारण रीति से मांस क्यों नहीं पका सकते ?
(ब) क्या सीलनिवाये पानी को बिना गर्म किये उबाल सकते हैं; अपने उत्तर के कारण लिखो।

(१५) किसी द्रव के क्वथनाङ्क से क्या तात्पर्य है ? यह प्रयोग द्वारा कैसे दिखाओगे कि दबाव का प्रभाव क्वथनाङ्क पर पड़ता है ? इस नियम के क्या २ प्रभाव देखने में आते हैं ?

(१६) दो साधारण वायु भारमापक किसी पारे भरे कटोरे में खड़े हैं; इनमें से एक में जल की कुछ बून्द हैं ? इनके व्यवहार में क्या भेद होगा और इस भेद का क्या कारण है। यदि तापक्रम घटे बढ़े तो इन दोनों में क्या विभिन्नता होगी ?

---

## आठवां अध्याय ।

### ताप का स्थानान्तर ।

अब यह विचारना है कि गर्मी एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे जाती है। ताप का स्थानान्तर तीन प्रकार से हो सकता है—संचालन, संवाहन और विकिरण।

**ताप का संचालन** ( Conduction )—तुम सब ने देखा होगा कि चिमटे से आग निकालते रहने के कुछ देर बाद चिमटे का दूसरा सिरा गर्म हो जाता है। इसी भाँति यदि धातु के किसी छड़ के एक छोर को आग में रक्खो तो दूसरा छोर भी थोड़ी देर में गर्म हो जाता है और कुछ समय पीछे इतना गर्म हो जाता है कि इसको हाथ में पकड़ना भी दुष्कर हो जाता है। प्रथम तो आँच में जो सिरा रखते हो उसके कण गर्म हो जाते हैं

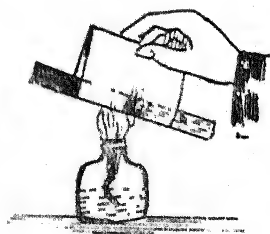
फिर जो उसके बराबर में कण होते हैं उनमें गर्मी चली जाती है, परन्तु छड़ के सब कण ज्यों के त्यों अपने ही स्थान पर रहते हैं। केवल ताप का ही एक कण से दूसरे कण तक क्रमानुसार स्थानान्तर होता रहता है यहां तक कि छड़ के दूसरी ओर के कण भी गर्म हो जाते हैं। इस विधि से ताप के स्थानान्तर को संचालन कहते हैं। इसमें ताप तो कणों द्वारा एक कण से दूसरे में जाता रहता है परन्तु कण स्वयं स्थिर रहते हैं। यदि धातु के छड़ के स्थान लकड़ी लेकर आग में दो तो विदित होगा कि एक सिरा यदि जल भी जाता है दूसरा सिरा गर्म तक नहीं होता। इससे मालूम होता है कि ताप का सब पदार्थों में एक सा ही संचालन नहीं होता। जिन वस्तुओं द्वारा ताप का संचालन शीघ्रता से होता है उनको सुचालक कहते हैं, जैसे धातु आदि। इसी कारण बायलर इ. ताम्बे व लोहे के बनाये जाते हैं। इसके विपरीत जिन पदार्थों में ताप देर में फैलता है व नहीं फैलता उन्हें कुचालक (Bad conductors) कहते हैं। जैसे उपधातु, काष्ठ, चर्म, कांच इत्यादि।

**संवाहन**—अग्नि के ऊपर तुम अपना हाथ करो तो बहुत गर्मी मालूम होगी। इसके अतिरिक्त अंगीठी की चिमनी भी शीघ्र ही गर्म हो जाती है। निस्सन्देह ताप का सुचालक यहाँ कोई पदार्थ नहीं है। यहाँ पर धुआं और अग्नि में वायु तपित होकर स्वयं ऊपर तक चढ़ जाते हैं और चिमनी को गर्म कर देते हैं। यह ताप-स्थानान्तर की दूसरी विधि है, इसको संवाहन (Convection) कहते हैं। इसमें पदार्थ गर्म होकर स्वयं ताप को ले जाता है।

**विकिरण**—यह साधारण ज्ञान की बात है कि रसोई में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक गर्मी रहती है। यदि पूछा जाय कि ऐसा क्यों होता है तो तुम क्या जवाब दोगे? कहोगे कि रसोई के चूल्हे में आग जला करती है। यह बात सही है परन्तु चूल्हे में से गर्मी रसोई के कोने कोने में कैसे फैल जाती है? तुम चूल्हे के सामने खड़े हो तो तुम्हें अधिक गर्मी प्रतीत होगी। यह गर्मी तुम्हारे व गर्म चूल्हे के निकटवर्त्ती पदार्थों के पास **विकिरण** (Radiation) द्वारा आती है। यह ताप स्थानान्तर की तीसरी विधि है। इस विधि से तापस्थानान्तर में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है।

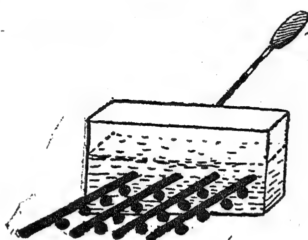
**कुचालक और सुचालक में भेद—**

प्रयोग ४५—एक ऐसा छड़ लो जिसमें आधा भाग किसी धातु का और आधा भाग किसी काष्ठ का हो। इसके ऊपर चित्रानुसार एक काग़ज़ लपेट लो। अब यदि बीच में से जहाँ धातु और लकड़ी पृथक् होते हैं छड़ को लैम्प पर ऐसे लाओ कि लैम्प की गर्मी आधी धातु के भाग पर पड़े और आधी काष्ठ पर तो देखोगे कि काग़ज़ का काठ पर लिपटा हुआ भाग धातु पर लिपटे काग़ज़ की अपेक्षा शीघ्र ही झुलस जाता है। इसका कारण यह है कि ज्योंही ताप काग़ज़ पर पड़ता है तो धातु इसको इतना शीघ्र ले जाती है कि काग़ज़ का तापक्रम इतना अधिक नहीं बढ़ता कि वह जल सके परन्तु काष्ठ के कुचालक होने के कारण ताप काग़ज़ को वहाँ से जला देता है।



चित्र ४५—धातु की सुचालकता और काष्ठ की कुचालता।

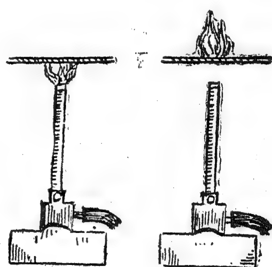
प्रयोग ४६—भिन्न भिन्न धातुओं की चालकता देखने के लिये धातुओं तथा अन्य पदार्थों के कुछ बराबर २ एक ही मोटाई के छड़ लो और उन सब को पृथक् पृथक् टीन के एक छोटे बक्स में झलवा लो। प्रत्येक छड़ पर बाहर की ओर एक सी ही दूरी पर छोटे छोटे मोम के टुकड़े चिपका कर बक्स में उबलता हुआ जल डालो (चित्र ४६)। ज्यों ज्यों ताप छड़ों पर फैलेगा त्यों त्यों मोम की गोलियाँ पिघल कर गिर जायंगी। परन्तु प्रयोग में तुम्हें मालूम होगा कि कुछ छड़ों की गोलियाँ शीघ्र ही पिघल कर गिर पड़ती हैं और कुछों की देर में।



चित्र ४६—ठोसों की ताप संचालक शक्तियाँ।

इस प्रयोग से यही परिणाम निकलता है कि जिन छड़ों से गोलियाँ शीघ्रगिर जाती हैं वे ताप के श्रेष्ठ सुचालक ( Good conductors ) हैं।

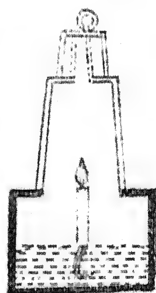
प्रयोग ४७—सुचालकता के सम्प्रयोग : यदि तुम्हारी प्रयोगशाला में कोला वायु (Coal gas) जलाने के काम में आता हो तो एक बुंसन बर्नर के ऊपर लगभग एक या दो शतांश-मीटर पर धातु की जाली का टुकड़ा चौड़ा लगा कर गैस की डाट खोल दो। जाली पर जला कर एक दियासलाई दिखाओ। देखोगे कि जाली पर आग की लौ हो जाती है किन्तु जाली के नीचे



चित्र ४७—धातु की चालकता।

गैस नहीं जलती। इसके विपरीत यदि दियासलाई ऊपर की ओर न लगा कर जाली के नीचे ही दिखाओ तो देखोगे कि जाली के नीचे का वायु जलने लगता है और ऊपर की ओर लौ नहीं निकलती। इसका क्या कारण है? कारण यही है कि धातु की जाली ताप की श्रेष्ठ सुचालक होने के कारण ताप को दूसरे भागों में ले जाकर गर्म कर देती है और आग की लौ जाली के दूसरी ओर नहीं पहुँच पाती। जब जाली लाल गर्म हो जाती है तब लौ दोनों ओर हो जाती है। प्रयोगशालाओं में कांच की सुराही इ. गर्म करते समय लैम्प और बर्त्तन के मध्य जाली रख लेने का भी वही कारण है। जाली रखने से बर्त्तन में चारों ओर एक सा ही ताप लगता है और बर्त्तन धीरे धीरे गर्म हो जाता है।

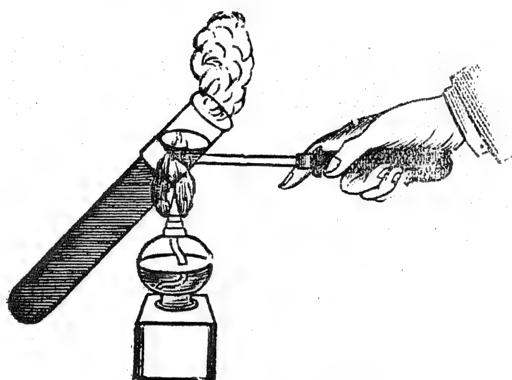
डेवी का खानों के लिये अभय दीप—( Davy's Safety lamp ) पिछले प्रयोग के सिद्धान्त पर डेवी महाशय ने खान खोदनेवालों के हितार्थ रक्षक दीप बनाया है। कोयले की खानों में एक ऐसा वायु होता है जो दीपक इत्यादि से तुरन्त भभक उठता है। इसलिये साधारण दीपक को खानों में ले जाना भयप्रद होता है। रक्षक दीप मिट्टी के तेल का एक लैम्प होता है जिसके चारों ओर धातु की जाली का एक बेलनाकार पर्दा लगा रहता है। इस लैम्प का खानों में, जहाँ प्रज्वलनशील वायु का भय रहता है, उपयोग होता है। साधारण रूप में लैम्प जाली के भीतर शान्ति से जलता रहता है; परन्तु जब खान में प्रज्वलनशील वायु होता है तो लैम्प में लौ



चित्र ४८—डेवी साहब का रक्षक दीप।

फैल जाती है परन्तु लैम्प से बाहर का वायु भभक नहीं सकता। जाली सुचालक होने से ताप को ले जाकर विकिरण द्वारा बाहर फैला देती है और वायु का प्रज्वलनबिन्दु शीघ्र ही किसी स्थान पर नहीं पहुँच पाता।

प्रयोग ४८—द्रवों की चालकता: यह देखने के लिये कि जल सुचालक है या कुचालक, एक परख नली लगभग पौन के



चित्र ४९—जल की कुचालता।

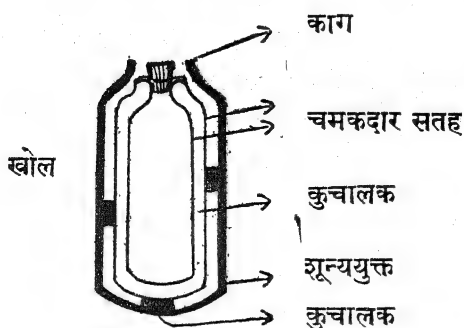
जल से भर लो और हिम के एक टुकड़े को किसी छोटी और भारी वस्तु में बाँध कर पानी में डुबा दो। फिर परखनली को नीचे से पकड़ कर जलके ऊपर वाले भाग को लैम्प द्वारा गर्म करो। तुम देखोगे कि जल ऊपर से तो उबलने लगता है और हिम ज्यों का त्यों नीचें ही पड़ा रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जल ताप का कुचालक है।

पारे के सिवा साधारणतया सब ही द्रव ताप के कुचालक होते हैं। ठोसों की भांति द्रवों की भी ताप संचालक शक्तियों में भिन्नता होती है। वायव्य पदार्थ द्रवों से भी अधिककुचालक होते हैं; यहां तक की साधारण वायु की तापसंचालक शक्ति ताम्र की अपेक्षा लगभग दशसहस्रांश होती है। परन्तु वायव्य पदार्थों की संचालक शक्ति का निरीक्षण अत्यन्त कठिन है क्योंकि वायु के अणु सदा मिलते जुलते रहते हैं और उनमें ताप स्थानान्तर संवाहन द्वारा शीघ्रता से हो जाता है।

**संचालकता के संप्रयोग**—हिम ऋतु में धातु आदि छूने से काष्ठादि की अपेक्षा अधिक शीतल प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार ग्रीष्म में धातु की बनी वस्तुएं अधातुओं की अपेक्षा गर्म विदित होती हैं। एक ही स्थान पर पदार्थ एक ही तापक्रम पर होते हैं परन्तु धातु तापसुचालक होने से शीतकाल में हमारे हाथों से ताप को शीघ्रता से ले लेती हैं और ग्रीष्म में हमारे हाथों को शीघ्रता से दे देती हैं, काष्ठ आदि ताप के कुचालक होते हैं। हिम ऋतु में ऊनी कपड़े पहनने का भी यही कारण है। ऊन में ताप नहीं होता परन्तु ऊनी कपड़े हमारे शरीर से निकले ताप को स्वयं कुचालक होने के कारण रोके रहते हैं और शरीर गर्म रहता है। अब तुम समझ गये होगे कि हिम को लकड़ी के बुरादे, भूसे, वा कम्बल में लपेट कर क्यों रखते हैं। शीत देशों में मुख्यतया प्रकृति ने जानवरों की खाल पर घने बाल इसी कारण बना दिये हैं कि इनका आन्तरिक ताप बाहर शीघ्रता से न जा सके। इसी भाँति जङ्गली वृक्षों की छाल बहुधा मोटी, कड़ी और कुचालक हुआ करती है ताकि जङ्गलों में जल इ. के अभाव में वे शीघ्र ही न सूख जायं।

अधिक शीत में बहुत से मनुष्य प्राय: पैजामे पर पतलून पहन लिया करते हैं। पाजामे और पतलून के मध्यस्थ वायु की कुचालकता के कारण दोनों वस्त्रों का संयोग अकेली पतलून की अपेक्षा शरीर को अधिक गर्म रखता है।

**थर्मों गिलास** ( Thermos flask )—आजकल बाजार में, सब ने देखे होंगे, कि दूध, चाय, इ. को देर तक गर्म रखने के लिये या बर्फ को शीतल रखने के लिये थर्मों गिलास बिकते

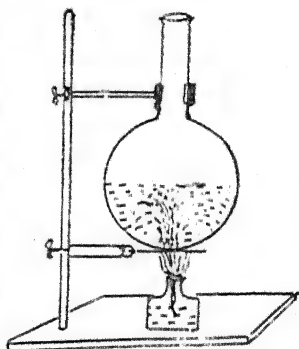



चित्र ५०—थर्मों गिलास।

हैं। थर्मों गिलास कांच की दोहरी चादर के वर्त्तन होते हैं ( चित्र ५० )। इन चादरों के मध्यस्थ स्थान को शून्ययुक्त कर देते हैं और वायवागम्य बन्द कर देते हैं। फिर इस गिलास को किसी कुचालक खोल में रख देते हैं। इस प्रकार न तो गिलास में ताप संचालन व संवाहन द्वारा जा सकता है और न गिलास में से ताप निकल ही सकता है क्योंकि वायु शून्य स्थान में ताप का न संचालन होता है और न संवाहन। परन्तु यह भी हमें ज्ञात है कि ताप का विकिरण शून्यस्थान में भी हो जाता है,

इसकी रोक के लिये गिलास की भीतरी सतह को सफेद, चिकनी और चमकदार बना देते हैं। गिलास को बन्द करने के लिये वायवागम्य चूड़ीदार डाट ऊपर से लगा देते हैं। द्रवों और वायव्य पदार्थों में संचालन शक्ति साधारणतया न्यून होती है। अब यह देखना है कि इन पदार्थों के गर्म होने की क्या विशेष क्रिया है।

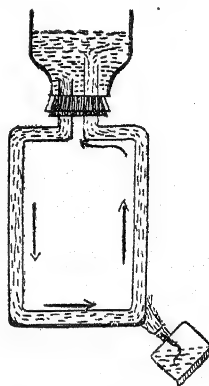
प्रयोग ४९—**संवाहन धाराएं** (Convection Currants): जल तथा अन्य द्रव किस विधि से गर्म होते हैं यह देखने के लिये एक गोलतली वाली काँच की सुराही लो और उसमें पानी डाल कर किसी घुलनशील रंग की एक डली डाल दो। सुराही को गर्म करो। देखोगे कि (चित्र ५१) यह रंगतदार जल बीच में से नीचे से धारा बन कर ऊपर को उठ जाता है और ऊपर का शीतल और भारी जल नीचे वाले गर्म और हलके जल के स्थान पर आ जाता है। इस प्रकार जल स्वयं बह बह कर सारे जल को गर्म कर देता है। प्रत्येक द्रव की इस तरह घूमने से संवाहन धाराएँ बन जाती हैं। सारे तरल पदार्थ—द्रव और वायव्य—संवाहन द्वारा गर्म होते हैं। तरल पदार्थों के गर्म होने की उस विधि को जिसमें पदार्थों के कण स्वयं तपित होकर घनत्व की न्यूनाधिकता के कारण ऊपर नीचे को बहते हैं और सारे पदार्थ को गर्म कर देते हैं संवाहन कहते हैं।



चित्र ५१—संवाहन धाराएं।

इसी कारण से, बहुतों ने देखा होगा, यदि अग्नि की लौ पर किसी काग़ज़ को छोड़ते हैं तो वह ऊपर को उड़ने लगता है।

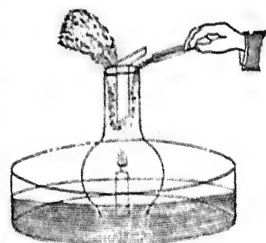
प्रयोग ५०—जल की चक्रगति:चित्रानुसार काँच की एक आयताकार नली लो। इसके दोनों सिरों में एक कटी हुई बोतल उलटी कर काग द्वारा फँसा दो। बोतल के खुले हुए सिरे में ऊपर तक जल भर लो। बोतल में थोड़ा घुला हुआ रंग डाल कर आयताकार नली की एक भुजा को गर्म करो। इस भाँति नली संवाहन धाराएँ लैम्प के निकट वाली भुजा में ऊपर को जाती दिखाई देंगी और दूसरी भुजा में नीचे को। ऐसे जल का चक्र मार्ग बन जाता है। इसी भाँति अन्य द्रवों में भी संवाहन धाराएँ दिखलाई जा सकती हैं।



चित्र ५२—संवाहन।

बच्चों को काग़ज़ की कुप्पी में चावल पकाते हुए तुममें से बहुतों ने देखा होगा। काग़ज़ क्यों नहीं जलता? काग़ज़ को जलाने के लिये १००° श से अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है, परन्तु काग़ज़ की कुप्पी में ज्योंही ताप तली में लगता है त्योंही संवाहन धाराओं द्वारा जल में चला जाता है। कुप्पी का तापकम १००° श. से अधिक उस सयय तक नहीं होता जब तक कि कुल जल वाष्प नहीं बन जाता। अतएव १००° श पर चावल इत्यादि कुप्पी में पक जाते हैं किन्तु कुप्पी नहीं जलती।

प्रयोग ५१—**वायु में संवाहन धाराएँ**:—एक गहरी तश्तरी लेकर उसके बीच में एक छोटी मोमबत्ती जला कर जमा दो। तश्तरी में मोमबत्ती पर एक चिमनी जमा कर चारों ओर थोड़ा सा पानी डाल दो, देखोगे कि मोमबत्ती शीघ्र ही बुझ जाती है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यही है कि बत्ती के पास ताजे वायु का अभाव है, नीचे से वायु जा नहीं सकता और न वायु ऊपर ही से भीतर को जा सकता है क्योंकि चिमनी में धुआँ तथा वायु गर्म होकर ऊपर को आते हैं। यही कारण है कि लैम्प और लालटेनों की चिमनी में वायु के भीतर जाने का मार्ग नीचे की ओर बना दिया करते हैं। यदि इस प्रयोग में तश्तरी में जल न डालो तो मोमबत्ती नहीं बुझेगी। चिमनी के ऊपर बीचों बीच टीन व पट्ठे का चित्रानुसार पर्दा लगा दो तो भी देखोगे कि मोमबत्ती जलती रहती है। प्रत्येक दशा में दो मार्ग बन जाते हैं एक में से शुद्ध वायु लैम्प में पहुँचता है और दूसरे से अशुद्ध वायु गर्म हो कर बाहर निकलता है। वायु की संवाहन धाराओं को देखने के लिये एक कागज़ को जला कर चिमनी के मुँह पर पर्दे की एक ओर लाओ तो देखोगे कि चिमनी की इस राह से धुआँ नीचे को उतर जाता है और दूसरी ओर से निकलता है।



चित्र ४३—वायु में संवाहन।

**संवाहन का सम्प्रयोग**—स्वास्थ्य के हेतु स्वच्छवायु अनिवार्य है और विशेषतया जिस कमरे में बहुत से मनुष्य हों वहाँ शुद्ध वायु मुख्य और ध्यान देने योग्य समस्या है। कमरों में

मनुष्यों के साँस लेने के कारण वायु गर्म और अशुद्ध हो जाता है। फलतः हलका होकर अशुद्ध वायु ऊपर को जाता है। यदि छत के निकट कोई रोशनदान इस गन्दे वायु के निकलने के लिये हो और नीचे धरातल के निकट अन्य द्वार हो तो वायु का संवाहन नियमानुसार जारी हो जावेगा। छत निकटवर्ती रोशनदान से अशुद्ध वायु का वहिष्कार होता रहेगा और नीचे वाले द्वार से शुद्ध वायु प्रवेश करता रहेगा। इसलिये रहने के मकान में स्वास्थ्यके हितार्थ दो द्वार होने अत्यावश्यक हैं। जिस कमरे में तुम सोओ उसमें प्रत्येक ऋतु में कोई न कोई द्वार अवश्य खुला रक्खो। अपने रहने के मकान में कोलों की अंगीठी व दीपक जला कर कमरा बिलकुल बन्द करना भयप्रद है।

**व्यापारी पवन** (The Trades)—सूर्य पृथ्वी को भिन्न २ स्थानों पर एक सा तपित नहीं करता। पृथ्वी के गर्म स्थान से गर्म और हलके वायु की धाराएँ ऊपर को उठा करती हैं और इसके स्थान पर ठन्डा वायु आ जाता है। भूमध्य रेखा के निकटवर्त्ती स्थानों का वायु उत्तरी व दक्षिणी स्थानों की अपेक्षा अधिक तपित होकर ऊपर को उठ जाता है इस के स्थान पर (धरातल के निकट) ठन्डा वायु अधिक वायुभार वाले शीतोष्ण कटिवन्धों से आ जाता है। इस प्रकार वायु का चक्र बंध जाता है। पृथ्वी चपटी और स्थावर होती तो धरातल पर पवन ध्रुवों से ठीक पूर्वाभिमुख भूमध्य रेखा की ओर बहता; परन्तु क्योंकि पृथ्वी परिभ्रमण करती है इससे पृथ्वी के उत्तरीय गोलार्ध में कर्क रेखा से वायु पूर्वोत्तर से और दक्षिणी गोलार्ध में मकर रेखा से पूर्व दक्षिण से भूमध्य रेखा को बहती है। इन्हीं व्यापारी

पवन ( Trade winds ) कहते हैं क्योंकि ये नियन्त्रित रूप से चलकर तिजारती जहाजों के खेने में सहायता देती हैं।

**स्थल तथा जल पवन** ( Land and sea Breezes )— दिन में समुद्री किनारों पर स्थल सूर्य की गर्मी से जल की अपेक्षा शीघ्र तपित हो जाता है, क्योंकि जल का विशिष्ठताप अत्यधिक होता है। इस लिये स्थल का वायु समुद्र पर की वायु से कहीं हलका हो जाता है। फलतः यह वायु ऊपर को उठ जाता है और



चित्र ४४—सामुद्रिक पवन।

उसका स्थान लेने के लिये समुद्र से ठन्ढा वायु आ जाता है। इस प्रकार दिन में पवन समुद्र से स्थल की ओर को बहता है। इसको सामुद्रिक पवन कहते हैं। सूर्यास्त पश्चात् जल का विशिष्टताप अधिक होने के कारण स्थल समुद्र की अपेक्षा शीघ्र ही शीतल हो जाता है। समुद्र के ऊपर से गर्म वायु ऊपर को उठ जाता है और इसका स्थान स्थल का ठंढा वायु ले लेता है। इस भांति रात्रि में वायु स्थल से समुद्र की ओर को बहा करता

है। इन्हीं को स्थल पवन कहते हैं। ऐसे ही सामुद्रिक अन्तर्धाराएं भी जल में संवाहन धाराओं पर ही निर्भर हैं। ग्रीष्म में समुद्र की अपेक्षा स्थल अधिक उष्ण होने से सामुद्रिक पवन की भाँति समुद्र की ओर से मान्सून की पवन चला करती हैं।

विकिरण ( Radiation )—यदि हम धूप में व अग्नि के सम्मुख खड़े होते हैं तो हमें गर्मी मालूम होने लगती है चाहे वायु किसी ओर को क्यों न बहती हो। इस से प्रत्यक्ष है कि ताप स्थानान्तर की इस विधि में मध्यस्थ की आवश्यक्ता नहीं होती। तुम जानते हो कि यदि अग्नि के सम्मुख अधिक गर्मी प्रतीत होने लगती है तो गर्मी को रोकने के लिये मुँह के सामने हाथ, काग़ज़ व कपड़े की आड़ कर लिया करते हैं ऐसे पदार्थों से विकीर्ण ताप रुक जाता है। परन्तु अन्य पदार्थ ऐसे भी हैं कि जिनसे विकिरण से आता हुआ ताप नहीं भी रुकता उदाहरणार्थ काँच व जल। ऐसे पदार्थों के मध्य से विकिरण हो जाया करता है किन्तु यह आवश्यक नहीं, कि ये पदार्थ स्वयं भी गर्म हो जायं। विकीर्ण ताप सदा सरल और सीधी रेखाओं में बड़ी शीघ्रता से जाया करता है किन्तु मध्यस्थ को नहीं गर्म करता। यही कारण है कि ऊपर का वायु ठण्ढा होता है। पर्वती देशों पर ऊँचाई के कारण वायु विरल होता है इसीलिये सूर्य रश्मियाँ वहाँ तीक्ष्ण होती हैं। पर्वतों पर शीत होने का मुख्य कारण यह भी है कि वहाँ का विरल वायु भूमि के ताप को विसर्जित होने से नहीं रोक सकता। तलेटियों में घना वायु और कर्बन द्विओषित ( Carbon dioxide ) सूर्य से आये हुये ताप को विसर्जित नहीं होने देते। विकीर्ण ताप के अत्यधिक वेग, धरातल से दूरी और वायु की विरलता के कारण ऊपरी वायु मण्डल—४०° श. से भी ठंढा हो जाता है।

यह तुम्हें ज्ञात है कि वायुमण्डल धरातल से केवल लगभग २०० मील तक है और आगे नहीं। सूर्य पृथ्वी से ९,२०,००,००० मील की दूरी पर है और वहाँ से ताप धरातल तक लगभग ८$\frac{1}{4}$ मिनट में आता है। इसलिये प्रत्यक्ष है कि ताप पृथ्वी तक शून्य स्थान से होता हुआ वायु के गर्म किये बिना ही विकिरण द्वारा चला आता है। यह याद रखना चाहिये कि :—

(१) ताप के विकिरण के लिये मध्यस्थ पदार्थ (medium) की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

(२) विकिरण में सूर्य से किरणें चारों ओर को जाती हैं, कुछ पदार्थों से विकिरण रुक भी जाता है।

(३) इस विधि में ताप का स्थानान्तर अन्य विधियों से अति शीघ्र होता है।

जिन पदार्थों में से ताप विकिरण द्वारा सरलता से चला जाता है उन्हें पारतापक (diathermanous) कहते हैं। शून्य स्थान पूर्णतया पारतापक होता है। सूखा वायु भी सीलदार वायु की अपेक्षा अधिक पारतापक होता है। इसी कारण वर्षा ऋतु की रात्रियों में ताप का विकिरण बहुत सहज सहज होता है। उन पदार्थों को जिनमें विकिरण द्वारा आया हुआ ताप रुक जाता है अपारतापक (adiathermanous) कहते हैं। ठोस और द्रव पदार्थ बहुधा अपारतापक होते हैं।

विकिरण की शीघ्रता निम्न बातों पर निर्भर होती है :—

(१) विकीर्णक गर्म पदार्थ और अन्य पदार्थों के तापक्रम के अन्तर पर।

(२) और विकीर्णक के पृष्ठ व तल के स्वभाव पर।

(३) मध्यस्थ वायु की विरलता व स्वभाव पर।

पदार्थों के खरदरे, रूखे तथा काले पृष्ठों से ताप का विकिरण चिकने चमकदार धातु तलों की अपेक्षा अधिक और शीघ्र हो जाता है। ऐसे ही ताप का अपशोषण भी पदार्थ के पृष्ठ के गुणों पर ही निर्भर है। जो तल ताप के श्रेष्ठ शोषक होते हैं वे ताप के श्रेष्ठ विकीर्णक भी होते हैं; किन्तु ताप के अधम परावर्त्तक होते हैं जैसे काजल व काला कपड़ा। इसी प्रकार जो पृष्ठ ताप के अल्प शोषक व अधम विकीर्णक होते हैं वे श्रेष्ठ परावर्त्तक होते हैं, उदाहरणार्थ श्वेत और चिकने तल जैसे दर्पण व पालिश किया हुआ टीन। यही कारण है कि काले पृष्ठ शीघ्र ही गर्म हो जाते हैं और शीघ्र ही शीतल भी पड़ जाते हैं।

प्रयोग ५२—दो स्थानों पर बराबर २ धूप में हिम के टुकड़े रख दो। एक को काले वस्त्र से ढक दो और दूसरे को श्वेत से। देखोगे कि काले वस्त्र के नीचे का टुकड़ा दूसरे की अपेक्षा शीघ्र पिघल जाता है। श्वेत वस्त्र के नीचे वाले हिम पर देर में में प्रभाव पड़ेगा। इससे प्रत्यक्ष है कि काली सतह में ताप का अपशोषण अधिक व शीघ्र और परावर्त्तन धीमा और न्यून होता है। इसके प्रतिकूल श्वेत वस्त्र से ताप का अधिकांश परावर्त्तित हो जाता है और शोषण न्यून होता है। सफेदी से पुता हुआ कमरा दिन में तारकूल से पुते हुए कमरे की अपेक्षा सदा ठण्डा हुआ करता है। ताप का श्रेष्ठ परावर्त्तक तल ताप का अधम शोषक होता है।

**विकिरण के सम्प्रयोग**—यही दशा पृथ्वी पर स्थल की भी है। जल की अपेक्षा पृथ्वी ताप को शीघ्र ही सोख लेती है और पृथ्वी से ताप विकिरण द्वारा शीघ्र ही निकल भी जाता है। विलायत आदि देशों में मकानों को गर्म रखने के हेतु गर्म जल प्रवाहक नल लगाये जाते हैं और उनको ऊपर से कालस से पोत देते हैं ताकि गर्म जल का ताप शीघ्रता से विकिरण द्वारा बाहर निकलता रहे। जो पदार्थ अग्नि के सम्मुख रखने से शीघ्र गर्म हो जाते हैं उन्हीं को ताप का उत्तम शोषक समझना चाहिये।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (८)।

( १ ) ताप के स्थानान्तर की भिन्न भिन्न विधियों का वर्णन करो।

( २ ) भिन्न भिन्न पदार्थों की आपेक्षिक संचालक शक्तियों को दर्शाने के लिये किन्हीं दो प्रयोगों का वर्णन करो।

( ३ ) डेवी साहब के रक्षक लैम्प का सचित्र वर्णन करो? यह किस सिद्धान्त पर बना रहता है?

( ४ ) कुचालक और सुचालक पदार्थों के सम्प्रयोग बताओ।

( ५ ) द्रवों की कुचालकता व सुचालकता की तुलना प्रयोग द्वारा किस भाँति कर सकते हो?

( ६ ) ताप के संचालन और संवाहन में क्या भेद है?

यदि कोई पानी का बरतन नीचे से गर्म करते हैं तो ऊपर से गर्म करने की अपेक्षा जल्दी गर्म हो जाता है, इस घटना का क्या कारण है?

( ७ ) दो परीक्षा नलियों में जल भरा है। एक में हिम का टुकड़ा पानी पर डाल दिया है; दूसरी में वैसा ही हिम का टुकड़ा एक बोझ में बाँध कर डुबा दिया है; फिर पहली नली को नीचे से और दूसरी

को ऊपर से गर्म करते हैं। बताओ किस परीक्षा नली में हिम पहिले गल जायगा और जल किसमें पहिले उबलने लगेगा।

(८) ताप का संवाहन दर्शाने के हेतु किसी प्रयोग का वर्णन करो। साधारण जीवन में ताप के संवाहन के उपयोग के दो उपयुक्त दृष्टान्त दो।

(९) उन विधियों का वर्णन करो जिनके द्वारा गरम जल भरे हुए बरतन में से ताप निकलता रहता है। तुम ऐसे क्या क्या प्रयत्न करोगे कि जिनसे ताप बरतन में से कम से कम निकले?

(१०) एक शतांश तापमापक की घुंडी पर कालौंच पोत दी है। फिर इसको और एक दूसरे सादे तापमापक को पहले धूप में रख देते हैं और फिर साधारण रात्रि में रख देते हैं तो बताओ प्रत्येक दशा में उनके तापक्रमों में क्या अन्तर पड़ सकता है।

(११) स्थल पवन और जल पवन के क्या कारण होते हैं?
इनका मौसम पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(१२) मान्सून और व्यापारी पवन चलने के क्या कारण हैं?

(१३) विकिरण में ताप का स्थानान्तर कैसे होता है?
विकिरण के सिद्धान्त के कुछ सम्प्रयोगों का वर्णन करो।

(१४) पारतापक, विकीर्णक और विसर्जक पदार्थों की उदाहरण सहित संक्षिप्त व्याख्या करो।

(१५) एक प्याले में ८०° श. पर १०० घन शतांशमीटर चाय रख कर १० मिनट को छोड़ देते हैं और २०° श. पर २० घन शतांशमीटर दूध को इसमें डालते हैं। परन्तु दूसरे प्याले में ८०° श. पर १०० घन शतांशमीटर चाय लेकर पहिले की नाईं २०° श. तापक्रम पर

२० घन शतांशमीटर दूध डाल देते हैं और फिर ठण्डा होने को १० मिनट तक छोड़ देते हैं। क्या दोनों प्यालों का तापक्रम के सम्बन्ध में एक सा ही व्यवहार होगा ?

---

## नवां अध्याय ।

### ताप क्या है ? ताप और प्रकाश में सम्बन्ध ।

**ताप क्या है ?** यह तुम्हें पहले ही बताया जा चुका है कि **ताप का मुख्य उद्गम स्थान सूर्य ही है।** परन्तु पृथ्वी पर हमें ताप कई रीतियों से मिलता है। रसायनिक क्रियाओं प्रक्रियाओं द्वारा ( कोयले इ. का जलना ), भौतिक कार्य से ( जैसे, संघर्षण ) और पृथ्वी के गर्भ (ज्वालामुखी पर्वतों या झरनों से) तथा विद्युत इ. से हमें ताप की प्राप्ति होती है। यूरोपीय देशों में पहिले विज्ञानवेत्ता ताप को एक प्रकार का तरल पदार्थ मानते थे, जिसका नाम उन्होंने 'कलौरिक' रख छोड़ा था। जब कोई पदार्थ गर्म होता था तो वे समझते थे कि उस पदार्थ में एक अन्य तरल 'कलौरिक' मिल जाता है। परन्तु सन् १७८९ ई० में रमफोर्ड साहब ने इस सिद्धान्त को प्रयोगों की कसौटी पर घिस कर यह सिद्ध कर दिया कि ताप कोई विशेष तत्त्व व पदार्थ नहीं है। फिर डेवी साहब ने भी यही सिद्ध किया कि ताप न कोई तत्व विशेष है और न कोई पदार्थ। उन्होंने दिखलाया कि यदि हिम के दो टुकड़ों को, जो कि बिलकुल ठंढे और बिना कलौरिक के होते हैं, रगड़ें तो भी पिघलने के हेतु काफी ताप उत्पन्न हो जाता है। इसलिये ताप कोई विशेष तरल 'कलौरिक' नहीं होता **ताप केवल गुणमात्र है।** यह भौतिक कार्य व गति-

शक्ति का ही एक भेद व प्रत्यक्ष रूपान्तर है। पदार्थों के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में प्रकट होता है। ताप सब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है। जब शक्ति के संचार व गति के वेग में रुकावट होती है तब वह ताप का रूप हो जाती है। दो पदार्थों के संघर्षण में शक्ति का व्यय होता है वही उष्णता के रूप में प्रकट होता है।

**तरङ्ग सिद्धान्त**—यह तुम जानते हो कि सूर्य से ताप और प्रकाश हमारे पास बिना किसी मध्यस्थ के आते हैं। अब यह जानने की आवश्यकता है कि ये हमारे पास किस प्रकार आते हैं और आते समय किस रूप में आते हैं। ताप एक प्रकार की शक्ति का नाम है और हमारे पास विकिरण द्वारा आता है। परन्तु विकिरण किसे कहते हैं ? वैज्ञानिकों ने बहुत सी घटनाओं से सिद्धान्त के आधार पर यह मान रक्खा है कि सारे विश्व में एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व ईथर फैला हुआ है जो प्रत्येक पदार्थ के वाह्यान्तर सारे स्थान में व्याप्त है। इसको आकाश तत्व भी कह सकते हैं। अभी तक यह केवल एक काल्पनिक तत्व है, इसकी प्रकृति का पूर्णतया ज्ञान नहीं हो सका है। आधुनिक वैज्ञानिकों का यह मत है कि सूर्य के प्रभाव से आकाश में ईथर की अनेकशः तरंग बनती हैं, जैसे किसी ताल के स्थिर जल में एक कंकर के फेंकने से उठने लगती हैं परन्तु इन लहरों के परिमाण भिन्न भिन्न होते हैं। इनमें से कुछ ऐसी होती हैं, विशेषतया छोटी तरंगें, जिनका प्रभाव हमारे नेत्रों पर होता है, इन्हीं के द्वारा हमें ज्योति व प्रकाश का बोध होता है। इनके अतिरिक्त परिमाण में कुछ और बड़ी लहरों का हमारी त्वचा को भी अनुभव होता है। इन्हीं विशेष परिमाण की

लहरों के प्रभाव को हम ताप हैं। प्रकाश और ताप की तरंगों में केवल परिमाण का ही मुख्य भेद है अन्य नहीं। परन्तु इसके कहने का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिये कि प्रकाश की तरंगें ताप की तरंगों से पृथक् होती हैं। वास्तव में विकीर्ण ताप का प्रकाश से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों में केवल इतना ही भेद है जैसा कि सामुद्रिक हिलोरों में और छोटी तरंगों में।

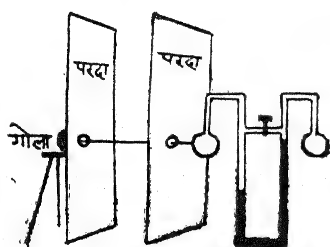
प्रयोग ५२—**ताप और प्रकाश में सादृष्य**— लोहे के एक बारीक तार को लेकर किसी अदीप्त कोठे में उसमें से विद्युत धारा प्रवाहित करो। तार गर्म हो जाता है और ज्यों ज्यों धारा तीव्र होती है, त्यों त्यों लोहे के तार का तापक्रम भी बढ़ जाता है। किसी सूक्ष्मताप दर्शक यन्त्र द्वारा यह बात सरलता से दिखाई जा सकती है कि तार में से ताप विकिरण द्वारा निकलता है परन्तु तार दीप्तिमान नहीं होता। यदि विद्युत-धारा को और तीव्र करो तो लोहे का तार इतना गर्म हो जावेगा ( लगभग ५००° श ) कि वह चमकने लगेगा इसका तात्पर्य यही है कि तार के चारों ओर आकाश तत्व में ताप की तथा प्रकाश की दोनों तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं यदि तार में विद्युत धारा को और तीव्र कर दो तो तार में से श्वेत प्रकाश प्रकट होने लगेगा और तापक्रम बहुत बढ़ जावेगा ( लगभग १५००° श )। **विकीर्ण ताप और प्रकाश की किरणों का प्रयोगों द्वारा स्वभाव बिलकुल एक सा ही प्रतीत होता है।**

(१) जब पृथ्वी और सूर्य के मध्यस्थ चन्द्रमा के आने से सूर्य ग्रहण होता है तो देखते हैं कि ज्यों ही सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाश रुकता है त्यों ही ताप भी रुक जाता है। इससे सिद्ध होता है कि जिस वेग से प्रकाश की तरङ्गें आती हैं

उसी वेग से ताप की किरणें भी, अर्थात् दोनों का वेग १८६,००० मील प्रति सेकेण्ड है।

(२) गर्म पदार्थ के चारों ओर से ताप का विकिरण होता है। और इसका गमन सरल रेखात्मक ही होता है।

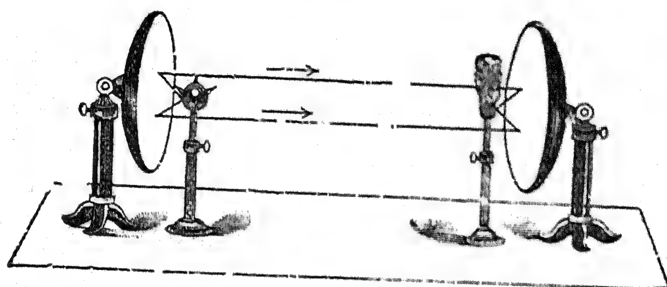
प्रयोग ५३—इस बात को दिखलाने के लिये एक धातु के गोले को तप्त करो। इसके निकट ही काग़ज़ के पट्ठे में एक सूराख करके खड़ा कर दो। दूसरा पट्ठा लेकर इतनी ही ऊंचाई पर एक वैसा ही सूराख़ और कर लो। इन दोनों पर्दों को इस भांति लगाओ कि दोनों सूराख़ एक ही रेखा में तप्त गोले के सम्मुख रहें। इन दोनों पट्ठों के पीछे एक असमतापमापक रखने से विदित होगा कि तापमापक की एक घुण्डी का तापक्रम दूसरी से कुछ अधिक हो जाता है। यदि अब इनमें से किसी एक पट्ठे को एक ओर सरका दो तो असमतापमापक पर कोई भेद दृष्टिगोचर न होगा। प्रत्यक्ष है कि जब दोनों सूराख़ एक ही रेखा में थे तभी ताप विकिरण द्वारा आ सकता था। अर्थात् प्रकाश की भांति ताप भी एक ही मध्यस्थ में सीधी और सरलरेखाओं में जाता है।



चित्र ५४—ताप की सरलरेखात्मक गति।

(३) ताप की किरणें भी ठीक प्रकाश की भांति परावर्तित होती हैं। तापके परावर्त्तन में भी वही नियम ठीक उतरते हैं जो प्रकाश के परावर्त्तन में। प्रकाश की किसी भी पुस्तक के पढ़ने से विदित हो सकता है कि दीपक को यदि किसी

नतोदर दर्पण से कुछ दूरी पर रखते हैं; तो इसका प्रतिबिम्ब दर्पण की किरणनाभि ( Focus ) पर पड़ता है। यदि एक नतोदर दर्पण को सूर्य के सम्मुख करो तो देखोगे कि इसकी किरण नाभि पर सूर्य का बिन्दु प्रतिबिम्ब ही नहीं पड़ता, किन्तु दर्पण के अक्ष के समानान्तर आती हुई ताप की तरंगें ( व किरणें ) भी दर्पण से परावर्त्तित हो कर किरणनाभि पर केन्द्रीभूत होती हैं। यदि किरणनाभि पर कोई काग़ज़ रक्खो तो वह तुरन्त जल जायगा।



चित्र ५५—नतोदर दर्पण से ताप का परावर्त्तन और संसरण।

प्रयोग ५४—चित्रानुसार दो नतोदर दर्पण एक दूसरे के सम्मुख ऐसे रक्खो कि उनके अक्ष एक ही रेखा में हों। एक दर्पण के नाभि-केन्द्र पर लोहे की की लाल गर्म गेंद रख दो। गेंद से ताप की किरणें अपसृत हो कर दर्पण पर पड़ने के पश्चात् अक्ष के समानान्तर लौट कर दूसरे दर्पण पर पड़ती हैं। यही किरणें परावर्त्तित हो केन्द्रीभूत हो जाती हैं। यदि इस नाभि पर कोई प्रज्वलनशील पदार्थ स्फुट इ. (Phosphorus) रख दो तो तुरन्त जल उठेगा। आशय यह है कि प्रकाश की भाँति ताप की तरंगें भी उन्हीं नियमों के अनुसार परावर्तित होती हैं।

(४) **ताप की किरणें भी एक पदार्थ से दूसरे में जाते समय प्रकाश की भांति विचलित हो जाती हैं।** किसी उन्नतोदर ताल ( Convex lens ) को सूर्य के सामने करो। देखोगे कि ताल के दूसरी ओर सूर्य का प्रतिबिम्ब एक प्रकाशमान बिन्दुरूप बन जाता है। इसी स्थान पर ताल पर पड़ा हुआ ताप भी संसृत हो जाता है। यदि इस प्रकाशमान विन्दुरूप पर कागज़ रक्खो तो तुरन्त जल जावेगा। इस प्रकार ताप की तरंङ्गों का व्यवहार प्रकाश की किरणों की भांति ही होता है।

(५) **विकीर्ण ताप की तीक्ष्णता प्रकाश की भाँति, ताप के** उद्गम की दूरी के उत्क्रमवर्गानुपाती होती है। यदि 'त' उद्गम स्थान पर ताप की मात्रा हो, $\pi$ एक स्थायी राशि और 'व्य' किसी स्थल से उद्गम की दूरी हो तो उस स्थान पर विकीर्ण ताप की तीक्ष्णता $= \frac{\text{त}}{४ \pi \text{व्य}^2}$ होगी; क्योंकि 'व्य' अर्द्ध व्यास वाले गोलाकार तल का क्षेत्रफल सदा $४\pi$ व्य$^2$ होता है।

ऐसे प्रयोगों से प्रत्यक्ष है कि **विकीर्ण ताप और प्रकाश की तरङ्गों में परस्पर बहुत समानता है**। इन बातों से यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि ताप की तरङ्गों का प्रकाश के साथ सदा ही संसर्ग रहता है। हिम ऋतु में चन्द्र प्रकाश के साथ ताप नहीं रहता और न इसके प्रतिकूल अंधेरे में साधारण गर्म वस्तु के साथ प्रकाश ही रहता है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि ताप कोई वस्तु विशेष नहीं है; केवल शक्तिरूप है जिसका अन्य मध्यस्थ के अभाव में आकाश तत्व द्वारा स्थानान्तर होता है। ताप का अनुभव हम लोगों को

त्वचा द्वारा ही होता है। हमारी त्वचा के नीचे ऐसी नसें होती हैं जिनके द्वारा ताप के संवेदन (तरङ्गों) का बोध हमारे मस्तिष्क को होता है। इसी प्रकार प्रकाश की तरङ्गों का बोध नेत्रों द्वारा होता है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (९)।

(१) आजकल के वैज्ञानिकों का ताप के विषय तरङ्गसिद्धांत क्या है ?

(२) ताप क्या किसी वस्तु विशेष का नाम है ? ताप और प्रकाश में समता की क्या २ बातें हैं ?

(३) ताप और प्रकाश के जो जो नियम एक से हों उनका वर्णन करो।

(४) ताप और प्रकाश में क्या भेद है ?

(४) किन किन घटनाओं से तुम यह अनुमान कर सकते हो कि ताप और प्रकाश का स्थानान्तर एक ही रीति से होता है ?

---

# विविध प्रश्नावली (अ)।

नोट—ताप पर प्रयाग की हाई स्कूल परीक्षा में सन् १९२४ से १९३२ तक अधोलिखित प्रश्न दिये गये हैं।

(१) साधारण तापमापकों में पारे का क्यों प्रयोग करते हैं ? शतांश-मापक पर २२° फ. का सा क्या तापक्रम होगा ? (१९२४)

(२) जल का गुप्तताप ८० ताप की इकाई है, इसके कहने का क्या तात्पर्य है ? ६४° शतांश तापक्रम पर ३० ग्राम एलकोहल (विशिष्ट ताप = ·६) में ०° श. पर कितना हिम डाला जाय कि इसका तापक्रम १०° श. हो जाय। (१९२४)

## विविध प्रश्नावली

( ३ ) यदि लोहे और पीतल के छड़ तापक्रम के एक से ही अंशों [illegible] गर्म किये जायं तो यह कैसे दर्शा सकते हो कि लोहे की [illegible] पीतल का अधिक प्रसार होता है यदि तापमापक की घुंडी [illegible] गर्म जल डालें तो पहिले तो पारा नली में उतरता है और फिर चढ़ जाता है, इसके क्या कारण हैं? ( १९२४ )

( ४ ) एक कमरे में दो तापमापक लटके हुए हैं। एक में तापक्रम [illegible] है और दूसरे में ५९°; इस भेद का कारण समझा द्वारा [illegible] कर लिखो। ( १९२५ )

( ५ ) एक बीकर में २ आउंस जल और २ आउंस [illegible] करते हैं। फिर दो बीकरों में एक ही तापक्रम पर [illegible] एक ही मात्रा लेकर एक में गर्म सीसा डाल देते हैं और दूसरे में गर्म जल। दोनों बीकरों के मिश्रणकतापक्रम देखने से [illegible] प्रकार और क्यों होगा? ( १९२५ )

( ६ ) साधारण वायुभारमापक का वर्णन करो और [illegible] लिखो कि इसका किस भांति उपयोग होता है। (अ) यदि [illegible] को तिर्छी कर दें तो क्या घटना होगी? (ब) यदि [illegible] को किसी ऊँचे पर्वत की चोटी पर ले जावें तो क्या और [illegible] गोचर होगा? अपने उत्तर सतर्क लिखो। ( [illegible] )

( ७ ) ६०° श तापक्रम का १०० ग्राम जल १०० ग्राम हिम पर डालते हैं तो भली भांति वर्णन करो क्या घटना होगी? यदि हिम बचेगा तो कितना? ( १९२६ )

( ८ ) गुब्बारा वायु में क्यों चढ़ जाता है? यह भी समझा कर लिखो कि किसी ऊँचाई पर जाकर वह क्यों रुक जाता है और इसको नीचे उतारने के लिये क्या उपाय करना चाहिये। ( १९३० )

( ९ ) यदि लालटैन की गर्म चिमनी से ठण्डा पानी [illegible] तो वह बहुधा टूट जाती है। और यदि [illegible]

भरी बोतल को पाले की रात्रि में खुली छत पर रख दें तो यह फट जाती है। जिस प्रकार समझा सको इनके कारण समझा कर लिखो। ( १९२७ )

(१०) हिमीभवन के गुप्तताप से क्या आशय है। इसकी निर्णयविधि का भली भांति वर्णन करो। ( १९२८ )

(११) द्रव के क्वथनाङ्क की व्याख्या करो। पतीली को ढकने से पानी जल्दी उबल जाता है और बिना ढके देर में, इस घटना का क्या कारण है ? ( १९२८ )

(१२) यदि जाड़ों में जल तुम्हारे नल में १०° श पर आ रहा है तो बताओ नहाने के लिये ३५° श. पर २० गैलन जल लेने के लिये तुम्हें कितना उबलता हुआ जल मिलाना पड़ेगा। ( १९२८ )

(१३) वायु-भारमापक का वर्णन करो। साधारण वायुभारमापक में जल का प्रयोग क्यों नहीं करते ? पारे के ऊपर बन्द नली में एक छोटे से सूराख करने का क्या प्रभाव होगा ? ( १९२९ )

(१४) ताप के विकिरण से क्या तात्पर्य है ? विकिरण को समझाने के हेतु देखे हुये दो प्रयोगों का वर्णन करो। ( १९२९ )

(१५) (१) ताप की इकाई और (२) हिम के गुप्तताप से तुम क्या आशय समझते हो ? ५०° श. तापक्रम वाले २२५ ग्राम जल में कितना हिम डालना चाहिये ताकि इसका तापक्रम १०° श. हो जाय ? हिम का गुप्तताप ८० कलोरी होता है। ( १९२९ )

(१६) चित्र द्वारा महत्तम और न्यूनतम तापमापक का वर्णन करो। ( १९३० )

(१७) (१) विशिष्ट ताप और (२) कलोरीमापक के तुल्यशक्तिक जल का तात्पर्य समझा कर लिखो।

एक १०० ग्राम भार के ताम्र कलौरीमापक में २०° श पर ३०० ग्राम जल है। ४०० ग्राम भार वाले एक धातु के टुकड़े को ९८° श. तक गर्म करके कलौरीमापक में डाल देते हैं। इससे जल का तापक्रम २३° श हो जाता है। (१) कलौरीमापक के तुल्यशक्तिक जल को छोड़ कर और (२) तुल्यशक्तिक जल की गणना करके धातु का विशिष्ठ ताप निकालो। ताम्र के विशिष्ट ताप को ·१ मान लो। ( १९३० )

(१८) यह बात तुम कैसे दिखलाओगे कि (१) जल ताप का कुचालक है (२) जल ४° श से ०° श पर ठण्डा करने से आयतन में फैलता है और जब यह जमता है तो और भी अधिक फैलता है? पानी के इस व्यवहार से तालाब के जीवों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका वर्णन करो। ( १९३१ )

(१९) (अ) किसी पदार्थ की ताप के लिये ग्रहण शक्ति और (ब) हिम के गुप्तताप से क्या आशय है? ४० ग्राम भारी ताम्बे का २००° श. वाला एक टुकड़ा हिम शिला में गड्ढा कर डाल दिया गया है। गणना करो कितना हिम गल जावेगा। ताम्र का वि. ताप ·०९५ है और हिम का गुप्तताप ८०। ( १९३१ )

(२०) वाष्प का गुप्तताप निर्णय करने के हेतु जो प्रयोग तुमने किया हो उसका भली प्रकार वर्णन करो। १०० ग्राम हिम को ०° श. जल में गलाने के लिये कितने ताप की आवश्यक्ता होगी? ( वाष्पीय गु. ता. = ५३६; हिमीय गु. ता. = ८०° ). ( १९३२ )

(२१) अधोलिखित घटनाओं की भली प्रकार व्याख्या करो :—

(क) एक ही तापक्रम पर जल की अपेक्षा भाफ से देह बहुत अधिक जल जाती है।

(ख) शान्त दिन की अपेक्षा हवादार दिन में कपड़ें जल्दी सूख जाते हैं।

(ग) सर्दी में यदि किसी प्रातःकाल हम एक हाथ से फावड़े (कस्सले) के लोहे का भाग पकड़े और दूसरे से दस्ता, तो लकड़ी की अपेक्षा लोहा अधिक ठण्डा प्रतीत होता है।

(घ) ओले पड़ने के पीछे वायुमण्डल बहुत ठण्डा हो जाता है।

(च)

नोट—अधोलिखित प्रश्न पञ्जाब मैट्रिकुलेशन परीक्षा के प्रश्नपत्रों में से छांट कर दिये गये हैं।

(१) हमारे पास एक ऐसी नली है जिसका एक सिरा खुला हुआ है और दूसरी ओर एक खोखली घुंडी है। हम इसे पानी की नान्द में उलटी कर देते हैं। नान्द को गर्म करके फिर ठण्डी होने के लिये छोड़ देते हैं तो बताओ क्या २ घटना दृष्टिगोचर होंगी? इनका क्या कारण है? (१८६८)

(२) ०° श. तापक्रम पर १ आउंस जल ६०° श. तापक्रम वाले १० आउंस जल में मिलाने से क्या तापक्रम होगा? ७०° श. तापक्रम वाले १० आउंस जल में १ आउंस हिम गलाने से मिश्रण का तापक्रम ५७° श. के लगभग हो जाता है। इस प्रयोग से तुम क्या अभिप्राय निकाल सकते हो? (१८६८)

(३) कोई कम्पाउंडर ज्वरमापक को उबलते हुए पानी में धो डालता है। डाक्टर को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा कि ज्वर-मापक खराब हो गया है। इसका क्या कारण है? (१६०५)

(४) ऊनी कपड़े सर्दी में क्यों पहिना करते हैं? दो कम्बलों से गर्मी अधिक रहेगी अथवा प्रत्येक से दुगुने मोटे एक कम्बल से? ऐसा क्यों होता है? (१६१५)

( ५ ) १०३ ग्राम ताम्र के टुकड़े ६८°·५श. तक गर्म करके १५·१° श. तापक्रम वाले ३५ ग्राम जल के एक ताम्बे के कलौरी मापक में डाल दिये गए हैं। कलोरीमापक का भार ३० ग्राम है और मिश्रण का तापक्रम २३·६० श. हो जाता है तो ताम्बे का विशिष्टताप निकालो। ( १६१५ )

( ६ ) जल व हिम का गुप्तताप ८० कलौरी है—इसके कहने से क्या तात्पर्य है ? हिम की एक सिल में सूराख करके ५६० घनशतांशमीटर जल डाल देते हैं। जब जल ०° श हो जाता है तो सूराख में ६५० घन शतांशमीटर जल हो जाता है तो बताओ जल का प्रारम्भिक तापक्रम क्या था ? ( १६१३ )

( ७ ) ओस और वर्षा में क्या भेद है ? ओस बनने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता है ? बादल कैसे बना करते हैं ? (१६१७)

( ८ ) ४०° श. तापक्रम वाले ५०० ग्राम जल में कितने हिम के मिलाने से मिश्रण का तापक्रम १०° श हो जावेगा ? (१६१८)

( ९ ) लकड़ी की ताप के हेतु कुचालकता दर्शाने के लिये दो प्रयोगों का वर्णन करो। रेलगाड़ियों में बर्फ़ वाले हिम को बुरादे से क्यों ढक कर रक्खा करते हैं ? ( १६१८ )

(१०) निम्न बातों में क्या वैज्ञानिक सिद्धान्त है ? (अ) शीतकाल में हाथों को गर्म करने के लिये मुँह से भाफ फूँका करते हैं और ग्रीष्म ऋतु में पंखे का प्रयोग किया करते हैं ? (ब) जाड़ों में मुँह की भाफ दिखाई देती है ? ( १६१८ )

(११) द्रव के क्वथनाङ्क से क्या तात्पर्य है ? इस बात का क्या सबूत है कि द्रव पर दबाव के भेद से क्वथनाङ्क में भी अन्तर हो जाया करता है ? सप्रयोग उत्तर दो। ( १६१६ )

(१२) —५° श. तापक्रम वाले ५० ग्राम हिम को ५६° श. पर जल बनाने के हेतु कितने ताप की आवश्यक्ता होगी ? हिम का वि. ता. ·५ है और गुप्तताप ८० कलौरी है। ( १६१६ )

(१३) किसी पदार्थ की ताप के लिये ग्रहणशक्ति से क्या प्रयोजन है ? प्रयोग द्वारा पारे और ताम्बे के विशिष्ट ताप की कैसे तुलना करोगे ? ( १६२० )

(१४) ताप के स्थानान्तर की तीनों विधियों का वर्णन करो। जब किसी कमरे को अँगीठी से गर्म करते हैं तब वह कौन सी रीति से गर्म होता है ? अपने उत्तर को दृष्टांतों सहित लिखो। ( १६२० और १६२४ )

(१५) यह बात दिखाने के लिये कि द्रव पर दबाव की विभिन्नता से उसका क्वथनाङ्क भी बदल जाता है किसी प्रयोग का सचित्र वर्णन करो। ( १६२५ )

(१६) ताप की इकाई, ताप के लिये ग्रहणशक्ति और विशिष्ट ताप की व्याख्या करो। १०० ग्राम लोहे के एक टुकड़े को १०° श. गर्म किया है। इतनी ताप की मात्रा से कितना जल १०° श. गर्म हो जावेगा ? लोहे का वि. ताप = ·१० है ( १६२५ )

---

# दूसरा खण्ड

## पहला अध्याय।

### प्रकाश क्या है ? प्रकाश के साधारण गुण।

**प्रकाश क्या है ?** ताप के अन्तिम अध्याय में तुम यह जान चुके हो कि ताप और प्रकाश में घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी समय यह समझा जाता था कि प्रत्येक प्रकाशमान पदार्थ में से एक प्रकार के अणु निकला करते हैं और उन्हीं के कारण पदार्थ दीप्तिमान दृष्टिगोचर होता है। परन्तु बहुत सी घटनाओं और प्रयोगों से वैज्ञानिकों ने यह परिणाम निकाला है कि प्रकाश का गमन आकाशतत्त्व ( Ether ) की तरङ्गों द्वारा होता है। ईथर की लहरों की लम्बाइयाँ व दैर्ध्य ( Wave-lengths ) भिन्न भिन्न होते हैं। ताप और प्रकाश में भेद का यही कारण है।

**प्रकाश स्वयं अदृष्य है और कोई वस्तु विशेष नहीं होता;** यह केवल एक प्रकार की शक्ति है जिसका गमन ईथर की लहरों द्वारा होता है और प्रभाव केवल अक्षिपट पर होता है। अन्धकार में हमें कोई पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु दीपक लाने से पदार्थ दिखलाई देने लगते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि दृष्टि के बोध का भौतिक कारण प्रकाश ही है। परन्तु प्रकाश की उपस्थिति हमारी दृष्टि में कैसे सहायता देती है ? प्रकाश की उपस्थिति के लिये वायु की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि सूर्य शून्यस्थान से भी परे होने पर हमें भली भाँति दृष्टिगोचर होता हैं। ताप विकिरण द्वारा पृथ्वी पर आता है उसी भाँति प्रकाश भी सौर्य विकिरण द्वारा ही फैलता है।

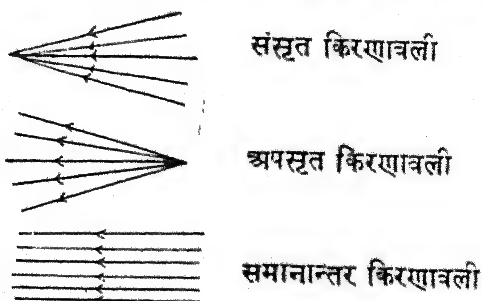
सौर्य विकिरण का ही एक नाम प्रकाश है। इस विकीर्ण शक्ति के आने का मध्यस्थ ईथर है। यदि ईथरीय तरङ्गों के दैर्ध्य अधिक होते हैं तो सम्भवतः ताप का रूपान्तर होने के कारण ये हमारे शरीर की त्वचा पर पड़ कर शरीर को तपा देती हैं और हमें गर्मी की संवेदना होने लगती है। यदि ईथरीय तरङ्गें हमारे नेत्रों की पुतलियों पर पड़ती हैं तो इनमें से छोटे दैर्ध्यवाली तरङ्गों के प्रभाव से हमें प्रकाश व ज्योति का बोध होने लगता है। यह तुम्हें पहिले ही बता दिया गया है कि ईथर के गुण वायु के गुणों से बिलकुल भिन्न हैं। ईथर में न तो भार ही होता है और न यह किसी प्रकार किसी रूप में दृष्टिगोचर ही होता है।

**पारदर्शक तथा अपारदर्शक पदार्थ** ( Transparent and opaque bodies )—ईथर को वैज्ञानिक लोग पूर्णतया लचकदार तरल मानते हैं जो कि प्रत्येक पदार्थ में बिना किसी रुकावट के घुस सकता है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि ईथरीय तरङ्ग भी उसी भाँति बिना किसी रुकावट के प्रत्येक पदार्थ में घुस सकती हैं। जो पदार्थ इन तरङ्गों को हमारे नेत्रों से रोक देते हैं (जैसे: लोहा, लकड़ी, पत्थर, मोटा काग़ज़ इ.) उन्हें हम अपार-दर्शक कहते हैं; अन्य पदार्थों को जैसे, काँच, जल, वायु इ. अर्थात् जिनके मध्य से प्रकाशजनित लहरें सुविधा से हमारे नेत्रों तक आ जा सकती हैं पारदर्शक कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जिनमें से कुछ तो प्रकाश पार चला जाता है और कुछ रुक जाता है जैसे कुहरा, तेल, चिकना काग़ज़ व घिसा हुआ काँच इ. इनको हम पारभासक ( Translucent ) कहते हैं। परन्तु यह भेद अधिक स्पष्ट नहीं है क्योंकि यदि अपारदर्शक धातुओं का भी बारीक पत्रा लें व पारदर्शक पदार्थों की भी घनी मोटी तह लें तो दोनों अर्धस्वच्छ व पारभासक ही हो जाते हैं।

**प्रकाशमान** (Luminous) **पदार्थ और दृष्टि का कारण**-गतिकारक सिद्धान्त में यह बताया जा चुका है कि यदि किसी पदार्थ को गर्म करते हैं तो पदार्थों के अणुओं की गति बहुत बढ़ जाती है और उनके अरणवान्तरिक स्थान भी अधिक हो जाते हैं। जब कोई ठोस अत्यन्त गर्म किया जाता है तो उसके अणुओं की गति ईथर में भी तरङ्गों को पैदा कर देती है। ये लहरें प्रत्येक दिशा में बड़े वेग से जाती हैं और जब हमारे नेत्रों द्वारा अक्षिपट पर पड़ती हैं तो नसों द्वारा हमारे मस्तिष्क में तदनुसार वेदना होती है और पदार्थ प्रकाशमान प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार प्रकाशमान पदार्थ दीपक इ. स्वयं हमें दीखते हैं। परन्तु अदीप्त पदार्थ कैसे दृष्टिगोचर होते हैं ? दीप्तिमान पदार्थों से आकर प्रकाश अन्य पदार्थों पर पड़ता है और वहाँ से लौट कर उन पदार्थों को हमारे नेत्रों में प्रदर्शित करता है। प्रदीप्त पदार्थों द्वारा ही अन्य पदार्थ भी दृष्टिगोचर होते हैं। पहले लोग यह भी समझते थे कि दृष्टि का कारण प्रत्येक पदार्थ में से लहरों का निकलना है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि प्रकाश के बिना वस्तुएं दृष्टिगोचर नहीं होतीं।

**प्रकाश की गति**—जैसा तुम्हें आगे ज्ञात होगा प्रकाश का मार्ग ( गमन ) समांगी व एक जातीय पदार्थों में सदा सीधी ही रेखाओं में होता है। ऐसी सीधी रेखाओं को जिनके द्वारा व सहारे प्रकाश जाता है, प्रकाश की किरणें कहते हैं। यह प्रत्यक्ष ही है कि प्रदीप्त पदार्थ के प्रत्येक विन्दु से किरणें निकला करती हैं। कई किरणों के समूह को हम किरणावली ( Pencil of rays ) कहते हैं। जो किरणें एक विन्दु से चल कर आगे की ओर जाकर फैल जाती हैं उन्हें हम **अपसृत किरणावली** ( Divergent pencil of rays ) कहते हैं जैसे बाइस्कोप में। यदि किरण

प्रकाश के एक बड़े उद्गम से किसी एक विन्दु की ओर एकत्रित हो जाती हैं तो ऐसी किरणों के समूह को संसृत किरणावली (Convergent pencil) कहते हैं। यदि प्रकाश की किरणें परस्पर

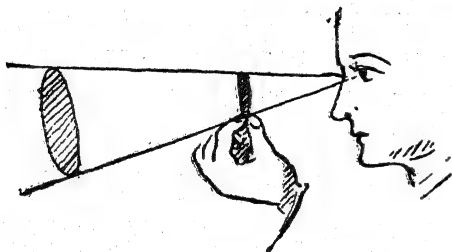



चित्र ५६—किरणावली।

समानान्तर जाती हैं तो ऐसे किरण समूह को **समानान्तर किरणावली** ( parallel pencil ) कह सकते हैं। यदि प्रकाश का उद्गम अत्यधिक दूरी पर हो तो हमारे नेत्रों तक किरणें लगभग समानान्तर ही आती हैं। इसी भाँति सूर्य तथा तारा गणों से आते हुए प्रकाश को समानान्तर किरणावली में आता हुआ मानते हैं।

प्रयोग ५५—**प्रकाश की सरल रेखात्मक गति** ( Rectilineal propagation of light ) :—यदि किसी कोठे में दरवाजे से अथवा छत के किसी छिद्र में से सौर प्रकाश आता हो तो देखोगे कि सूरज की रोशनी छिद्र के ठीक सामने ही पड़ती है। यद्यपि प्रकाश स्वयं अदृश्य है किन्तु अंधेरी कोठरी में प्रकाश का मार्ग धुएं व गर्द को उड़ा कर निश्चित किया जा सकता है। देखने से तुम्हें तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि प्रकाश का गमन सीधी रेखाओं में ही होता है।

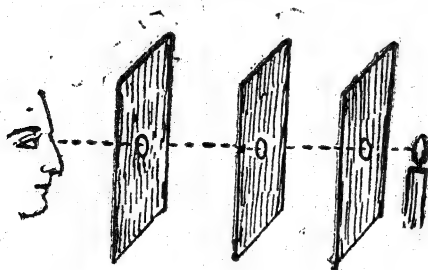
प्रयोग ५६—किसी बड़ी वस्तु को अपने सामने देखो और फिर एक ओर से एक पैसा अपने नेत्रों के सम्मुख लाओ। देखोगे कि दूर की वस्तु अदृष्ट हो जाती है। वस्तु उसी समय तक दृष्टिगोचर



चित्र ५७—प्रकाश की सरल रेखात्मक गति।

न होगी जब तक पैसा तुम्हारे नेत्रों और वस्तु के मध्य है। पैसे को एक ओर सरका लो, वस्तु तुरन्त दीखने लगेगी। यदि पैसे के विस्तार से वस्तु कहीं अधिक बड़ी है परन्तु क्योंकि दृष्टि पैसे के किनारे से ऊपर व नीचे को मुड़ कर नहीं जा सकती इसलिये कुल वस्तु अदृष्ट हो जाती है (चित्र ५७)।

प्रयोग ५७—तीन काग़ज़ के गत्ते लो और बराबर बराबर

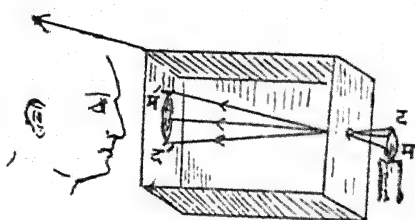


चित्र ५८—प्रकाश की सरल रेखात्मक गति।

उपरातली रख कर एक छोटा सा उनमें छिद्र कर लो और फिर

उन्हें अलग अलग करके एक ही सीध में खड़े कर लो। इन तीनों गत्तों की एक ओर दीपक व मोमबत्ती जला कर खड़ी कर दो। गत्तों की दूसरी ओर से दीपक को छिद्रों में से देखने का प्रयत्न करो। देखोगे कि दीपक उसी समय दृष्टिगोचर होता है जब तीनों सूराख़ और दीपक तुम्हारे नेत्रों के सम्मुख एक ही सीध में रहते हैं। यदि एक पर्दा भी हटा कर एक ओर सरका दो तो दीपक तुरन्त अदृष्य हो जायगा।

**प्रयोग ५८—सूचीछिद्र कैमेरा (Pinhole camera):** गत्ते का व काठ का चारों ओर से बन्द एक डब्बा लो और उसकी एक ओर का तख्ता बिलकुल निकाल लो और इसके सामने वाले तख्ते के बीच में सूराख़ कर दो। जिस ओर




चित्र ४६—सूची छिद्रकैमेरा।

से तख्ता बिलकुल हटा लिया है उधर एक चिकना काग़ज़ लगा दो। छिद्र के सम्मुख दीपक को रक्खो। दूसरी ओर देखने से तुम्हें विदित होगा कि चिकने पारभासक काग़ज़ पर दीपक का चित्र बन जाता है। यदि छिद्र के सम्मुख कोई चमकते हुए पदार्थ हों व प्राकृतिक दृष्य हों तो पारभासक काग़ज़पर इन सबों का बड़ा सुन्दर चित्र बन जाता है। परन्तु देखोगे कि प्रत्येक दशा में यह उलटा बनता है। इसका

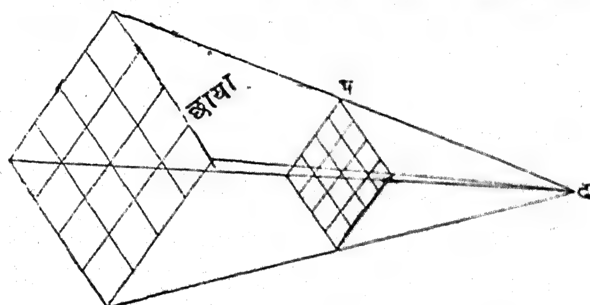
क्या कारण है ? यह प्रत्यक्ष है कि चित्र में 'द' का चित्र द' पर और 'म' भाग का चित्र म' पर बनता है। मोमबत्ती के द भाग से सूची छिद्र द्वारा किरणें सीधी द' तक जाती है और 'म' से सीधी म' तक जाती हैं। किरणों का मार्ग बाणों की दिशा से चित्र में दर्शाया गया है। दीपक से पारभासक पर्दे तक सब किरणें छिद्र द्वारा सीधी ही रेखाओं के अवलम्बित जाती हैं। इसी भाँति दीपक के प्रत्येक विन्दु से जो किरणें छिद्र द्वारा जाती हैं तो वे तदनुसार पर्दे पर चित्र बना देती हैं और क्रमानुसार चित्र उलटा बनता है। चित्र में देखोगे कि दीपक से छिद्र तक किरणावली संसृत ( Converge ) हो फिर अपसृत होकर पारभासक पर्दे पर पड़ती है।

इन सब प्रयोगों से सिद्ध होता है कि **प्रकाश की किरणें सदा सीधी रेखाओं में ही जाती हैं।** फलतः यदि किसी सूचीछिद्र द्वारा किसी प्रकाशमान पदार्थ की प्रतिमूर्त्ति बनती है तो वह सदा उलटी बना करती है। अब पारभापक पर्दे को यदि पिछले प्रयोग में और अधिक पीछे को हटा लो तो देखोगे कि चित्र का आकार अधिक हो जाता है। पर्दे को ज्यों ज्यों अधिक दूरी पर ले जाओगे त्यों त्यों प्रतिमूर्त्ति (image) बड़ी होती जाती है। भिन्न भिन्न दूरी पर पर्दे को ले जाकर दीपक की ऊँचाई और इसके चित्र की लम्बाई का परस्पर सम्बन्ध निकालो और प्रतिवार छिद्र से दीपक तथा चित्र की दूरी को नापो। परीक्षा से तुम्हें ज्ञात होगा कि आकारों का सम्बन्ध निम्न समीकरण द्वारा प्रकट हो सकता है :—

$$\frac{\text{पदार्थ का आकार}}{\text{चित्र व प्रतिमूर्ति का आकार}} = \frac{\text{छिद्र से दीपक की दूरी}}{\text{छिद्र से चित्र की दूरी}}$$

मूर्त्ति की आकृति जितनी ही बड़ी होगी उतनी ही प्रकाश की तीव्रता भी न्यून होगी।

यदि प्रकाश किसी अपारदर्शक पदार्थ पर पड़ता है तो किरणें पदार्थ के भीतर नहीं घुस सकतीं और इस लिये प्रकाश पदार्थ के पीछे नहीं पड़ता वरण अन्धकार होता है; इसी अन्धकार को पदार्थ की छाया कहते हैं। छाया का पड़ना भी प्रकाश के गमन की सरलरेखात्मक गति पर ही अवलम्बित है। किसी पदार्थ की छाया का आकार सदा प्रकाश के उद्गम के परिमाण पर निर्भर होता है। (१) यदि दीपक केवल एक बिन्दुमात्र होतो चित्रानुसार पदार्थ




चित्र ६०—विन्दु दीपक से छाया का परिमाण।

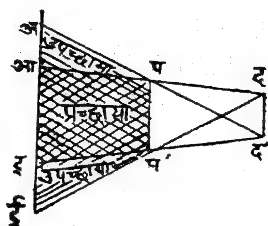
की छाया का परिमाण पदार्थ के परिमाण से अधिक होता है। ज्यों २ पर्दा पदार्थ से दूर हटता है त्यों २ छाया का परिमाण प्रत्येक दिशा में बढ़ता जाता है, किन्तु छाया की तीव्रता घट जाती है। यहां भी छाया का आकार अधोलिखित समीकरण द्वारा जान सकते हैं

$$\frac{\text{छाया की लम्बाई}}{\text{पदार्थ की लम्बाई}} = \frac{\text{दीपक से छाया की दूरी}}{\text{दीपक से पदार्थ की दूरी}}$$

प्रत्येक छाया का विस्तार दो दिशाओं में होता है (लम्बाई तथा चौड़ाई)। इसलिये प्रत्यक्ष है कि छाया का क्षेत्रफल दूरी के वर्ग के समानुपाती होगा अर्थात्

$$\frac{\text{छाया का क्षेत्रफल}}{\text{पदार्थ का प्रदीप्त क्षेत्रफल}} = \frac{(\text{दीपक से छाया की दूरी})^2}{(\text{दीपक से पदार्थ की दूरी})^2}$$

(२) यदि दीपक पदार्थ की अपेक्षा छोटा हो किन्तु बिन्दु रूप न हो (जैसा कि वास्तव में होता है) तो छाया चित्रानुसार पड़ती है। चित्र बनाते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि दीपक के प्रत्येक भाग से प्रत्येक दिशा में प्रकाश की किरणें सीधी सरल रेखाओं में को ही जाती हैं। चित्र में 'दद'' दीपक है और 'पप'' पदार्थ।

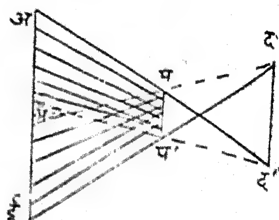



चित्र ६१—छोटे दीपक से छाया का स्वरूप।

'अई' पर्दे पर पदार्थ की छाया पड़ रही है। दीपक के 'द' भाग से पदार्थ की छाया 'आई' बनेगी और शेष स्थान प्रकाशित रहेगा। द' से 'पप'' की छाया 'अइ' बनेगी और अन्य स्थान प्रकाशित रहेगा। यहाँ देखने योग्य बात यह है कि पर्दे का 'इई' भाग दीपक के द' से पूर्णतया प्रकाशित रहेगा है और द से पूर्णतया अन्धकारमय। इसी भाँति पर्दे पर छाया का 'अआ' भाग द' से पूर्णतया अन्धकारमय और द से पूर्णतया प्रकाशित रहेगा। इस प्रकार छाया के 'आइ' भाग में दीपक से कोई भी किरण नहीं आती और 'अआ' तथा 'इई' भागों में दीपक के कुछ भाग से प्रकाश पड़ता है और कुछ से नहीं। छाया के 'आ इ' भाग को प्रच्छाया ( umbra ) कहते हैं। 'अआ' और 'इई' भागों को, जहाँ न पूर्ण प्रकाश ही है और न पूर्ण अन्धकार ही, उपच्छाया ( Penumbra)

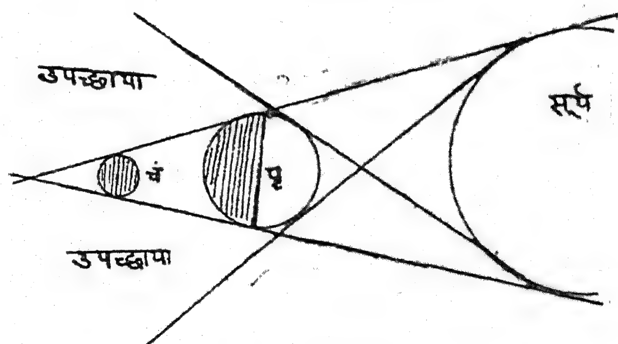
कहते हैं। चाहे पदार्थ की छाया कितनी ही दूरी पर क्यों न बने, किन्तु इस दशा में प्रच्छाया और उपच्छाया दोनों ही बनती हैं। ज्यों ज्यों पदार्थ से पर्दा दूर होता है त्यों त्यों प्रच्छाया और उपच्छाया दोनों ही बड़ी होती जायंगी।

(३) जब दीपक पदार्थ से बड़ा होता है तो चित्रानुसार प्रच्छाया पदार्थ से पीछे बहुत थोड़ी ही दूर तक बनती है, केवल उपच्छाया ही बढ़ती जाती है। चित्र में 'पप'' पदार्थ है इसकी प्रच्छाया केवल 'प्र' तक ही पड़ती है। पत्तों व दूर उड़ती चिड़ियाओं का पृथ्वी पर साया उपच्छाया रूप ही पड़ता है और स्पष्ट नहीं होता।



चित्र ६२—दीर्घाकार दीपक से छाया का स्वरूप।

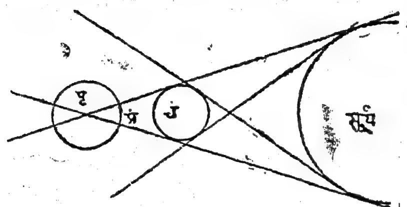
ग्रहणों का सिद्धान्त ( Eclipses )—छाया की बनावट से




चित्र ६३—चन्द्र ग्रहण।

तुम्हें प्रत्यक्ष हो जावेगा कि ग्रहण किस प्रकार पड़ते हैं। तुम

जानते ही हो कि सूर्य प्रकाशमान है और चन्द्रमा तथा पृथ्वी उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं; सूर्य और सब ग्रहों से बड़ा है। पृथ्वी और चन्द्रमा सूर्य से कहीं छोटे हैं। सूर्य स्थिर रहता है और पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है, इसी प्रकार चन्द्रमा

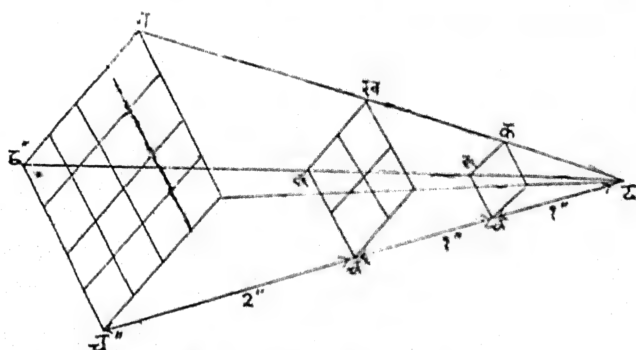



चित्र ६४—सूर्य ग्रहण

भी पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के मध्यस्थ आ जाती है तो चन्द्रमा पर सूर्य की ज्योति ( चित्र ६३ ) रुक जाती है। यदि चन्द्रमा प्रच्छाया में होता है तो पूर्ण चन्द्रग्रहण ( Lunar eclipse ) पड़ता है अन्यथा अपूर्ण। यदि पृथ्वी मध्यस्थ नहीं होती तो चन्द्रग्रहण के स्थान पूर्णिमा हुआ करती है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है तो सूर्य ग्रहण पड़ता है। सूर्यग्रहण अमावस्या व शुक्ल पक्ष की पड़वा ही को पड़ा करता है। ग्रहण उसी अवस्था में पड़ा करते हैं जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी सब समतल में होते हैं अन्यथा नहीं। ग्रहण भी इस सिद्धान्त को पुष्ट करता है कि प्रकाश सीधी ही रेखाओं में को जाता है।

**प्रदीप्ति की तीव्रता ( Law of inverse Squares )**—तुम यह जान ही चुके हो कि दीपक की सूचीछिद्र द्वारा प्रति

मूर्त्ति बनती है तो इसका विस्तार छिद्र से परदे की दूरी पर निर्भर होता है। ज्यों ज्यों मूर्त्ति का आकार बड़ा होता जाता है त्यों त्यों प्रकाश की तीव्रता भी न्यून होती जाती है। दीपक से पर्दे की दूरी के साथ साथ छाया का विस्तार भी दोनों परिमाणों में बढ़ता जाता है। चित्र में देखने से तुम्हें ज्ञात होगा कि इसी




चित्र ६५—उत्क्रमवर्ग नियम।

प्रकार यदि किसी दीपक के सम्मुख एक इंच की दूरी पर एक वर्ग इञ्च का कोई छिद्र हो तो इससे एक इंच पीछे पर्दे पर प्रकाश का परिमाण ४ वर्ग इञ्च होगा। चित्र ६५ में 'दचछ', 'दच' छ'', 'दच'' छ''' त्रिकोण सब परस्पर समान हैं।

$$\therefore \quad \frac{\text{च}'\,\text{द}}{\text{च द}} = \frac{\text{च}'\,\text{छ}'}{\text{च छ}} \text{ या } \frac{२}{१} = \frac{\text{च}'\text{छ}'}{१ \text{ इञ्च}}$$

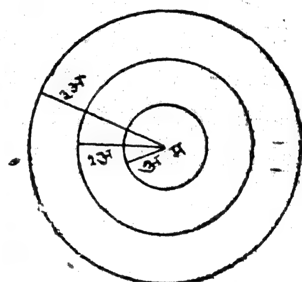
इस प्रकार यदि 'कच' का क्षेत्रफल एक वर्ग इकाई हो तो 'खच'' का क्षेत्रफल ४ वर्ग इकाई होगा। इसी भाँति यदि दच'' = ४'' हो तो दचछ और दच'' छ'' त्रिकोणों के परस्पर समान होने से

$$\frac{\text{दच}''}{\text{दच}} = \frac{\text{च}''\text{छ}''}{\text{चछ}} \text{ या } \frac{४}{१} = \frac{\text{च}''\,\text{छ}''}{१ \text{ इञ्च}}$$

अर्थात् ग च'' का क्षेत्रफल कच की अपेक्षा १६ गुणा होगा।

इस गणना से अभिप्राय यही है कि जो प्रकाश दीपक से एक इंच की दूरी पर एक वर्ग परिमाण पर पड़ रहा है वही दो इंच की दूरी पर ४ वर्ग परिमाण पर और ४ इंच की दूरी पर १६ वर्ग परिमाण पर पड़ेगा। इसलिये दो इंच की दूरी पर प्रकाश की तीव्रता एक इंच की दूरी की अपेक्षा केवल $\frac{१}{४}$ और ४ इंच की दूरी पर केवल $\frac{१}{१६}$ रह जावेगी।

मान लो 'म' एक दीपक है और इसकी प्रदीपन शक्ति श है। प्रकाश चारों ओर को विकिरण द्वारा निकलता है। यदि म के चारों ओर किसी गोलाकार का अर्धव्यास अ हो तो गोलाकार के तल का क्षेत्रफल $४\pi अ^२$ होगा और गोलाकार के प्रत्येक स्थान पर प्रकाश की तीव्रता $\frac{श}{४ \pi अ^२}$ होगी। इसीको प्रकाश की तीव्रता कहते हैं। म ही के चारों ओर यदि '२ अ' अर्द्धव्यास का अन्य गोलाकार हो तो इसके तल का क्षेत्रफल $४ \pi (२ अ)^२$ होगा और प्रकाश की तीव्रता केवल $\frac{श}{१६ \pi अ^२}$ रह जायगी। इसी भाँति यदि किसी अन्य गोलाकार का अर्द्धव्यास ३ अ हो तो गोलाकार के प्रत्येक स्थान पर प्रकाश की तीव्रता $\frac{श}{३६ \pi अ^२}$ होगी। इसलिये प्रत्यक्ष है कि **प्रकाश की तीव्रता पर्दे की दूरी के वर्ग के उत्क्रमानुपाती होती है।**



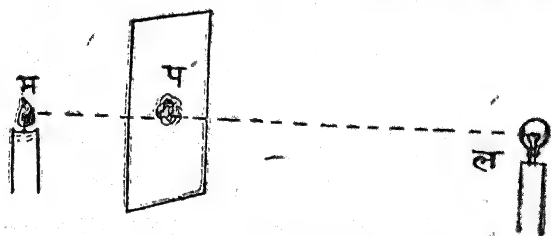
चित्र ६६—उत्क्रमवर्ग नियम का प्रमाण।

**दीप्तिमापन** ( Photometry )—इसी सिद्धान्त पर दीपकों की प्रदीपन शक्ति भी नापी जाती है। परन्तु प्रदीपन शक्ति जानने

के हेतु प्रकाश की तीव्रता का प्रमाण बनाना अतिआवश्यक है। वैज्ञानिकों ने एक मोमबत्ती को प्रमाण मान रक्खा है। और अन्य दीपकों की प्रदीपन शक्तियों की तुलना निर्णीत मोमबत्ती से ही करते हैं। उस मोमबत्ती को प्रमित कर रक्खा है कि जिसका व्यास $\frac{7}{8}$ इंच हो, एक पाउण्ड में ६ चढ़ें और ७$\frac{1}{2}$ माशे प्रति घंटे जले। उस अपकरण को, जिसके द्वारा प्रदीपन की शक्ति नापते हैं, **दीप्तिमापक** (Photometer) कहते हैं।

**दीपकों की तुलना उत्क्रमवर्ग नियम पर ही निर्भर है।**

प्रयोग ५९—**बुंसन सा. का स्निग्धास्पद दीप्तिमापक** (Grease-spot photometer): इसको पारभासक दीप्ति-मापक भी कहते हैं। इस उपकरण में एक मोटे कागज़ पर तेल की एक बूंद डालकर चिकना कर लेते हैं। इस पर्दे को दीपक और




चित्र ६७—दीपक का दीप्तिमापन।

अपने नेत्रों के बीच में करो तो मध्यस्थ स्निग्ध बिन्दु अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक प्रदीप्त दृष्टिगोचर होगा क्योंकि स्निग्ध कागज़ में से हमारी ओर दीपक का अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक प्रकाश छन कर आता है। इसके प्रतिकूल दीपक वाली ओर से कागज़ का पारभासक भाग अपेक्षाकृत अन्धकारमय प्रतीत होगा। यहाँ से

प्रकाश का अधिकांश भाग पार निकल जाता है और अन्य स्थान से परावर्त्तित हो जाता है। यदि काग़ज़ के दोनों भागों से प्रकाश नेत्रों तक एक ही मात्रा में आवे तो पारभासक भाग भी अन्य स्थानों के समान ही चमकेगा और देखने से किसी प्रकार का कोई अन्तर दृष्टिगोचर न होगा। चित्र में 'म' निर्णीत मोमबत्ती है, 'प' मध्य में पारभासक पर्दा और 'ल' इष्ट दीपक है। मोमबत्ती और दीपक को एक अन्धेरे कोठे में लगभग ५० सेंटी मीटर या इससे अधिक दूरी पर रख लो और पर्दे को बीच में इस प्रकार इधर उधर सरकाओ कि पर्दे को देखने से किसी ओर से भी पारभासक और अन्य भाग में अन्तर न प्रतीत हो। ऐसी दशा में पर्दा एक ओर दीपक से और दूसरी ओर मोमबत्ती से बिलकुल बराबर प्रदीप्त होता है।

$$\text{परन्तु} \quad \frac{\text{ल की प्रदीपन शक्ति}}{\text{म की प्रदीपन शक्ति}} = \frac{\text{प ल}^2}{\text{म प}^2}$$

यदि म की प्रदीपन शक्ति १ हो तो 'पल' और 'मप' को नापने से 'ल' की प्रदीपनशक्ति साधारण रीति से निकल सकती है। इस प्रकार किसी दीपक की प्रमाणित मोमबत्ती द्वारा प्रदीपनशक्ति निकाल सकते हैं। लालटैनों के विज्ञापनों में प्रायः उनकी प्रदीपन-शक्ति मोमबत्ती की परिभाषा में दी हुई होती है। तुम्हारी साधारण डीट्ज़ की लालटैनों की शक्ति ६ व १० मोमबत्ती होती है।

स्निग्धास्पद दीप्तिमापक के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी दीप्ति मापक होते हैं किन्तु तुम्हारे लिये यह ही पर्याप्त है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (१)।

( १ ) प्रकाश क्या वस्तु है ? क्या प्रकाश मनुष्य को दिखाई देता है ? अपने उत्तर को सदृष्टान्त लिखो। पारदर्शक तथा अपारदर्शक पदार्थों में क्या भिन्नता होती है ?

( २ ) सूचीछिद्र कैमरे का कार्य चित्र द्वारा समझाओ। चित्र कैसे बनता है और उलटा क्यों बनता है ?

( ३ ) सूचीछिद्र कैमरे में (क) छिद्र को बड़ा करने और (ख) एक के दो छिद कर देने से क्या प्रभाव पड़ेगा। ये सब बातें चित्र द्वारा समझाओ।

( ४ ) एक सूचीछिद्र कैमरे में सूचीछिद्र और पर्दे की मध्यस्थ दूरी ८ शतांशमीटर है। २० शतांशमीटर लम्बा एक तीर छिद्र से १६ शतांशमीटर की दूरी पर स्थित है तो पर्दे पर चित्र की ऊँचाई निकालो।

( ५ ) (क) धूप के दिन आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की छाया पृथ्वी पर क्यों नहीं दिखाई दिया करती ?

(६) सूर्य ग्रहण कैसे पड़ता है ? चित्र द्वारा प्रच्छाया और उपच्छाया को समझाओ और प्रत्येक का एक एक दृष्टान्त दो।

( ७ ) किसी दीप्तिमापक का वर्णन करो। ऐसे दो दीपकों के प्रकाश की तीव्रता की तुलना करो कि जिनमें से एक २ मोमबत्ती की शक्ति का दीपक किसी विशेष स्थान से १ फुट की दूरी पर हो और दूसरा ५ मोमबत्ती शक्ति का दीपक उसी स्थान से २ फ़ीट की दूरी पर स्थित हो।

( ८ ) दीपक की प्रदीपन शक्ति से तुम क्या समझते हो ?
बुंसन साहब के दीप्तिमापक में स्निग्धास्पद पर्दे की एक ओर २० इञ्च की दूरी पर ५ मोमबत्ती का एक लैम्प रक्खा है और दूसरी ओर ३३ इञ्च की दूरी पर ऐसा दीपक है जिससे स्निग्धास्पद दृष्टिगोचर नहीं होता तो इस दीपक की प्रदीपन शक्ति निकालो।

(९) दीपक की प्रदीपनशक्ति को कैसे नापते हो ? एक प्रमित मोमबती किसी १६ मोमबती के दीपक से २६० शतांशमीटर की दूरी पर है तो बताओ पर्दे को कहाँ रक्खोगे ताकि दोनों दीपकों से पर्दा बराबर २ प्रदीप्त हो ?

(१०) (क) प्रकाश की सरल रेखात्मक गति से क्या तात्पर्य है ? अपने उतर के समर्थन में किन्हीं दो प्रयोगों का वर्णन करो।

(ख) कोठे में बैठ कर भी पुस्तक पढ़ सकते हैं, यद्यपि सूर्य और पुस्तक के मध्य मकान आ जाता है। तो बताओ तुम्हारे नेत्रों तक प्रकाश किस प्रकार आता है ?

(११) (क) प्रकाश की तीव्रता किन किन बातों पर निर्भर है ?

(ख) प्रदीप्ति के उत्क्रमवर्ग नियम को चित्र से समझाओ।

(१२) कोई ६ फ़ीट का मनुष्य ९ फ़ीट ऊँचे लट्ठे पर लगे हुए लैम्प से ४ फीट की दुरी पर खड़ा है तो बताओ मनुष्य की छाया कितनी लम्बी होगी।

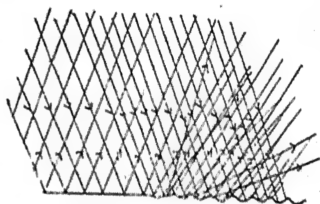
---

# दूसरा अध्याय।

## समतल दर्पणों पर प्रकाश परावर्त्तन।

प्रयोग ६०—पिछले अध्याय में तुम यह जान चुके हो कि सूर्य के प्रकाश द्वारा ही हम पदार्थों को देखते हैं यद्यपि प्रकाश स्वयं दृष्टिगोचर नहीं होता। इससे प्रकट है कि जब प्रकाश किसी पदार्थ पर पड़ता है तो वह सदा पदार्थों से लौटकर हमारे नेत्रों तक जाता

है। यह एक साधारण अनुभव की बात है कि चिकने पदार्थ तल प्राय: अधिक चमकदार होते हैं; यहाँ तक कि अधिक चिकने पदार्थ कभी कभी सौर प्रकाश से आँखों को चौंधिया तक देते हैं। इस भेद का क्या कारण हो सकता है? बात यह है कि प्रकाश भिन्न भिन्न पदार्थों पर पड़ कर एक ही रीति से नहीं लौटता। कांच के एक गिलास में पानी डाल कर धूप में रक्खो, देखोगे कि प्रकाश के परावर्त्तन ( Reflection ) से दीवार पर प्रतिबिम्ब पड़ता है। दर्पण के परावर्त्तन से सूर्य का तीव्र प्रतिबिम्ब किसने नहीं देखा? यदि शीशे को रेगमाल से रगड़ कर खुरदरा कर दो तो देखोगे कि वही तल अब पहिले की नाईं नहीं चमकता। इस प्रयोग से यह प्रत्यक्ष है कि पदार्थ का चमकना (Reflection) बहुत कुछ तल की बनावट पर निर्भर है। वास्तव में बात तो यह है कि चिकने तलों से प्रकाश का परावर्त्तन नियमों के अनुकूल होता है और खुरदरे तलों से प्रकाश का परावर्त्तन नियमानुकूल नहीं होता। इस बात को चित्र द्वारा भी दर्शा सकते हैं। समतल तथा चिकने पदार्थों से प्रकाश परावर्त्तित होकर समानान्तर किरणावली में लौटता है और जो स्थान चिकने नहीं होते, उनसे किरणें किसी नियम में नहीं लौटतीं किन्तु चित्रानुसार परावर्त्तन पश्चात् परस्पर एक दूसरे को काटती हुई टेढ़ी तिर्छी लौटती हैं। इस कारण पिछली दशा में अक्षिपट पर प्रकाश क्रम से नहीं पड़ता और तल धुंधला दीखता है।



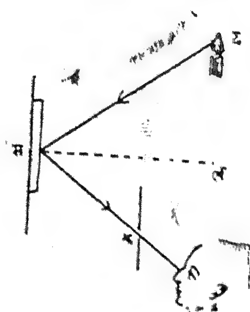

चित्र ६८—भिन्न भिन्न तलों से प्रकाश परावर्त्तन में भेद।

परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि जितना प्रकाश किसी तल पर पड़ता है वह कुल परावर्त्तित हो जाता है। पारदर्शक पदार्थों में कुछ प्रकाश पदार्थ के आरपार चला जाता है, कुछ का परावर्त्तन तथा अपशोषण हो जाता है। जो प्रकाश किसी तल पर पड़ कर बिना किसी क्रम के लौट कर फैल जाता है उसको प्रकाश का **व्यापन** ( Diffusion ) कहते हैं। सौर प्रकाश पदार्थों पर पड़ कर इन सब रीतियों में विभाजित हो जाता है।

अब तुम्हें मालूम हो जाना चाहिये कि कलईदार वर्त्तनों से धूप का प्रतिबिम्ब अन्य स्थानों पर पड़ता है और किताब के पत्रों से नहीं पड़ सकता। पन्ने से प्रकाश किसी नियम से नहीं लौटता बल्कि परावर्त्तित प्रकाश फैल जाता है और इसीसे इसका प्रतिविम्ब नहीं बनता। **जिन तलों से प्रकाश परावर्त्तित हो कर प्रतिबिम्ब बन जाता है** उन्हें दर्पण कहते हैं। दर्पण तीन प्रकार के होते हैं। (१) **समतल दर्पण** में परावर्त्तक तल एक समान होता है ऊँचा नीचा नहीं (२) **नतोदर दर्पण** में परावर्त्तक तल मध्य से नीचे को कटोरे की भाँति गहरा व गोलाकार हुआ करता है और (३) **उन्नतोदर दर्पण** में परावर्त्तक तल ऊपर को गेन्द की भाँति उठा रहता है। नतोदर दर्पण बहुधा शोभा के लिये मन्दिरों की गुम्बदों के भीतर व छत में लगे रहते हैं और पैरगाड़ी की घंटी उन्नतोदर दर्पण के समान होती है।

प्रयोग ६१—**समतल दर्पण** ( Plane mirrors ) **पर परावर्त्तन के नियम** : एक दर्पण को ले मेज पर एक काग़ज़ रख कर एक लकड़ी के सहारे खड़ा करो और इसके सम्मुख लम्ब खींच लो। एक मोमबत्ती 'द' ( चित्र ६९ ) को दर्पण 'स' के सम्मुख जला कर एक ओर रख लो। इतनी ही ऊँचाई पर एक

काग़ज़ के गत्ते में झिरीदार सूराख़ करके लम्ब 'सल' की दूसरी ओर दर्पण के सम्मुख खड़ा कर लो। दर्पण में दीपक के प्रतिरूप को झिरी के बीच में से देखो और गत्ते को ऐसा खड़ा करो कि प्रतिरूप, झिरी और 'स' एक ही रेखा में दिखाई दें। चित्र में एक झिरीदार पर्दा ऐसा समायोजित किया हुआ है कि दीपक का प्रतिबिम्ब 'झ स' की ओर दृष्टि गोचर होता है। प्रकाश का मार्ग वाणों के चिन्ह से दिखाया है।



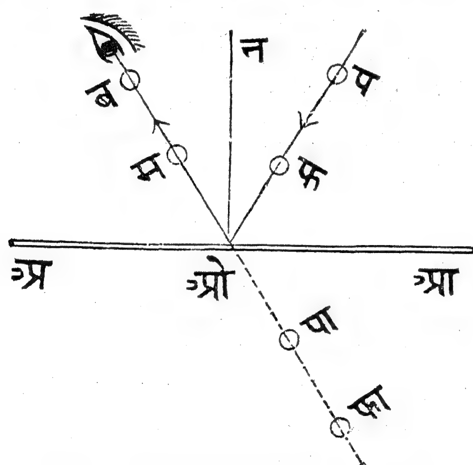
चित्र ६९—दर्पण पर परावर्त्तन।

रेखाओं के खींचने और 'दसल' तथा 'झसल' कोणों को नापने से पता चलेगा कि ये कोण परस्पर बराबर होते हैं। जो किरण दीपक से दर्पण तक जाती हैं उनको **आपतित किरण** (incident rays) कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि परावर्त्तन, दर्पण के पिछले पारे फिरे हुए तल से होता है। 'स झ' को **परावर्त्तित किरण** (Reflected rays) कहते हैं और 'द स ल', 'ल स झ' को क्रमशः **आपतित** और **परावर्त्तित** कोण कहते हैं। यदि इस प्रयोग को 'द' की परिस्थिति बदल कर फिर करो तो फिर भी यही देखोगे कि आपतन और परावर्त्तन के कोण परस्पर बराबर होते हैं। एक और बात यह है कि 'झ स', 'द स' और 'ल स' सब रेखायें एक ही तल में रहती हैं। इस प्रकार जब किसी समतल दर्पण से प्रकाश का परावर्त्तन होता है तो :—

(१) **परावर्त्तित** (Reflected) **कोण सदा आपतन** (Incidence) **के कोण के बराबर होता है।**

**(२) आपतित किरण लम्ब और परावर्त्तित किरणें सब आपतित विन्दु पर एक ही तल में होते हैं।**

**प्रयोग ६२—प्रकाश परावर्त्तन के नियमों का सत्यापन** ( Laws of reflection ): एक आलेख्य पट्ट परएक काग़ज़ का तख्ता पिनों द्वारा लगा लो। इस पर एक समतल दर्पण को खड़ा करो और दर्पण की सीमा 'अआ' पेंसिल द्वारा अङ्कित कर लो। दर्पण को कुछ आगे को सरका लो ताकि दर्पण का पिछला




चित्र ७०—परावर्तन के नियमों का सत्यापन।

तल 'अआ' रेखा पर ठीक बैठ जावे। दर्पण के सम्मुख दो पिन प, फ लगभग ८ व १० सेंटीमीटर की दूरी पर काग़ज़ में ऐसी लगा दो कि पिनों के मूल की 'पफ' रेखा दर्पण पर जाकर तिर्छी पड़े। इसी विन्दु से एक लम्ब 'ओन' खींच लो। लम्बके

दूसरी ओर दर्पण में 'प' और 'फ' पिनों के प्रतिरूपों को देखो। दर्पण में 'पफ' पिनों को भिन्न भिन्न स्थितियों से ऐसे देखो कि 'पफ' के प्रतिरूप (फा पा) एक ही रेखा में प्रतीत हों। इसी दिशा में काग़ज़ पर अन्य दो पिन 'ब,म' इस प्रकार खड़ी कर लो कि ये प्रतिरूपों को पूर्णतया ढक लें। दर्पण को हटा कर फिर 'पफ' और 'ब म' रेखाओं को खींच लो। यहाँ पर 'पफ' आपतित और 'बम" परावर्त्तित किरणें बन जाती हैं। नापने से 'प ओन' और 'न ओब' कोण बराबर होते हैं। 'पफ' और 'ओन' एक ही तल में होती हैं।

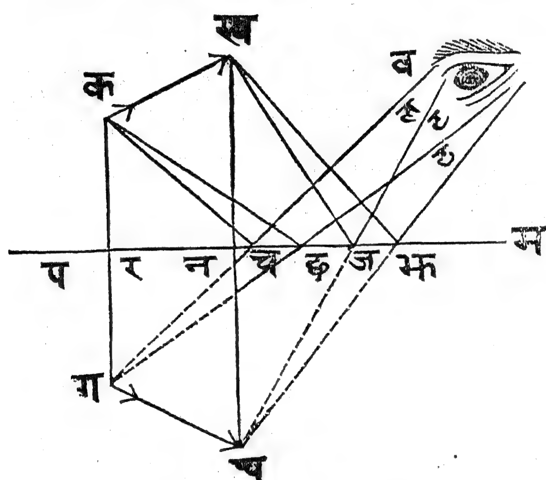
यदि इसी प्रयोग को पिनों को अन्य स्थिति में खड़ी करके दोहराओ तो देखोगे कि ये बातें सदा ठीक उतरती हैं। प्रकाश का परावर्त्तन सदा इन ही दो नियमों के अनुसार होता है। दर्पण में वस्तुतः प और फ के प्रतिरूप बनते नहीं हैं किन्तु दर्पण के पीछे स्थित दृष्टिगोचर ही होते हैं। बात यह है कि 'प' और 'फ' से किरणें चारों ओर को जाती हैं लेकिन जो 'पफ' दिशा में जाती है परावर्त्तन पश्चात् 'मब' की ओर लौटती हुई बाणों के चिन्हानुसार दृष्टिगोचर होती हैं।

यदि प्रयोग में दर्पण के लम्ब पर ही दो पिन खड़ी करो तो देखने से इनके प्रतिरूप दर्पण के पीछे 'नओ' रेखा ही पर प्रतीत होंगे और बाहर की पिनों को एक रेखा में देखने से इन्हीं के प्रतिरूप इनसे ढक जावेंगे। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि **जो किरणें समतल दर्पण पर लम्ब के अवलम्बित पड़ती हैं वे अपने ही पथ पर लौटती हैं।**

प्रकाश किसी भी तल से पूर्णतया परावर्त्तित नहीं होता। दर्पण से केवल ८० प्रतिशतक प्रकाश परावर्त्तित होता है। सादे

काँच से प्रकाश का केवल ४ प्रतिशतक और जल से केवल २ प्रतिशत परावर्त्तन होता है।

**प्रतिरूप** ( Image )—दर्पणों में प्रत्येक पदार्थ का प्रतिरूप बना हुआ दृष्टिगोचर हुआ करता है; परन्तु यह तुममें से किसी ने भी विचारने का प्रयत्न न किया होगा कि ये प्रतिरूप कैसे और कहाँ बनते हैं। निम्नाङ्कित चित्र में 'कख' एक पदार्थ 'पम' दर्पण के सम्मुख रक्खा हुआ है। मान लो कोई प्रकाश की



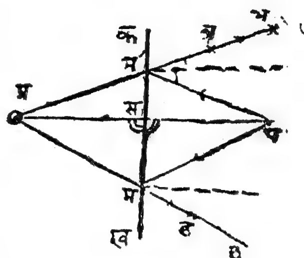

चित्र ७१—'कख' पदार्थ का प्रतिरूप।

किरणावली 'कचछ' दर्पण पर जाकर तिर्छी पड़ती है। परावर्त्तन के नियमानुसार ( चित्र ७१ ) 'कच' किरण 'चल' और 'कछ', किरण 'छठ' पथ पर परावर्त्तित होंगी। तदनुसार पदार्थ के 'क' भाग का 'ग' पर और ऐसे ही 'ख' भाग का 'घ' पर प्रतिरूप बनेगा।

इस प्रकार 'कख' का 'गघ' प्रतिरूप बनता है हुआ ज्ञात होता है। अतएव 'क' व 'ख' से अपसृत किरणावली परावर्त्तन पश्चात् 'ग,घ' से अपसृत होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, यद्यपि किरणें वास्तव में 'ग' व 'घ' तक नहीं जा सकतीं। जब किसी विन्दु से कोई अपसृत किरणावली परावर्त्तन पश्चात् किसी अन्य विन्दु से अपसृत होती हुई प्रतीत होती है तो दूसरी विन्दु को पहली विन्दु का **प्रतिरूप** (image) कहते हैं। यह प्रतिरूप केवल काल्पनिक (virtual) ही होता है क्योंकि वास्तव में प्रकाश की किरणें इस विन्दु तक नहीं पहुँचती और न ऐसा प्रतिरूप पर्दे पर ही लिया जा सकता है। इस भाँति किसी बिन्दु प्रतिरूप की स्थिति निर्णय करने के हेतु न्यूनातिन्यून दो किरणों का खींचना आवश्यक है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सूचीछिद्र कैमरे में ऐसा प्रतिरूप नहीं बनता किन्तु एक प्रकार का केवल छाया चित्र सा ही बनता है। इस प्रयोग में 'कख' को दर्पण में कहीं से भी देखें इसका प्रतिरूप सदा 'गघ' पर ही बनता दृष्टिगोचर होगा।

प्रयोग ६३—परावर्त्तन द्वारा **किसी विन्दु के प्रतिरूप की स्थिति निकालना:** आलेख्यपट्ट पर एक काग़ज़ को पिनों द्वारा जमा लो और इस पर एक दर्पण 'कख' खड़ा कर लो। पदार्थ के लिये दर्पण के सम्मुख एक पिन 'प' खड़ी कर लो और बराबर को हट कर इसके प्रतिरूप को देखो। दर्पण में जिस ओर को प्रतिरूप दृष्टिगोचर होता हो उसी दिशा में अन्य दो पिन 'ब,भ' लगा दो। इष्ट पिन को फिर किसी अन्य स्थान से दर्पण में देखो और पहिली भाँति अन्य दो पिन 'ट,ठ' और लगा दो। अब यह प्रत्यक्ष है कि 'प' का प्रतिरूप 'टठ' और 'बभ' की ही दिशा में है। इन दोनों किरणों को दर्पण के पिछली ओर बढ़ाकर प्रतिरूप की स्थिति 'प्र' निश्चय कर लो। 'पस' और 'प्रस'

को नापो। देखोगे कि ये रेखाएं परस्पर बराबर होती हैं। पसम और प्रसम कोण भी परस्पर बराबर ही मिलेंगे। इस प्रकार प्रयोग दो तीन बार दोहराओ इन सब से यही परिणाम निकलेगा कि समतल दर्पण में किसी भी विन्दु का प्रतिरूप उस लम्ब पर ही रहता है जो उस विन्दु से दर्पण तक खींचा जाता है और प्रतिरूप दर्पण के पीछे ठीक उतनी ही दूरी पर बनता है जितना दर्पण के आगे विन्दु होता है। इसी बात को सैद्धान्तिक रूप से भी साबित कर सकते हैं। किरणों के आपतन विन्दु 'म' और 'म'' पर दो लम्ब खींच लो।




चित्र ७२—प्रतिरूप की स्थिति।

चित्र के 'पम' म' और 'प्रम' म' त्रिभुजों में :—

∠प म' स = ∠भ म' क = ∠ प्र म' स

इसी प्रकार ∠प म स = ∠ठ म ख = ∠स म प्र और म म' भुजा उभय निष्ठ हैं।

∴ △ प म म' और △ प्र म' म परस्पर बराबर हैं।

∴ प म भुजा = प्र म भुजा

फिर 'प स म' और 'प्र स म' दो त्रिभुजों में।

भुजा प म = प्र म भुजा ( अभी साबित हुआ है )

और ∠ प म स = ∠ प्र म स

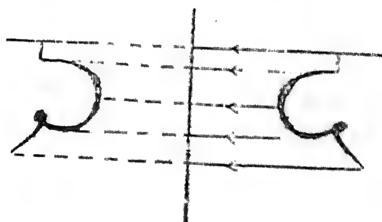
और स म भुजा उभयनिष्ठ है।

∴ दोनों त्रिभुज परस्पर हर तरह से बराबर है।

∴ ∠प स म = कोण प्र स म = एक समकोण

और प स = प्र स। इससिये सिद्ध होता है कि किसी पदार्थ का प्रतिरूप समतल दर्पण के पीछे ठीक उतनी ही दूरी पर बनता है जितना कि पदार्थ दर्पण के सम्मुख होता है। और प्रतिरूप उसी रेखा पर बनता दृष्टिगोचर होता है जो पदार्थ से दर्पण तक समकोण बनाती हुई खींची जाती है।

प्रयोग ६४—**बड़े पदार्थ का प्रतिरूप:** बड़े पदार्थों का प्रतिरूप निकालने के लिये पदार्थ पर कुछ बिन्दुएं लेकर उनके



चित्र ७३—प्रतिरूप का पार्श्विक उत्क्रमण।

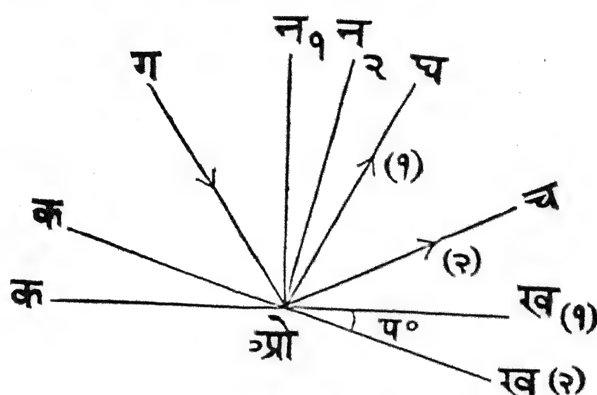
प्रतिरूप निकालने पर्याप्त होते हैं। एक समतल दर्पण के सम्मुख 'द' का अक्षर बना लो तो उपरोक्त नियमानुसार इसके कुछ बिन्दुएं लेकर दर्पण में उन बिन्दुओं के प्रतिरूप की स्थितियाँ निकाल कर (चित्र ७३) अक्षर का प्रतिरूप निकाल लो। देखने से विदित है कि 'द' का चित्रानुसार पार्श्विक उत्क्रमण (Lateral inversion) हो जाता है परन्तु आकार के परिमाण में कोई भेद नहीं हाता। यह सब को ज्ञात ही है कि हम समतल दर्पण के सम्मुख खड़े होते हैं तो हमें अपना दाहिना हाथ व अङ्ग अपने प्रतिरूप में बायाँ प्रतीत होता है। इस प्रकार पदार्थ के परावर्त्तन से जो प्रतिरूप में परिवर्त्तन होता

प्रतीत होता है उसे **पार्श्विक उत्क्रमण** कहते हैं। समतल दर्पण में प्रतिरूप सीधा, काल्पनिक, आकार में पदार्थ के बराबर बना करता है किन्तु उसका पार्श्विक उत्क्रमण हो जाता है। यदि काग़ज़ पर अपना नाम लिखकर हरफसोख्ते से तुरन्त सुखा लो तो लेख उलटा बनता है। इसको दर्पण के सम्मुख रक्खो तो तुम्हारा नाम फिर बिलकुल सीधा और ठीक हो जाता है।

**वास्तविक और काल्पनिक प्रतिरूप** (Real and virtual image)—यदि समतल दर्पण के सम्मुख एक मोमबत्ती रखते हो तो इसका प्रतिरूप दर्पण के दूसरी ओर बनता मालूम होता है। परन्तु दर्पण के पीछे पर्दा रखने से देखोगे कि प्रतिरूप पर्दे पर नहीं बनता। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि वास्तव में प्रतिरूप का अस्तित्व दर्पण के पीछे नहीं होता और न दर्पण के पीछे प्रकाश की किरणें ही जा सकती हैं। केवल किरणें प्रतिरूप से अपसृत होती हुई ही प्रतीत होती हैं। ऐसे प्रतिरूप को जो किसी पर्दे पर नहीं बन सकता **काल्पनिक** ( Virtual ) **प्रतिरूप** कहते हैं। इसके विपरीत जो प्रतिरूप पर्दे पर बनते हैं; जैसे सूची-छिद्र कैमरा में, उनको **वास्तविक** (Real) **प्रतिरूप** कहते हैं।

प्रयोग ६५–**समतल दर्पण का परिभ्रमण** (Rotation): एक काग़ज़ को आलेख्य पट्ट पर लगा कर इस पर एक समतल दर्पण 'कख$_1$' खड़ा करो। इसके सम्मुख दो पिन लगा कर पिछले ३ प्रयोगानुसार इनके प्रतिरूपों को एक ही दिशा में देख कर 'गओ' किरण की परावर्त्तित किरण 'ओघ' (१) निर्दिष्ट कर लो। आपतन बिन्दु पर एक लम्ब ओन$_1$ खींचो और फिर दर्पण को आपतन बिन्दु पर ही किसी कोण में घुमा दो। इस प्रकार दर्पण की नई स्थिति 'कख$_2$' हो गई और दर्पण का परिभ्रमण प° (चित्र ७४) के बराबर हो गया। परन्तु तुम्हें अब यह ज्ञात हो जायगा कि 'गओ'

किरण का परावर्त्तन अब ( १ ) दिशा में नहीं होता। पिनों द्वारा परावर्त्तन की दिशा को फिर निकालो ( ओच )। नापने से तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायगा कि प्रत्येक दशा में '∠घ ओच' प° से दो गुणा



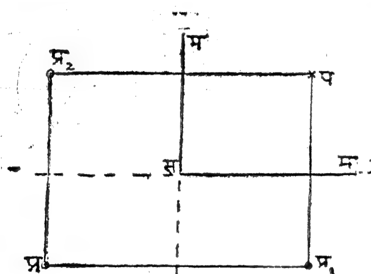

चित्र ७४—दर्पण का परिभ्रमण।

होता है। इससे यह सिद्ध है कि यदि किसी समतल दर्पण को घुमाते हैं तो परावर्त्तित किरण दर्पण के घुमाव के दुगने कोण के बराबर घूम जाती है।

**दो समतल दर्पणों द्वारा अपवर्त्य प्रतिरूप** ( Multipleimages )—यदि प्रकाश की कोई किरण एक दर्पण पर परावर्त्तित हो कर फिर दूसरे दर्पण पर पड़ती है तो इसका परावर्त्तन फिर हो जाता है। यदि किसी पदार्थ को एक दर्पण के सम्मुख रक्खो तो इसमें पदार्थ का प्रतिरूप बनता हुआ मालूम होगा। यदि दर्पण के सम्मुख एक और दर्पण रख दो तो इसमें प्रतिरूप का भी प्रतिरूप बन जाता है।

इस भाँति दो दर्पणों द्वारा असंख्य प्रतिरूप बन सकते हैं।

प्रयोग ६६—**समकोण पर झुके हुए दर्पण:** किसी आलेख्य पट्ट पर दो दर्पणों को समकोण बनाता हुआ ( 'स म' और 'स म′' ) खड़ा करो। इनके मध्य कोई पदार्थ 'प' रख दो। अवलोकन से अब तुम्हें प्रत्यक्ष होगा कि ३ प्रतिरूप दृष्टिगोचर होते हैं। यह तीन प्रतिरूप किस प्रकार बनते हैं ? पहले तो परावर्त्तन के नियमों के अनुसार 'प' का 'स म' दर्पण के पीछे $प्र_1$ एक

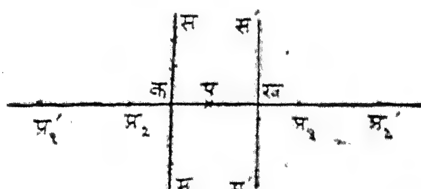



चित्र ७५—समकोण पर झुके हुए दर्पण।

प्रतिरूप बनता है। 'प' ही का दूसरे दर्पण में '$प्र_2$' एक अन्य प्रतिरूप बनता है। परन्तु '$प्र_1$' 'स म′' दर्पण के सम्मुख है, इसलिये इसका भी एक प्रतिरूप 'स म′' दर्पण में बनेगा। इसी प्रकार '$प्र_2$' भी 'स म' के सम्मुख है और इसका भी एक प्रतिरूप इस दर्पण में बनेगा। किन्तु ये दोनों प्रतिरूप परस्पर सन्निपतित हो जाते हैं अतेव एक नया प्रतिरूप 'प्र' की स्थिति पर दृष्टिगोचर होता है। इस भाँति समकोण पर झुके हुए दो दर्पणों में एक

पदार्थ के ३ प्रतिरूप बनते हैं। अन्तिम प्रतिरूप प्र दोनों दर्पणों के पीछे बनता है और इसका प्रतिरूप और नहीं बन सकता।

**दो समानान्तर खड़े हुए दर्पणों में प्रतिरूप**—यदि दो समानान्तर दर्पणों को खड़ा कर उनके मध्य कोई पदार्थ रख दो तो अनेक प्रतिरूप दृष्टिगोचर होने लगेंगे। चित्र में स'म' और 'सम' दो समतल दर्पण हैं। उनके मध्यस्थ प एक पदार्थ है। प से दोनों दर्पणों पर 'कपख' एक लम्ब खींच कर दर्पणों के दोनों ओर बढ़ा दो। प का 'सम' दर्पण में प्र₂ प्रतिरूप



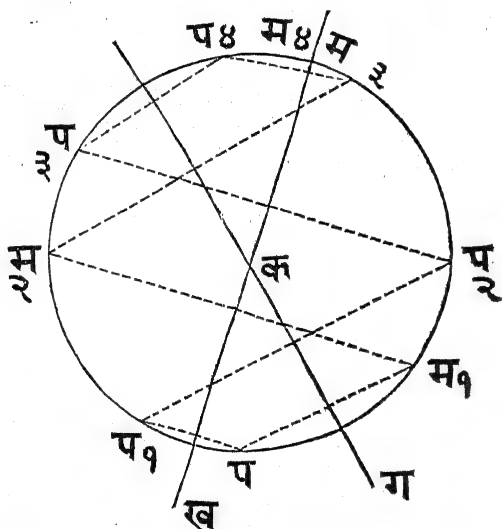

चित्र ७६—समानान्तर दर्पणों द्वारा प्रतिरूप।

बनता है। प्र₂ का 'स' म'' दर्पण के सम्मुख होने के कारण प्र'₂ फिर प्रतिरूप बन जावेगा, किन्तु यह भी 'सम' दर्पण के सम्मुख पड़ता है इस प्रकार प्रतिरूपों के भी प्रतिरूप अनन्त संख्या में बनते जावेंगे। इस प्रतिरूपावली के प्रतिरूप क्रमशः इस प्रकार व्क्तिगत रहेंगे कि प्रत्येक दर्पण में सन्निकटवर्त्ती प्रतिरूप सब से उज्वल व प्रकाशित रहेंगे और क्रमानुसार ज्यों ज्यों पिछले प्रतिरूपों को देखेंगे वे धुंधले प्रतीत होंगे यहाँ तक कि दूर के प्रतिरूप दिखलाई भी नहीं देंगे। प्रत्येक परावर्त्तन से प्रकाश कुछ नष्ट हो जाता है।

**किसी कोण पर झुके हुए दो दर्पण**—तुम देख चुके हो कि जब दो दर्पण समकोण पर झुके रहते हैं तो ३ प्रतिरूप

बनते हैं और जब वे समानान्तर रहते हैं तो उनमें असंख्य बनते हैं। अब यह देखना है कि यदि दो दर्पण किसी कोण पर झुके हुए हों तो उनमें प्रतिरूप किस भाँति दिखाई देंगे।

प्रयोग ६७—एक काग़ज़ को किसी आलेख्यपट्ट पर जमा कर एक वृत्त खींच लो। वृत्त पर अंशों के कुछ चिह्न लगाओ। वृत्त के केन्द्र पर 'कग' और 'कख' दो दर्पण कोई एक 'गकख' कोण बनाते हुये ( मान लो ४५° ) रख दो और कोई एक पदार्थ 'प' वृत्त

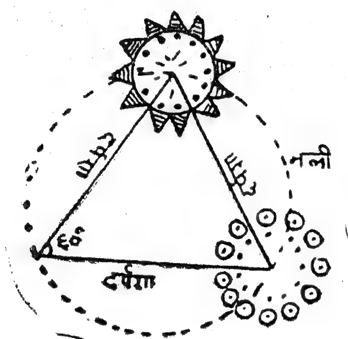



चित्र ७७—कोण पर मुड़े हुए दर्पणों में प्रतिरूप।

की परिधि पर खड़ा कर दो दर्पणों में देखने से प्रतीत होगा कि 'प' के कई प्रतिरूप बनते हैं। 'कग' दर्पण में 'प' का '$म_1$' प्रतिरूप बनता है परन्तु यह दूसरे दर्पण के सम्मुख होने के कारण दूसरा प्रतिरूप '$म_2$' बनाता है। चित्र में प्रत्यक्ष है कि यह चित्र भी 'कग' दर्पण के सम्मुख है। अतएव '$म_3$' प्रतिरूप बनता है और क्योंकि

यह भी 'कख' दर्पण के सम्मुख है इससे चौथा प्रतिरूप '$म_४$' भी बनेगा। परन्तु '$म_४$' दोनों दर्पणों के पीछे है इससे और कोई चित्र नहीं बन सकता। इसी प्रकार दूसरे दर्पण में परावर्त्तन से अन्य चार प्रतिरूप '$प_१$, $प_२$, $प_३$, और $प_४$, बन जाते हैं। पूरे चित्र में ८ प्रतिरूप बनाते हैं। ये प्रतिरूप की दोनों श्रेणियाँ परावर्त्तन के साधारण नियमानुसार बनती हैं। इनकी स्थितियों को जानने के लिये तुम्हें विदित ही है कि समतल दर्पण में पदार्थ का प्रतिरूप दर्पण के पीछे लम्ब पर ठीक उतनी ही दूरी पर बनता है जितना कि पदार्थ दर्पण के आगे रहता है। इसके अतिरिक्त चित्र में यदि '$कप_१$' और '$कप्र_१$' को मिला दो तो '$पप_१$' रेखा को 'कख' समकोण पर दो बराबर २ भागों में विभाजित करती है और 'कग' उभयनिष्ठ है इससे 'कप' रेखा '$कप्र_१$' के बराबर होती है। इसी प्रकार अन्य प्रतिरूप भी 'क' से इतनी ही दूरी पर स्थित रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि दो दर्पणों के मध्यस्थ पदार्थ के सब प्रतिरूप एक ऐसे वृत्त की परिधि पर पड़ते हैं कि जिसका केन्द्र 'क' ( अर्थात् दर्पणों के मिलने का स्थान ) होता है और अर्द्ध व्यास 'कप' हुआ करता है। अन्तिम प्रतिरूप सदा दर्पणों के पीछे ही स्थित होते हैं। उपरोक्त चित्र में ∠ 'गकग' लगभग ४५° है और देखते हैं कि ८ चित्र बनते हैं। भिन्न भिन्न कोण लेकर यह देख सकते हैं कि प्रतिरूपों की संख्या दर्पणों के मध्यस्थ कोण पर निर्भर रहती है और साधारणतया निम्न सूत्र से जानी जा सकती है। यदि दर्पणों का मध्यस्थ कोण 'क' हो तो प्रतिरूपों की संख्या $\left(\frac{३६०}{क^\circ} - १\right)$ होगी। यदि '$क^\circ$' ३६०° को पूरा २ भाग न दे सके, मान लो $\frac{३६०}{क^\circ} = ६\frac{३}{}$ हो तो प्रतिरूपों की संख्या ६ होगी।

**बहुरूपप्रदर्शक** ( Kaliedoscope )—कोण बनाते हुए दर्पणों के सिद्धान्त पर बहुरूपप्रदर्शक खिलौना भी बनाया जाता है। बहुरूपप्रदर्शक में साधारणतया तीन दर्पण परस्पर ६०° का कोण बनाते हुये एक नली में रक्खे जाते हैं। नली को एक ओर से अर्द्धस्वच्छ शीशे की वृत्ताकार प्लेट से बन्द कर देते हैं। शीशे के प्लेट और दर्पण के बीच में कुछ काँच के रंगीन टुकड़े डाल दिये जाते हैं। जब नली में दूसरी ओर से देखते हैं और बेलनाकार आवरण को घुमाते हैं तो दर्पणों के बीच में




चित्र ७७—बहुरूप प्रदर्शक।

शीशे के टुकड़े भी घूमते हैं और परावर्त्तन से समसङ्गतावयव बहुत सुन्दर सितारों की भाँति प्रतिबिम्ब और आकृतियाँ बनकर दृष्टिगोचर होने लगती हैं। इस में प्रत्येक रंगीन शीशे के पाँच २ प्रतिरूप और बन जाते हैं जिससे बड़े विचित्र और सुन्दर चित्र बनते प्रतीत होते हैं। इन सुन्दर फूलदार नमूनों को देखकर वस्त्रादि बुननेवाले अपनी दरियों इत्यादि के हेतु नये नये फूलों की योजना करते हैं।

**व्यापन** ( Diffusion )—जिन पदार्थों पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता उनके दृष्टिगोचर होने का कारण प्रकाश का व्यापन ही है। मान लो प्रकाश की कुछ किरणें एक समतल दर्पण पर पड़ रही हैं और कुछ अन्य पदार्थ पर। देखोगे कि जो किरणें दर्पण पर पड़ती हैं उनका प्रतिबिम्ब किसी विशेष स्थान पर पड़ता है, किन्तु जो प्रकाश अन्य पदार्थ पर पड़ता है उसका प्रतिबिम्ब किसी विशेष स्थान पर नहीं पड़ता और न किसी विशेष पदार्थ को भली भाँति प्रकाशित ही करता है। इस रीति से तल के चिकना न होने के कारण परावर्त्तित किरणें इधर उधर को फैल जाती हैं। इस प्रकार से प्रकाश के फैलने को प्रकाश का व्यापन कहते हैं।

प्रकृति में इस बात का बड़ा भारी उपयोग होता है। यही कारण है कि संसार के सारे पदार्थों पर यद्यपि सूर्य का सीधा प्रकाश नहीं पड़ता किन्तु भिन्न भिन्न पदार्थ फिर भी नेत्रों को प्रकाश के व्यापन से दृष्टिगोचर होते हैं। यदि सूर्य की किरणें किसी पूर्ण परावर्त्तक तल पर पड़ें तो परावर्त्तक तल नहीं दिखाई देगा बल्कि केवल सूर्य का प्रतिरूप ही दिखलाई देगा; यही कारण है कि धूप में दर्पण पर देखने से चौंध लगा करती है।

यदि सब स्थानों पर केवल परावर्त्तन ही होता और व्यापन न होता तो धूप में प्रत्येक पदार्थ को देखने से चौंध लगती और अन्य सब पदार्थ अदृष्य ही रहते। हमारे मकानों में प्रकाश रहने का एक बड़ा भारी कारण यह है कि वायुमण्डल में जो छोटे छोटे कण फैले रहते हैं उनसे प्रकाश सब स्थानों में व्याप जाता है सब जानते हैं कि प्रभात और सन्ध्या में सूर्योदय के पूर्व और सूर्यास्त पश्चात् क्रमशः वायुमण्डल कुछ कुछ प्रकाशित रहता है उसका भी यही कारण है। सूर्य से जो प्रकाश ऊपर को वायुमण्डल में

जाता है वही उषा और सन्ध्या काल में हलका प्रकाश सा जान पड़ा करता है। वायु यदि पूर्णतया स्वच्छ और पारदर्शक होता तो सन्ध्या के पश्चात् तुरन्त अन्धकार हो जाया करता।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( २ )।

( १ ) प्रकाश के परावर्त्तन और व्यापन में तुम क्या भेद समझते हो? परावर्त्तन के नियम क्या क्या हैं? समतल दर्पण पर परावर्त्तन के नियमों को दर्शाने के लिये किसी प्रयोग का वर्णन करो।

( २ ) कोई मनुष्य समतल दर्पण के ४ फीट आगे और ३ फ़ीट दाहिनी ओर खड़ा है। उस मनुष्य का प्रतिरूप देखने के लिये तुम्हें कहाँ खड़ा होना चाहिये। किन किरणों से उसको देखोगे चित्र से दिखाओ।

( ३ ) समतल दर्पण द्वारा किसी बिन्दु का प्रतिरूप निर्णय करने के लिये किसी प्रयोग का वर्णन करो। बिना प्रयोग किये यह स्थिति कैसे मालूम कर सकते हो?

( ४ ) दो समतल दर्पण ६०° के कोण पर परस्पर खड़े हैं। इनके बीच में नीचे रक्खे हुए काग़ज़ पर 'क' छपा है। चित्र द्वारा इसके प्रतिरूप की संख्या दिखाओ। यह भी दिखलाओ कि किन किन प्रतिरूपों में अक्षर का पार्श्विक उत्क्रमण रहेगा।

( ५ ) एक समतल दर्पण में तुम अपना स्वरूप देखते हो। यदि दर्पण को पीछे हटाते जायँ तो चित्र द्वारा साबित करो कि दर्पण की अपेक्षा प्रतिरूप दुगुनी दूरी में को पीछे हट जायगा।

( ६ ) कोई मनुष्य जिसके नेत्र भूमि से ५' की ऊंचाई पर हैं २·५' लम्बे शीशे को भूमि पर रख कर देखे तो कैसे दिखाओगे कि

उसे केवल अपने पांव ही दिखाई देंगे ? क्या वह दर्पण में अपना सारा प्रतिरूप भी देख सकता है ? यदि हाँ, तो कैसे ?

( ७ ) किसी कमरे की दीवार पर एक दर्पण लगा हुआ है। भले प्रकार खींचे हुए चित्र द्वारा यह दिखलाओ कि ज्यों ज्यों मनुष्य उसकी ओर को जायगा त्यों त्यों उसको अपने पीछे कमरे का अधिकाधिक भाग दिखाई देगा।

( ८ ) पार्श्विकउत्क्रमण से तुम क्या समझते हो ? यह कैसे दिखाओगे कि समतल दर्पण में पदार्थ का प्रतिरूप दर्पण के ठीक उतना ही पीछे बनता है जितना कि पदार्थ आगे होता है।

( ९ ) चित्र व ज्यामिति द्वारा यह दिखलाओ कि जब कोई दर्पण घूमता है तो प्रतिरूप दर्पण की अपेक्षा दुगने कोण में को घूमता है।

(१०) दो समतल दर्पण परस्पर समकोण बनाते हुए भूमि पर खड़े हैं। यदि किसी कील को उनके मध्य खड़ी कर दें तो चित्र द्वारा दिखलाओ कि इसके प्रतिरूप किस प्रकार बनेंगे। यदि दर्पणों को परस्पर समानान्तर कर दें तो क्या प्रभाव होगा ?

(११) बहुरूपप्रदर्शक बनाने के लिये तुम्हें किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी और किस प्रकार बनाओगे, अच्छी तरह समझाओ।

(१२) वास्तविक और काल्पनिक प्रतिरूपों से तुम क्या तात्पर्य समझते हो ? प्रत्येक का एक उदाहरण दो। यदि दो समानान्तर दर्पणों के मध्य किसी प्रज्वलित मोमबत्ती को रख दें तो समझाओ कि प्रतिरूप किस प्रकार बनेंगे।

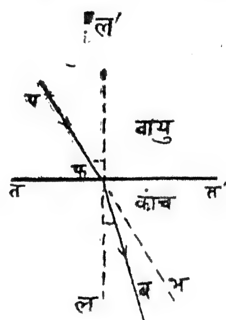
---

# तीसरा अध्याय ।

## पारदर्शक पदार्थों में जाते समय प्रकाश का वर्त्तन ।

यह तो तुम जानते ही हो कि जब प्रकाश की किरणें वायु-मण्डल में जाती हैं तो उनका गमन सरलरेखात्मक ही होता है; उसी प्रकार अन्य पारदर्शक पदार्थों में भी प्रकाश की किरणें सीधी ही रेखाओं में जाती हैं। परन्तु जब प्रकाश की किरणें एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में जाती हैं तो वे अपनी ही रेखा में नहीं चली जातीं किन्तु पदार्थों के पृथक्करणतल पर घुसते समय वे कुछ मुड़ जाती हैं और फिर सीधी रेखा में जाने लगती हैं।

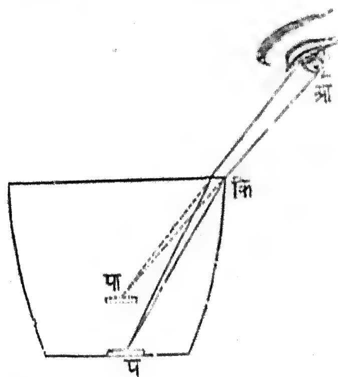
यदि 'तत' दो पदार्थों का पृथक्करण तल हो और 'पफ' कोई आपात किरण हो तो यह किरण दूसरे पारदर्शक पदार्थ में जाते समय आपात विन्दु पर मुड़ जाया करती है और किरण-रेखा की दिशा परिवर्त्तित हो जाती है। यदि एक पदार्थ वायु हो और दूसरा पदार्थ कांच; तो कांच में जाकर किरण का पथ 'फ व' हो जावेगा। चित्र में ∠'प फ ल' कोण 'ब फ ल' से बड़ा है किरण 'पफ' अपने पथ से 'भ फ ब' कोण से हट गई है। जब प्रकाश एक पदार्थ से दूसरे में जाते समय अपने पथ से विचलित हो जाता है तो इसी घटना को **प्रकाश का वर्त्तन** ( refraction ) कहते हैं। प फ को **आपात किरण** (incident ray) और फ ब किरण को




चित्र ७८—प्रकाश का वर्त्तन।

**वर्त्तित किरण** (refractadray) कहते हैं। इसी प्रकार ∠पफल' को आपात कोण और ∠ब फ ल को वर्त्तित कोण ( angle of refraction ) कहते हैं। आपात और वर्त्तित कोण के अन्तर को ( ∠भ फ व ) **विचलित कोण** (angle of deviation) कहते हैं।

प्रयोग ६८—एक गहरा कटोरा व नान्द लो। और इसमें एक पैसा रख कर ऐसे हट जाओ कि पैसा कटोरे के किनारों से ठीक ठीक ढक जाय और दृष्टिगोचर न हो। अब धीरे धीरे कटोरे में जल डालो किन्तु अपने नेत्रों को पहले ही स्थान पर करे रक्खो। जल डालते डालते तुम्हें पैसा दिखाई देने लगेगा यहाँ तक कि शीघ्र ही पैसा सारा दृष्टिगोचर हो जावेगा। ज्यों ज्यों

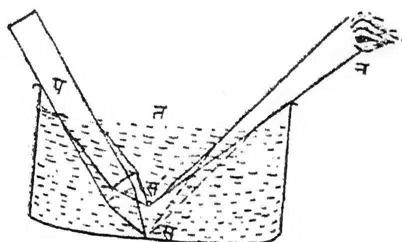



चित्र ७६—वर्त्तित किरणों का विचलन।

पानी डाला जाता है त्यों त्यों पैसा उठता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रयोग से यही अभिप्राय निकल सकता है कि पैसे से प्रकाश की जो ( पकि ) किरणें पहिले नेत्रों तक नहीं जाती थीं वे अब चित्रानुसार वर्त्तन के कारण जल में से निकल कर

किनारे के ऊपर से हमारे नेत्रों तक पहुँच जाती हैं। कटोरे में जल डालने के पूर्व नेत्र 'आ पा' से ऊपर वाले ही भाग को देख सकते थे परन्तु जल डालने के पश्चात् प भी ('पा' पर) दृष्टिगोचर होने लगता है। इससे प्रतीत होता है कि वर्त्तन से ( Refraction ) घने पदार्थ में वायु की अपेक्षा वस्तुएं सन्निकट प्रतीत होने लगती हैं।

प्रयोग ६९—एक नान्द में पेंसिल तिर्छी डालो। इसको एक ओर से देखो। देखोगे कि यह मुड़ी हुई प्रतीत होती है। पेंसिल के मुड़ी हुई दिखाई देने का क्या कारण है? इसका कारण यही है कि जल के नीचे के भाग से आती हुई किरणें जल से बाहर निकलते




चित्र ८०—वर्तित किरणों का विचलन।

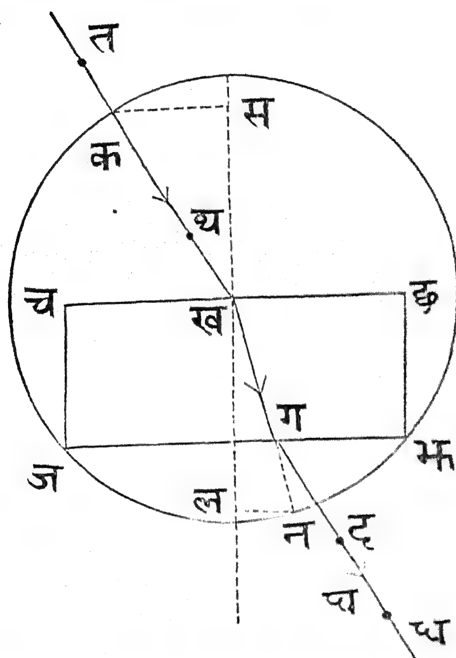
समय वर्त्तित हो जाती हैं और इससे जल से नीचे का भाग ऊपर को उठा हुआ प्रतीत होता है। चित्र में 'प स' एक पेंसिल आधी जल के ऊपर है आधी जल के भीतर। 'स' से बाहर निकलती हुई किरणें 'न' की ओर मुड़ जाती हैं और परिणाम यह होता है कि स भाग 'स'' पर उठा हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार जल तल के नीचे के भाग से जो भी विन्दु दृष्टिगोचर होते हैं वे सब ऊपर को उठे हुए प्रतीत होते हैं।

प्रयोग ७०—एक रूलदार कागज़ पर कांच का एक आयताकार गुटका रेखाओं पर तिर्छा रक्खो। ऊपर से रेखाओं को देखने से तुम्हें रेखाएं तिर्छी प्रतीत होने लगेंगी। इसका क्या कारण है? तुम्हें निरीक्षण से पता चलेगा कि आयत में जाते समय रेखाएं मुड़ती हुई प्रतीत होने लगती हैं और निकलने पर फिर वे अपनी पुरानी दिशा में जाने लगती हैं और सीधी हो जाती हैं। परन्तु रेखाओं का पथ परस्पर समानान्तर ही रहता है।

भिन्न भिन्न पारदर्शक पदार्थों में भिन्न भिन्न विधियों से वर्त्तन हुआ करता है। यदि आपात किरण किसी विरल पदार्थ में से घने पदार्थ में को जाती हैं तो किरण जाते समय आपात विन्दु पर सदा लम्ब की ओर मुड़ जाया करती हैं। इसी प्रकार जब प्रकाश की किरणें घने पदार्थ से हलके पदार्थ में जाती हैं तो वे लम्ब से परे को मुड़ जाती हैं। यही कारण है कि जब प्रकाशकी किरण वायु में कांच से जाती है तो आपात कोण वर्त्तित कोण से सदा बड़ा होता है। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में जाते समय प्रकाश का वर्त्तन उसी समय होता है, जब कि आपात किरणें तिर्छी पड़ती हों। यदि आपात किरणें दूसरे पारदर्शक पदार्थ पर समकोण बनाती हुई पड़े तो किरणों का वर्त्तन नहीं होता किन्तु वे दूसरे पदार्थ में भी समकोण बनाती हुई जाती हैं, क्योंकि इस दशा में आपात कोण ०° का होता है और किरण अपने ही पथ पर चली जाती हैं।

प्रयोग ७१—**वर्त्तन के नियम** (Laws of refraction): आलेख्य पट्ट पर एक कागज़ लगाकर उस पर कांच का एक गुटका रक्खो। आयत की सीमा पेंसिल द्वारा खींच लो (चित्र ८१)

और आयत की एक ओर दो पिन 'त थ' लगभग ८ शतांशमीटर की दूरी पर कागज़ में ऐसी खड़ी कर लो कि 'त थ' रेखा गुटके पर तिर्छी पड़े। फिर आयताकार गुटके की दूसरी ओर से इन




चित्र ८१—वर्त्तन के नियम और वर्त्तनाङ्क निर्णय।

दोनों पिनों को ऐसे देखो कि ये पिन एक ही रेखा में प्रतीत हों। इस दिशा की रेखा निश्चित करने के हेतु 'द ध' दूसरी दो पिन दूसरी ओर लगा दो। कागज़ के तल पर गुटके की दोनों ओर देखने से तुम्हें चारों पिन एक ही रेखा में प्रतीत होंगी। लम्ब तथा आपात और निर्गम किरणें भी एक ही तल में होंगी। पिनों के

चिह्नों को पेंसिल से मिला देने पर देखोगे कि 'त थ' गत किरणों का वर्त्तन 'खग' और निर्गम 'दध' दिशा में को होगा। आपात विन्दु पर एक लम्ब 'खस' खींच लो। नापने से प्रतीत होगा कि वायु की अपेक्षा कांच के घना होने के कारण आपात ∠'कखस' वर्त्तित ∠लखग से बड़ा होता है। इसी प्रकार वर्त्तित किरण खग, जब तल पर आपात किरण हो जाती है और वायु में इसका वर्त्तन 'ग ध' दिशा में होता है। 'ग' पर लम्ब खींचने और इस लम्ब तथा गध के मध्यस्थ कोण को नापने से ज्ञात होगा कि आपात कोण और निर्गम कोण बराबर होते हैं अर्थात् गुटके पर आपात और निर्गम किरण सदा समानान्तर होती हैं। जितना मोटा आयत होता है उतनी ही अधिक निर्गम किरण की स्थानापत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त आपात कोण जितना बड़ा होता है उतनी ही अधिक निर्गम किरणें अपने स्थान से हट जाती हैं।

**वर्त्तनाङ्क संख्या** ( Refractive Index )—उपरोक्त चित्र में आपात विन्दु ख केन्द्र से कोई अर्द्धव्यास लेकर आपात और वर्त्तित किरणों को 'क' और 'न' पर काटते हुए वृत्त खींचो। क और न से 'सल' पर दो लम्ब 'कस' और 'नल' खींच कर इनका अनुपात निकालो। इस अनुपात $\left(\frac{\text{क स}}{\text{न ल}}\right)$ वर्त्तनाङ्क कहते हैं। जब किसी वायु और किसी पदार्थ का वर्त्तनाङ्क १ से बड़ा होता है तो आशय यह है कि आपात किरण दूसरे पदार्थ में जाकर उतनी ही अधिक मुड़ जाती है। किसी दो विशेष पारदर्शक पदार्थों के हेतु वर्त्तनाङ्क भी सदा स्थायी ही रहता है। इन प्रयोगों से वर्त्तन के निम्न नियम ( Laws of refraction ) निश्चित होते हैं :—

(१) आपात और वर्त्तित किरणें आपात विन्दु पर लम्ब के परस्पर अभिमुख रहती हैं और घने पदार्थ में किरण और लम्ब के मध्य का कोण विरल पदार्थ की अपेक्षा न्यून रहता है।

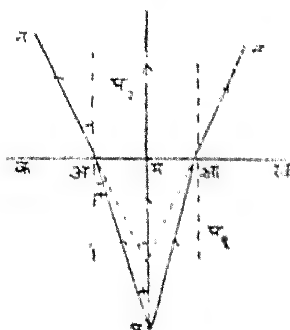
(२) आपात किरण, वर्त्तित किरण और लम्ब सदा समतल रहते हैं।

(३) एक ही प्रकार के प्रकाश के लिये एक ही दो पदार्थों का वर्त्तनाङ्क सदा एक ही रहता है।

प्रयोग ७२—**पारदर्शक ठोस समचतुरस्र का वर्त्तनाङ्क:** एक कागज़ को फैला कर उस पर कांच का एक ( लगभग १० × ८ × १ श. मी वाला ) समचतुरस्र रक्खो। इसकी सीमाबद्ध रेखा 'च छ ज झ' खींच लो ( चित्र ८१ )। ७१वें प्रयोग की भाँति पिनों द्वारा आपात और वर्त्तित खींच एक वृत्त इन किरणों को 'क' और 'न' पर काटता हुआ खींच लो। फिर आपात बिन्दु पर 'सल' लम्ब खींच कर इस पर 'क' और 'न' से 'कस' और 'नल' लम्ब खींच कर नाप लो। $\frac{\text{कस}}{\text{नल}}$ ही इष्ट पदार्थ का **वर्त्तनाङ्क** ( Refractive index ) होगा। इसी प्रकार समचतुरस्र को फिर रक्खो और पिनों की स्थिति बदल कर वर्त्तनाङ्क फिर निश्चय कर लो, देखोगे कि एक ही पदार्थ के लिये यह संख्या स्थायी रहती है। इस संख्या को $\mu$ से भी चिन्हित करते हैं। इसी प्रकार जल इ. द्रव का वर्त्तनाङ्क निकालने के लिये ऊपर से खुली हुई काँच की चतुष्कोण प्याली का भी प्रयोग कर सकते हैं। प्याली में जल इ. डाल कर उपरोक्त विधि से वर्त्तनाङ्क निश्चय कर सकते हैं।

**वर्त्तन द्वारा प्रतिरूप** ( Image by refraction) अभी तक केवल व्यक्तिगत किरणों के ही वर्त्तन का विचार कर रहे थे। वर्त्तन से प्रतिरूप की स्थिति के निर्णय हेतु यह आवश्यक है कि हम

किरणावली का विचार करें। मान लो $प_1$ और $प_2$ कोई दो पारदर्शक पदार्थ हैं (चित्र ८२)। $प_1$ मध्यस्थ $प_2$ की अपेक्षा अधिक घना है। $प_1$ मध्यस्थ में कोई प्रकाशमान मूलबिन्दु प हो तो यह निश्चय है कि इससे प्रकाश चारों ओर को फैलेगा। जो किरणें क ख पृथक्करण तल से वर्त्तित होंगी वे दूसरे मध्यस्थ में अपने पुराने पथ से विचलित हो जायंगी और आपात बिन्दु पर लम्ब से कुछ परे हो जावेंगी। चित्र में 'प आ' किरण का वर्त्तन 'आत' की




चित्र ८२—वर्त्तन द्वारा प्रतिरूप।

ओर हो जायगा और 'प अ' किरण 'अ न' पथ पर जावेगी। यदि 'न' और 'त' स्थितियों पर नेत्र लगा कर प पदार्थ को देखा जावे तो वह त आ और 'न अ' की दिशा में दृष्टिगोचर होगा अर्थात् 'प' का प्रतिरूप 'प्र' पर बना हुआ दृष्टिगोचर होगा। यदि '$प_1$' से $प_2$ को प्रकाश जाते समय वर्त्तनाङ्क $\mu$ हो तो प्रकाश '$प_2$' से '$प_1$' मध्यस्थ में जाते समय वर्त्तनाङ्क $\frac{1}{\mu}$ हो जायगा। 'प' से पृथक्करण तलपर 'प म' एक लम्ब खींच दो। अब प्रत्यक्ष है कि ∠अ प म आपात कोण के बराबर होता है और ∠ अ प्र म वर्त्तित कोण के बराबर होता है।

$$\text{तदनुसार :}\quad \mu = \frac{\text{त्रिज्या अ प म}}{\text{त्रिज्या अ प्र म}} = \frac{\dfrac{\text{अ म}}{\text{प अ}}}{\dfrac{\text{म अ}}{\text{प्र अ}}} = \frac{\text{प्र अ}}{\text{प अ}}$$

परन्तु यदि किरणावली छोटी हो अथवा अ प्र म और अ प म कोण छोटे हों तो 'प्र अ' और 'प अ' क्रमशः 'प्र म' और 'प म' के बराबर से ही होंगे। इसलिये ऐसा मानने में किसी विशेष अशुद्धि की सम्भावना नहीं है।

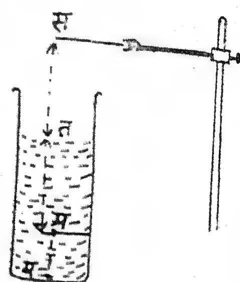
इस भाँति वर्त्तनाङ्क $\mu = \dfrac{\text{प्र म}}{\text{प म}}$ हो जायगा।

और $\dfrac{1}{\mu} = \dfrac{\text{प म}}{\text{प्र म}}$ (प$_2$ से प्रकाश प$_1$ में जाते समय वर्त्तनाङ्क )

अर्थात् जब प्रकाश विरल पदार्थ ( मध्यस्थ ) से घने पदार्थ में जाता है तो वर्त्तनाङ्क निकालने के लिये घने मध्यस्थ में रक्खे हुए पदार्थ की पृथक्करण तल से वास्तविक दूरी जान लेनी चाहिये और इसको यदि पृथक्करण तल से प्रतिरूप तक की दूरी से विभाजित कर दें तो वर्त्तनाङ्क निकल आता है। इसी सिद्धान्त पर पारदर्शक द्रवों का वर्त्तनाङ्क निर्णय करते हैं।

प्रयोग ७३—**प्रतिरूप की गहराई से जल का वर्त्तनाङ्क** ( Refractive index of water ):कांच का एक गिलास जल से तीन चौथाई भर लो और बीचो बीच उसमें कोई छोटा सा भारी अपारदर्शक पदार्थ डाल दो ( जैसे धातु का छोटा टुकड़ा )। गिलास के ऊपर जलतल के समानान्तर एक सुई एक कीलक उपस्तम्भ में इस प्रकार लगा दो कि क्षितिज धरातल में लगी हुई सुई ( चित्रानुसार ) ऊपर नीचे को सरकाई जा सके।

सूई के ऊपर से जल के अन्दर डूबे हुये पदार्थ और सूई की परछाईं ( प्रतिरूप ) जल में देखो। सूई का प्रतिरूप परावर्त्तन द्वारा दिखाई देगा और डूबा हुआ छोटा पदार्थ वर्तित किरणों द्वारा दिखाई देगा। सूई का प्रतिरूप जल के ऊपर वाले तल से ठीक दर्पण की नाईं बनता है और जल तल से ठीक उतना ही नीचे होगा जितनी कि सुई जल तल से ऊपर होगी। अपने नेत्रों को दाहिने बाएं घुमाओ।



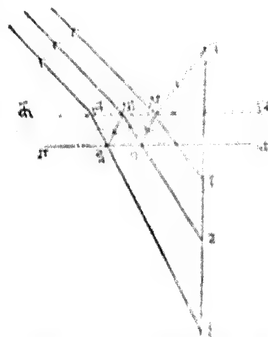

चित्र ८३—जल का वर्त्तनाङ्क निर्णय।

देखोगे कि कभी तो सूई का प्रतिरूप अन्दर वाले पदार्थ से बाईं ओर और कभी दाहिनी ओर स्थित प्रतीत होता है। सूई का ऊपर व नीचे को सरका कर एक ऐसी स्थिति निकाल लो कि पदार्थ 'प' और सूई के प्रतिरूप 'प्र' एक ही स्थान पर स्थित ज्ञात हों अर्थात् वे नेत्रों को इधर उधर करने पर भी परस्पर एक दूसरे को ढके हुये दृष्टिगोचर हों। जब सूई का प्रतिरूप पदार्थ पर ढका हुआ प्रतीत होता है तो इसका आशय यही होता है कि पदार्थ का वर्त्तन से प्रतिरूप उसी स्थान पर बनता है जिस स्थान पर सूई का परावर्त्तन से प्रतिरूप। तल 'त' से सूई 'स' तक की ऊँचाई लो। यदि 'प्र' पर सूई का प्रतिरूप बने तो निश्चय 'त प्र' = 'तस'। परन्तु क्योंकि 'प' भी 'प्र' ही स्थान पर प्रतीत होता है तो यह आवश्यक है कि 'प' का वर्त्तित प्रतिरूप भी 'प्र' पर ही बनता है। जल की गहराई अर्थात् 'प स — त स' ( अर्थात् 'त प') भी नाप लो। तो वायु से जल में जाते समय प्रकाश का वर्त्तनाङ्क

$\mu = \frac{\text{प त}}{\text{प्र त}}$ अथवा $\frac{\text{प त}}{\text{स त}}$ होगा।

इसी प्रकार अन्य द्रवों का भी वर्त्तनाङ्क जाना जा सकता है।

वर्त्तन के कारण प्राय: समतल दर्पणों के परावर्त्तन में भी भ्रम हो जाया करता है; सम्भव है कि परावर्त्तन के प्रयोगों में तुममें से बहुतों ने इस बात पर ध्यान दिया होगा। जब कभी समतल दर्पण के सम्मुख कोई दीपक रखते हो तो साधारण नियम के विरुद्ध तुम्हें कई प्रतिरूप दृष्टिगोचर होते हैं और सम्भवत: द्वितीय प्रतिरूप ही सब से स्पष्ट होता है। इतने प्रतिरूप क्यों बनते हैं और इस स्पष्टता का क्या कारण है? वास्तव में बात यह है कि साधारण दर्पणों में दो परावर्त्तक तल हुआ करते हैं एक तो वायु से कांच का सम्मुख वाला पृथक्करण तल परावर्त्तक होता है और दूसरा पिछला वास्तविक परावर्त्तक तल होता है जिस पर पारा फिरा रहता है। इस प्रकार परावर्त्तन के नियमानुसार किसी पदार्थ 'प' के वास्तव में परावर्त्तन द्वारा दो प्रतिरूप, एक तो पृथक्करण तल पर और दूसरा वास्तविक परावर्त्तक तल पर, बनते हैं। इन दोनों में पिछला सब से स्पष्ट होता है। मान लो चित्र में 'प अ' पथ पर कोई किरणावली प से जाती है। 'क ख' पृथक्करण तल है इस पृष्ठ से प्रकाश का कुछ परावर्त्तन नियमानुकूल अवश्य होगा और तदनुसार 'प' का प्रतिरूप (१) 'क ख' के पीछे ठीक उतनी ही दूर पर बनेगा जितना 'क ख' से 'प' आगे है। परन्तु आपात प्रकाश का पूर्णतया परावर्त्तन नहीं होता, कुछ भाग का वर्त्तन भी हो जाता है और यह भाग 'अ ब' पथ पर वर्त्तित होकर पिछले पूर्ण परावर्त्तक तल

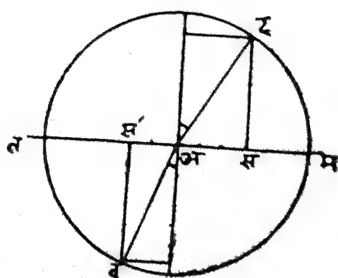


चित्र ८४—समतल दर्पण में परावर्त्तन द्वारा प्रतिरूप।

'गध' पर 'व आ' की ओर पूर्ण परावर्त्तित हो जाता है अतएव प्रतिरूप सबों से स्पष्ट (२) दिखाई देता है। परन्तु पुनः 'व आ' पर आता हुआ प्रकाश पृथक्करण तल 'क ख' पर 'आइ' दिशा को परावर्त्तित हो जाता है और तत्पश्चात् इसी का पुनः परावर्त्तन होकर तीसरा प्रतिरूप (३) बहुत धुंधला प्रतीत होता है।

अब हमें यदि किसी पारदर्शक पदार्थ पर आपात किरण की स्थिति दे रक्खी हो और वायु से उस पदार्थ का वर्त्तनाङ्क ज्ञात हो तो निम्न रीति से बिना प्रयोग के ही हमें वर्त्तित किरण की स्थिति मालूम हो सकती है।

मान लो चित्र में 'द अ' कोई आपात किरण किसी कांच के टुकड़े पर पड़ रही है जिसका वर्त्तनाङ्क $\frac{३}{२}$ है। आपात विन्दु 'अ'

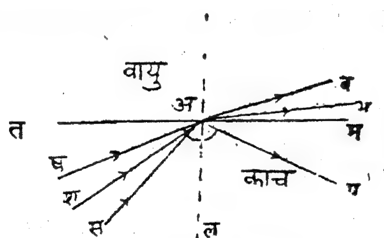



चित्र ८५—वर्त्तनाङ्क से वर्त्तित किरण का निश्चय।

केन्द्र मान कर कोई अर्द्धव्यास लेकर एक वृत्त खींचो। जिस स्थान पर यह वृत्त आपात किरण को काटता है अर्थात् द से पृथक्करण तल 'त म' तक समकोण बनाती हुई कोई रेखा 'दस' खींचो और 'अस' को तीन बराबर बराबर भागों में बांट लो। फिर इनमें से दो भागों की बराबर दूसरी ओर 'अ स'' चिह्न लगा कर

"स" से एक समकोण बनाती हुई रेखा वृत्त को दूसरी ओर व पर काटती हुई खींचो और 'व अ' को मिला दो। चित्र में 'द अ' की 'अ व' ही वर्त्तित किरण बनती है क्योंकि चित्र में प्रत्यक्ष है कि आपात कोण 'द अ ल' के सम्मुख के लम्ब का और वर्त्तित कोण 'व अ ल' के सम्मुख लम्ब का अनुपात $\frac{3}{2}$ होता है। यही इन दो पदार्थों का वर्त्तनाङ्क ( refractive index ) है।

**पूर्ण परावर्त्तन** (Total reflection)—यह तुम्हें ज्ञात है कि यदि कोई प्रकाश की किरण एक पारदर्शक पदार्थ से दूसरे घने पदार्थ में जाती है तो वह लम्ब की ओर मुड़ जाती है और आपात कोण वर्त्तित कोण से बड़ा होता है। यदि आपात कोण लगभग ९०° का हो तो भी वर्त्तित कोण




चित्र ८६—प्रकाश का पूर्ण परावर्त्तन।

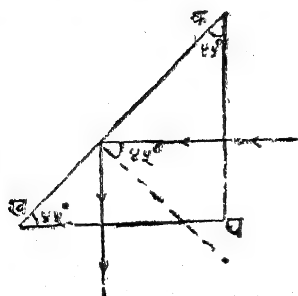
इससे छोटा ही रहेगा। इस प्रकार एक पदार्थ से दूसरे घने पदार्थ में वर्त्तन सदा सम्भव रहता है। किन्तु किसी घने पदार्थ से विरलीकृत पदार्थ में वर्त्तन होते समय वर्त्तित कोण आपात कोण से बड़ा होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि वर्त्तित कोण आपात कोण के पूर्व ही ९०° का हो जाता है। चित्र में मान लो 'त म' वायु और कांच का पृथक्करण तल है। कांच में जो रश्मि 'स अ' पथ से जावेगी वह वायु में 'अब' पथ पर

वर्त्तित होगी। ज्यों ज्यों आपात कोण बढ़ता है त्यों त्यों वर्त्तित कोण भी बढ़ता जाता है। आपात किरण एक ऐसी दिशा में 'शअ' भी हो सकती है जिसमें कि वर्त्तित रश्मि 'अभ' तल के बिलकुल बराबर बराबर 'अम' की ओर चली जाय। इस दशा में वर्त्तन का कोण ९०° का होता है। यदि आपात कोण और भी बढ़ जाय और आपात किरण 'षअ' हो जाय तो फिर तो वर्त्तन ही असम्भव होगा और सारा का सारा प्रकाश परावर्त्तन द्वारा 'अप' की ओर लौट आवेगा अर्थात् ∠षअल = ∠लअय। कोण 'शअल' को, जिस दशा में वर्त्तित किरण तल के बराबर २ जाती है, **चरमकोण** ( Critical angle ) कहते हैं। इस प्रकार जब घने पदार्थ से विरल मध्यस्थ में जाते समय प्रकाश का परावर्त्तन होता है तो इसको **पूर्णपरावर्त्तन** ( Total reflection ) कहते हैं। यदि आपात कोण चरमकोण से न्यून होता है तो प्रकाश का वर्त्तन हो सकता है, अन्यथा प्रकाश का पूर्ण परावर्त्तन हो जाता है। कांच का चरमकोण ४१°·४५′ होता है और जल का चरमकोण ४८°·४५′ होता है।

हीरे की विशेष दमक का कारण भी पूर्ण परावर्त्तन ही है। हीरे का चरमकोण बहुत छोटा होता है ( २४°·२५′ )। हीरों के मणिभ इस प्रकार काटे जाते हैं कि उनके फलक के मध्यस्थ कोणों की विशेषता के कारण प्रकाश का भीतर की ओर पूर्ण परावर्त्तन हो जाता है और वे अधिक चमकने लगते हैं।

इसी प्रकार एक समकोणीय त्रिपार्श्व से दर्पण का भी काम लिया जा सकता है। चित्र में एक समकोणीय त्रिपार्श्व का परिच्छेद 'कखघ' है। इसके 'कघ' तल पर एक राशमि समकोण पर आ कर पड़ती है और वर्त्तन पश्चात् 'कख' फलक पर इसका ४५° पर आपतन होता है। किन्तु आपात कोण चरम कोण

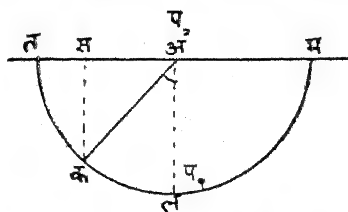
( ४१° ४५′ ) की अपेक्षा बड़ा होने से 'कख' पर पूर्ण परावर्त्तन हो जाता है और यह किरण 'खघ' फलक से समकोण बनाती हुई




चित्र ८७—त्रिपार्श्व में पूर्ण परावर्त्तन ।

निकलती है । पनडुब्बी जलयानों के परिदर्शकों ( Periscopes ) में दर्पणों के स्थान पर समकोणीय त्रिपार्श्वों का ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि इनमें प्रकाश पूर्णतया परावर्त्तित हो जाता है ।

**चरमकोण** (Critical angle) **से वर्त्तनाङ्क निर्णय**—८५वें चित्र में जब आपात कोण 'दअल' ९०° का होता है तो 'द अ' 'सअ' को ढक लेता है और उस दशा में 'द' से 'अल' पर लम्ब 'अद' की बराबर हो जाता है । और क्योंकि वर्त्तनाङ्क अस ( = अद ) और 'अस′' की निष्पत्ति को ही कहते हैं, तो यदि क° चरमकोण हो



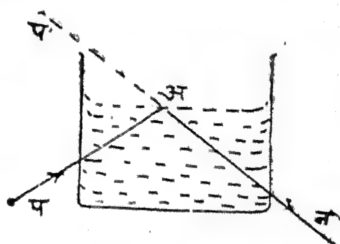

चित्र—८८ वर्त्तनाङ्क से चरमकोण निर्णय ।

तो क° की त्रिज्या ( Sine ) ही, जब प्रकाश घने पदार्थ से

विरल मध्यस्थ में जाता है, पदार्थों का वर्त्तनाङ्क ( Refractive index ) होगा। इसी प्रकार यदि किन्हीं दो पदार्थों का वर्त्तनाङ्क दिया हुआ हो तो चरमकोण को भी जान सकते हैं। चित्र में 'तम' दो पारदर्शक मध्यस्थों $प_1$ और $प_2$ का पृथक्करण तल है। $प_2$ से $प_1$ को जाते समय प्रकाश का वर्त्तनाङ्क $\mu$ है। 'तम' पर कोई व्यास लेकर एक वृत्त खींचो। 'अत' में से $\frac{अत}{\mu}$ की बराबर 'अस' को काट कर 'स' से 'अत' पर 'सक' एक समकोण पर रेखा खींचो। यदि 'कअ' आपात किरण हो तो $\angle$ 'क अ ल' ही चरम कोण होगा। 'कअ' किरण वर्त्तन पश्चात 'अम' की ओर जावेगी। जैसा कि तुम्हें बता चुके हैं वर्त्तनाङ्क $\mu$ इस दशा में $\frac{स\ अ}{अ\ म}$ होता है।

## पूर्ण परावर्त्तन के प्रभाव :—

(१) प्रयोग ७४—काँच के एक बीकर को आधा जल से भर लो और उसके पिछली ओर कोई छोटा पदार्थ 'प' रख लो। यदि इस पदार्थ को अपनी ओर से देखो तो पदार्थ अपने वास्तविक स्थान पर दृष्टिगोचर नहीं होगा। नेत्रों को और नीचे को करने से पदार्थ का प्रतिरूप 'प′' के स्थान पर प्रतीत होगा। किरण 'प' से जल में को जाकर वायु और जल के पृथक्करण तल पर पड़ती है तो आपात कोण चरमकोण से बड़ा बनता है। फलतः 'अ' पर प्रकाश का



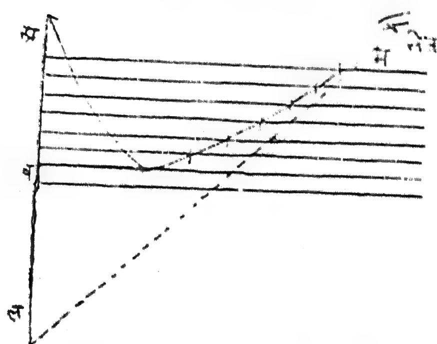

चित्र ८६—पूर्ण परावर्त्तन के प्रभाव।

'अन' की दिशा में पूर्णपरावर्त्तन हो जाता है और नेत्रों को 'प' पदार्थ 'प'' की ओर बनता हुआ प्रतीत होता है।

(२) पूर्ण परावर्त्तन में प्रकाश की किसी प्रकार से हानि नहीं होती इसलिये पूर्ण परावर्त्तन पश्चात् जो किरणें लौटती हैं वे पूर्ण प्रकाशमान होंगी। यदि किसी खाली परीक्षानली को पानी भरे बीकर में आधी डुबाओ तो देखोगे कि जल के भीतर नली का कुछ भाग पारे की नाईं बहुत चमकता है। यदि परखनली में जल भर लो तो देखोगे कि वह फिर नहीं चमकती। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि जब नली खाली होती है तो जो किरणें पानी में होकर परख-नली के ऊपर लम्बरूप से पड़ती हैं, उनका तो कांच से पार जाकर वायु में वर्त्तन हो जाता है और जो किरणें परीक्षानली के तल पर चरमकोण से अधिक आपात कोण बनाती हैं वे पूर्णतया परावर्त्तित हो जाती हैं। इस प्रकार जितना भी प्रकाश पड़ता है वह परीक्षानली के वायु और जल के पृथक्करण तल से पूर्णतया लौट आता है। इसी भांति अन्य पारदर्शक पदार्थों के मध्य यदि कोई वायु का बुलबुला रह जाता है तो वह भी बहुत चमका करता है।

(३) **मृगतृष्णा** ( mirage )—रेतीले मैदानों में ग्रीष्मऋतु की दोपहर में मृगों को जब जल कहीं निकट नहीं मिलता तो बालू में उनको बहुधा जल का आभास हो जाता है। बालू के स्थान पर उन्हें जल कैसे कल्पित होता है? यह सब ही जानते हैं कि गर्मियों में बालू अत्यधिक तप्त हो जाता है; और फलतः वायु का धरातल के सन्निकट वाला तह ऊपर वाली तहों की अपेक्षा बहुत गर्म और विरल हो जाता है। ऊपर वाले वायु के तह नीचे वाले तहों की अपेक्षा अधिक घने होते हैं। गर्मियों में पानी की खोज साधा-

रणतया दूर देखने के लिये ऊँचे टीलों व वृक्षों पर चढ़ कर करते हैं। चित्र में मान लो कोई मनुष्य 'म' टीले पर चढ़ कर जल की खोज में है। दूरस्थ वृक्ष की चोटी 'अ' हो तो वहाँ से प्रकाश की जो किरणें भूमि की ओर जावेंगी वे वृक्ष से अधिक परे को हटती जावेंगी। चित्रानुसार धरातल के निकटवर्त्ती वायु के तह ऊपर की अपेक्षा अधिक विरल हैं। इसलिये नियमानुकूल किरण प्रत्येक तह पर लम्ब से परे को हटती जाँयगी। अन्त में आपात कोण चरम कोण से अधिक

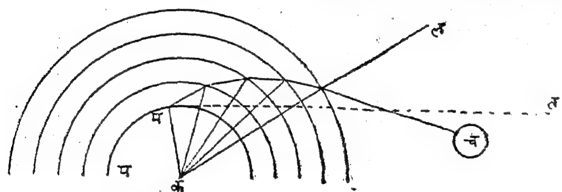



चित्र ६०—मृगतृष्णा का दृश्य।

हो जावेगा और पूर्ण परावर्त्तन होकर किरण वापिस लौटकर नेत्रों की ओर मुड़ जायँगी। जिस दिशा में यह किरण नेत्रों तक जावेगी उसको यदि नीचे की ओर बढ़ा दिया जाय तो नेत्रों को 'अ' का दृश्य 'ल' पर दृष्टिगोचर होगा। मनुष्यों को 'अ' का प्रतिबिम्ब 'ल' पर पड़ता जान पड़ेगा और उस वृक्ष के नीचे इस प्रकार जल का आभास होने लगता है। इस प्रकार देख कर जब मृग दौड़ कर पानी

पीने जाता है तो वह निराश होकर प्यास के मारे सिर धुन कर मर जाता है। इसी सिद्धान्तानुसार प्रायः समुद्रतट पर घने कुहरे के कारण जलयान उलटे होकर आकाश में भी भासने लगते हैं और जलयान के समुद्र पर दीखने के पूर्व ही उनका आगमन द्रष्टा को ज्ञात हो जाता है।

(४) **वर्त्तन के प्रभाव से ही हमें प्रायः प्रकाशमान पदार्थ जैसे सूर्य, चन्द्र, सितारे क्षितिज से नीचे होते हुए भी समय से पूर्व ही दिखाई दे जाते हैं।** निकटवर्त्ती वायुमण्डल आकाशस्थ वायुमण्डल से बहुत घना है। ज्यों ज्यों धरातल से ऊपर के वायुमण्डल की परीक्षा की जाती है त्यों त्यों वह विरल होता जाता है और वायु की वर्त्तनीय शक्ति बढ़ती




चित्र ६१—चन्द्रोदय के पूर्व और चन्द्रास्त के पश्चात् चन्द्रदर्शन।

जाती है। मान लो 'प' पृथ्वी है और 'म' इस पर मनुष्य है। नियमानुकूल क्षितिज 'मत' से नीचे की कोई वस्तु दृष्टि-गोचर नहीं हो सकती। यदि 'च' चन्द्रमा हो तो प्रकाश की किरणें वायुमण्डल पर पड़कर चित्रानुसार नीचे की ओर मुड़ जायंगी क्योंकि आपात विन्दु पर 'कल' लम्ब है। और क्योंकि मनुष्य के निकटवर्त्ती वायु की तह अधिक घनी है इसलिये ऊपर से आती हुई किरणें वर्त्तित हो मनुष्य की ओर मुड़कर नेत्रों तक पहुँच सकेंगी और 'च' पूर्णरूप क्षितिज के नीचे होते हुए भी दृष्टिगोचर होगा।

(५) वर्त्तन के ही कारण कभी कभी गर्म तलों के ऊपर का वायु भी दृष्टिगोचर होने लगता है। गर्म चढ़ता हुआ वायु ठण्ढे उतरते हुए वायु में वर्त्तित हो जाता है। यही कारण है कि वायु चिलम व अग्नि के ऊपर हिलते हुये दृष्टिगोचर हुआ करता है। वायु की तहों के भिन्न भिन्न घनत्व होने के ही कारण रात्रि में सितारे भी झिलमिलाते हैं। इसी प्रकार जब वायु में अधिक सील होती है तो झिलमिलाहट भी अधिक होती है, किन्तु वे ग्रह जो परावर्त्तित ज्योति से दृष्टिगोचर होते हैं कभी नहीं झिलमिलाते।

कुछ पदार्थों के वर्त्तनाङ्क की पाटी।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ईथर | १·३६ | तेजाब गन्धक | १·४३ |
| एल्काहल | १·३७ | नमक सेंधा | १·५४ |
| कर्बन द्विगन्धित | १·६३ | सुर्मासफेद | १·५५ |
| काँच क्राउन | १·५३ | हिम | १·३१ |
| काँच फ्लिंट | १·६४ | हीरा | २·४२ |
| ग्लिसरिन | १-४७ | तारपीन | १·४६ |

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (३)।

( १ ) जल में डालने से बेंत मुड़ी हुई क्यों और कैसे दिखाई देती है? अपने उत्तर को सचित्र और सतर्क लिखो।

( २ ) काँच के एक मोटे टुकड़े के आगे जलती मोमबत्ती को रखने से कई प्रतिरूप क्यों दृष्टिगोचर होते हैं?

( ३ ) वर्त्तन के क्या नियम हैं? किन किन दशाओं में पदार्थ के तल से प्रकाश का पूर्ण परावर्त्तन हो जाता है? पूर्ण परावर्त्तन के कुछ सम्प्रयोग दिखाओ।

( ४ ) वर्त्तित कोण और विचलन का कोण किसको कहते हैं। जल की नान्द ऊपर से देखने में वास्तविक गहराई की अपेक्षा अधिक छिछली मालूम होती है। इसका क्या कारण है?

( ५ ) पूर्ण आन्तरिक परावर्त्तन से क्या समझते हो? इसको पूर्ण परावर्त्तन क्यों कहते हैं? यह किन किन दशाओं में होता है? मृगतृष्णा की घटना का सचित्र वर्णन करो।

( ६ ) चित्र द्वारा यह दिखलाओ कि पानी में डूबे हुए मनुष्य को बाहर के पदार्थ कैसे दृष्टिगोचर होंगे।

( ७ ) तुम्हारे पास एक चोकोर वर्त्तन, जल, एक पैसा और एक पैमाना हैं तो बताओ जल का वर्त्तनाङ्क तुम कैसे निकालोगे।

( ८ ) वर्त्तनाङ्क और चरम कोण से तुम क्या तात्पर्य समझते हो? चित्र द्वारा दिखाओ कि प्रयोग द्वारा किसी द्रव का वर्त्तनाङ्क और चरम कोण कैसे निश्चय करोगे।

( ९ ) गर्मियों की धूप में भूमि व गर्म चिलम के ऊपर देखने से दूसरी ओर के पदार्थ साफ़ साफ़ नहीं दृष्टिगोचर होते; किन्तु झिल मिलाते नज़र पड़ते हैं। इस दृश्य का क्या कारण है?

(१०) वायु से जल का वर्त्तनाङ्क $\frac{४}{३}$ है और वायु से काँच का वर्त्तनाङ्क $\frac{३}{२}$ है तो बताओ जल से कांच का वर्त्तनाङ्क क्या होगा।

(११) काँच के १·५″ मोटे आयताकार गुटके की एक ओर ३०° के कोण पर कोई किरण आपतित होती है। काँच का वर्त्तनाङ्क १·५ है। वर्त्तित और निर्गत किरणें दिखाने के हेतु पैमाने पर एक चित्र खींचो और यह दिखाओ कि आपात और निर्गत किरणें परस्पर समानान्तर होती हैं।

(१२) काँच की १" मोटी चादर पर १·५" की गहराई का जल पड़ा है। काँच के नीचे के तल पर पारा चढ़ा हुआ है। चित्र द्वारा एक ऐसी किरण का पथ निर्णय करो जो जल पर ४५° पर आपतित हो। ( वायु से जल का वर्त्तनाङ्क = $\frac{4}{3}$ और जल से काँच का वर्त्तनाङ्क = $\frac{9}{8}$ )

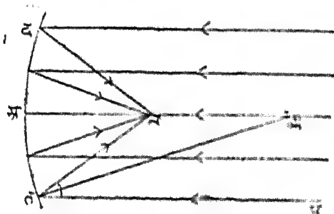
(१३) प्रकाश की एक ऐसी किरण का पथ चित्र द्वारा निर्णय करो जो कि किसी समकोणीय त्रिपार्श्व ( वर्त्तनाङ्क = $\frac{3}{2}$ ) की एक समकोण बनाती हुई भुजा पर ७०° के कोण पर आपतित हो। त्रिपार्श्व के समकोण बनाते हुए दोनों फलक बराबर हैं।

---

# चौथा अध्याय।

## गोलाकार तलों पर परावर्त्तन।

समतल दर्पणों के अतिरिक्त गोलाकार दर्पण भी होते हैं। गोलाकार दर्पण दो भाँति के होते हैं एक नतोदर और दूसरे उन्नतो-



चित्र ६२—नतोदर दर्पण पर परावर्त्तन।

दर ( Concave and Convex )। नतोदर दर्पण में परावर्त्तन गहरे तल से होता है और उन्नतोदर दर्पण में उठे हुए तल से।

गोलाकार के उस केन्द्र को जिससे कि दर्पणतल की प्रत्येक विन्दु समदूरी पर रहती है दर्पण की वक्रता का केन्द्र (Centre of curvature) कहते हैं। चित्र में 'द अ त' एक नतोदर दर्पण है और क इसकी वक्रता का केन्द्र है तथापि क अ इसकी वक्रता का एक अर्द्ध व्यास (radius) है। दर्पण के मध्यस्थ विन्दु 'अ' को दर्पण का पृष्ठीयध्रुव (Pole) कहते हैं। दर्पण के पृष्ठीयध्रुव तथा वक्रता के केन्द्र से जो असीम सीधी रेखा 'अ क' खींची जाती है उसको दर्पण का मुख्य अक्ष (principal axis) कहते हैं।

**परावर्त्तन के नियम—गोलाकार दर्पणों में भी परावर्त्तन के वही नियम हैं जो समतल दर्पणों में।** समतल दर्पणों में और गोलाकार दर्पणों में भेद केवल इतना ही है कि समतल दर्पणों में तो लम्ब सदा समानान्तर रहते हैं किन्तु गोलाकार दर्पणों के सब लम्ब परस्पर वक्रता के केन्द्र पर मिलते हैं जैसे 'त' पर 'तक' लम्ब होता है। यदि कोई प्रकाश की रश्मि 'पत' दर्पण के 'त' विन्दु पर मुख्याक्ष के समानान्तर आती हुई पड़े तो ∠'पतक' आपात कोण होगा। और परावर्त्तन के नियमानुसार परावर्त्तित कोण ∠'कतन' इसके बराबर होगा। परन्तु 'प त' और 'अ क' रेखाएं परस्पर समानान्तर हैं।

∴ ∠प त क = अपने एकान्तर ∠त क न

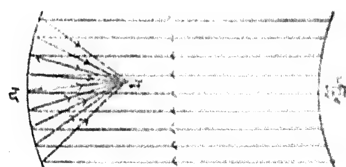
परन्तु ∠क त न = ∠त क न ∴ रेखा तन = नक।

किन्तु प्रयोग में दर्पण का पृष्ठीय व्यास छोटा होने के कारण 'त' विन्दु 'अ' से अधिक दूरी पर नहीं होता और तदनुसार 'तन' को 'अन' की बराबर मानने में कोई हानि नहीं है।

अतएव 'क न' = 'त न' = 'अ न' रेखा अर्थात् 'न' मुख्याक्ष पर दर्पण की वक्रता के अर्द्धव्यास की मध्यस्थ विन्दु हुई।

इस प्रकार यदि दर्पण का पृष्ठ अधिक बड़ा न हो तो मुख्याक्ष के समानान्तर आती हुई सारी प्रकाश की किरणें परावर्त्तन पश्चात् मुख्याक्ष पर वक्रता के अर्द्धव्यास के मध्यस्थ विन्दु 'न' पर ही मिलेंगी। इस विन्दु 'न' को दर्पण की मुख्य नाभि (Focus) कहते हैं, और 'अन' को नाभ्यान्तर्गत दूरी (Focal length) कहते हैं।

प्रयोग ७५—एक नतोदर दर्पण लेकर उसे सूर्याभिमुख करो और किसी कागज़ की बत्ती को मुख्याक्ष पर आगे पीछे सरकाओ। अन्त में एक ऐसा स्थान मिलेगा जहाँ तीव्र प्रकाश का एक सफेद धब्बा चमकने लगता है। और वहाँ पर कागज़ कुछ देरी तक




चित्र ६३—मुख्य नाभि पर कागज़ का प्रज्वलन।

रखने से जलने लगता है। सूर्य अति दूर स्थित होने के कारण यह समझ लेना चाहिये कि इससे सब किरणें परस्पर समानान्तर (Parallel) सी ही आती हैं। और इन सब का केन्द्रीभवन परावर्त्तन पश्चात् एक विशेष स्थान (focus) 'न' पर होता है।

इन बातों से यही सिद्ध होता है कि यदि प्रकाश की कोई किरणावली नतोदर दर्पण (Concave mirror) पर

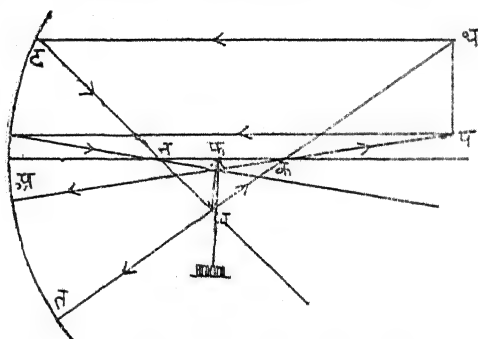
मुख्याक्ष के समानान्तर किसी विन्दु पर आपात हों तो परावर्त्तित हो वे सब सदा मुख्याक्ष पर वक्रता के केन्द्र और पृष्ठीय ध्रुव के मध्यस्थ नाभि 'न' पर ही मिलेंगी। यदि नाभ्यान्तर्गत दूरी 'न' हो और दर्पण की वक्रता का अर्द्ध-व्यास 'व' हो, तो न = $\frac{1}{2}$ व। उसी प्रकार यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि जो किरणें नतोदर दर्पण की नाभि से जा कर दर्पण तल पर पड़ती हैं वे सब मुख्याक्ष के समानान्तर (Parallel) ही परावर्त्तन के पश्चात् लौटती हैं।

समतल दर्पणों में जो किरणें दर्पण तल पर लम्बरूप आकर पड़ती हैं अपने ही पथ पर परावर्त्तित भी हो जाती हैं। तदनुसार गोलाकार दर्पणों में भी जो किरणें लम्बरूप आकर पड़ती हैं अपने ही पथ पर परावर्त्तित हो जाया करती हैं। नतोदर दर्पण की वक्रता के केन्द्र पर स्थित दीपक से जो किरणें दर्पण पर जाकर गिरेंगी वे सब दर्पण पर लम्बरूप होंगी। फलतः परावर्त्तन से सब की सब किरणें अपने ही पथ पर परावर्त्तित होकर दर्पण की वक्रता के केन्द्र पर ही एकत्रित होंगी। अर्थात् दर्पण की वक्रता के केन्द्र से जाती हुई किरणें परावर्त्तन पश्चात् अपने ही पथ पर लौटती हैं।

## नतोदर दर्पणों में प्रतिरूपों की स्थिति और आकृति।

प्रयोग ७६—एक नतोदर दर्पण 'तद' को किसी उपस्तम्भ पर लगा लो। उसके सम्मुख ३ व ४ गज़ की दूरी पर एक जलता हुआ दीपक 'पथ' रक्खो। और एक काग़ज़ 'फध' को दर्पण से दीपक की ओर ऐसे हटाओ कि दीपक का प्रकाश

काग़ज़ से दर्पण पर रुक न जाय। तुम देखोगे कि दीपक का प्रकाश परावर्त्तन से काग़ज़ पर पड़ता है। यही नहीं किन्तु विशेष स्थिति पर दीपक का एक स्फुट प्रतिरूप 'फध' काग़ज़ पर बन जाता है। यह अत्यन्त छोटा, उलटा और वास्तविक (real = पर्दे पर लिया जाने वाला) होता है। दीपक को सहज सहज दर्पण की ओर लाओ। अब देखोगे कि दीपक के प्रतिरूप को काग़ज़ पर स्फुटित करने के लिये पर्दे को दीपक की ओर ले जाना पड़ता है।




चित्र ६४—नतोदर दर्पण से प्रतिरूप पर्दे पर।

दीपक की भिन्न भिन्न स्थितियों को लेकर तुम्हें एक ऐसा स्थान मिलेगा कि दीपक की ही स्थिति पर (यदि दीपक मुख्याक्ष से कुछ ऊपर है तो दीपक के ठीक नीचे) उसका प्रतिरूप बनेगा। यदि दीपक को और दर्पण के निकट लाओ तो देखोगे कि पर्दे को प्रतिरूप की स्फुटता के लिये अधिक दूर ले जाना पड़ता है। **इस प्रकार नतोदर दर्पण के आगे पदार्थ को रखने से भिन्न भिन्न दूरी पर प्रतिरूप बना करते हैं।**

तुम्हें मालूम है कि समतल दर्पणों में प्रतिरूप की स्थिति जानने के हेतु न्यूनातिन्यून दो परावर्त्तित रश्मियों की आवश्यकता होती है। यही रीति नतोदर दर्पणों में भी पदार्थों का प्रतिरूप निश्चित करने की है। यदि किसी नतोदर दर्पण की वक्रता का केन्द्र और मुख्याक्ष दे रक्खे हों तो परावर्त्तित रश्मियाँ भी सुविधा से खींच सकते हो। यह तुम जानते ही हो कि :–

(१) यदि मुख्याक्ष के समानान्तर किसी प्रकाश रश्मि का नतोदर दर्पण पर आपतन होता है तो वह रश्मि सदा मुख्य किरण नाभि अर्थात् वक्रता के केन्द्र और पृष्ठाग्र ध्रुव के मध्यस्थ विन्दु में होकर परावर्त्तित होती है।

(२) यदि कोई रश्मि वक्रता के केन्द्र में होती हुई जाती है तो वे दर्पण पर लम्बरूप में ही पड़ती है और इस कारण उसका परावर्त्तन भी उसके ही पथ पर हो जाता है।

(३) यदि कोई रश्मि मुख्य किरण नाभि में होती हुई दर्पण पर आपतित होती है तो प्रत्यक्ष है कि परावर्त्तित रश्मि आपतन विन्दु से मुख्याक्ष के समानान्तर हो जायगी।

मान लो एक नतोदर दर्पण 'द अ त' के सम्मुख कोई पदार्थ 'पथ' मुख्याक्ष पर स्थित है। 'थ' का प्रतिरूप बनाने के हेतु इस स्थान से दो किरणें 'थद'(मुख्याक्ष के समानान्तर) और 'थत' (दर्पण की वक्रता के केन्द्र में होती हुई) खींचो। परावर्त्तन के पश्चात् यह किरणें क्रमशः 'द ध' और 'त ध' की ओर परावर्त्तित होंगी। ये दोनों 'ध' पर मिलती




चित्र ६४—नतोदर दर्पण में प्रतिरूप।

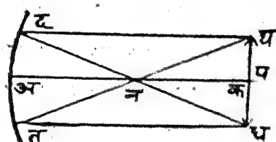
हैं। इसलिये 'थ' का प्रतिरूप 'ध' पर बनेगा और इसी प्रकार 'प' का प्रतिरूप 'फ' पर बनेगा और तदनुसार 'पथ' का प्रतिरूप 'फध' बन जाता है। विदित है कि 'फ ध' उलटा और पदार्थ की अपेक्षा छोटा बनता है। नतोदर दर्पण द्वारा प्रतिरूप बनाने की विधि प्रत्येक दशा में यही होती है।

समतल दर्पण में पदार्थ का प्रतिरूप सदा सीधा, काल्पनिक, (परदे पर न बनने वाला), और पदार्थ के बराबर हुआ करता है किन्तु नतोदर दर्पणों में प्रतिरूप की आकृति, विकृति, और स्थिति पदार्थ की स्थिति पर निर्भर रहती है।

(१) जब पदार्थ दर्पण से अनन्त दूरी पर होता है (चित्र ९३) तो उस पदार्थ से लगभग सब की सब किरणें दर्पण के मुख्याक्ष के व परस्पर समानान्तर होती हैं। अतएव सब की सब किरणें परावर्त्तन पश्चात् मुख्य नाभि पर ही केन्द्रीभूत होंगी। प्रतिरूप बिन्दुरूप अति सूक्ष्माकार, वास्तविक और मुख्य नाभि पर ही बना करता है। तुम इस अध्याय के प्रारम्भ में देख चुके ही हो कि नतोदर दर्पण द्वारा अनन्त दूरस्थ सूर्य का ऐसा ही प्रतिरूप बनता है।

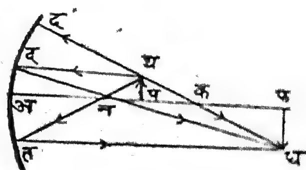
(२) जब पदार्थ वक्रता के केन्द्र के बाहर होता है तो चित्र ९४ चित्र के अनुसार प्रतिरूप पदार्थ से छोटा, उलटा, और वास्तविक बनता है; ज्यों ज्यों पदार्थ दर्पण के निकट

आता है त्यों त्यों प्रतिरूप दर्पण से हटता जाता है। अन्त में जब दीपक 'पथ' नतोदर दर्पण की वक्रता के केन्द्र क पर आ जाता है तो चित्रानुसार पिछले ही नियमों द्वारा प्रतिरूप भी 'पध' उसी स्थान पर बनता है। चित्र में देखने से विदित है कि प्रतिरूप पदार्थ की बराबर, उलटा और वास्तविक वक्रता के केन्द्र (Centre of curvature) पर ही बनता है।



चित्र ९६—वक्रता के केन्द्र पर पदार्थ और प्रतिरूप।

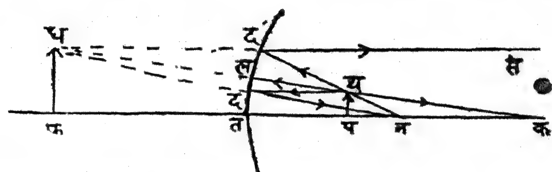
(३) यदि पदार्थ किरणनाभि और दर्पण की वकृता के केन्द्र के मध्य हो तो चित्रानुसार 'पथ' का प्रतिरूप 'फध' बनेगा। 'थ' से एक किरण 'थद' मुख्याक्ष के समानान्तर आती है और 'दन' पथ में वह परावर्त्तित हो जाती है। दूसरी किरण 'थ' से नाभि में जाकर दर्पण पर आपतित होती है और 'तध' पथ पर मुख्याक्ष के समानान्तर ही परावर्तित होगी। दोनों परावर्त्तित किरणें ध पर मिलती हैं और तदनुसार 'पथ' का प्रतिरूप 'फध' बनता है। यदि 'थ' से कोई तीसरी किरण दर्पण तल पर लम्बरूप 'थद' पड़े तो यह प्रत्यक्ष है कि यह परावर्त्तन पश्चात् अपने ही पथ पर 'द' क' की ओर को लौटेगी और ध पर अन्य परावर्त्तित रश्मियों से मिल जायगी।



चित्र ९७—'न' और 'क' के मध्यस्थ पदार्थ का प्रतिरूप।

इस दशा में प्रतिरूप पदार्थ से बड़ा, उलटा, और वास्तविक वक्रता के केन्द्र से भी परे बनता है। यदि पदार्थ 'पथ' को 'न' की ओर ले जावें तो 'द' थ' और 'तध' परावर्त्तित किरणें परस्पर समानान्तर हो जावेंगी और प्रत्यक्ष प्रतिरूप अनन्त दूरी पर बनना चाहिये। इसलिये यह अव्यक्त और अदृष्ट रहता है।

(४) जब पदार्थ दर्पणके ध्रुव (pole) से नाभ्यान्तर्गत दूरी के मध्य रहता है :—किसी नतोदर दर्पण को दीपक के सन्निकट ले जाकर देखो; प्रतिरूप विशालरूप दृष्टिगोचर होगा। दीपक का यह प्रतिरूप पर्दे पर न उतर सकेगा। चित्र में 'द त' एक नतोदर दर्पण है। 'पथ' एक दीपक




चित्र ९८—'ध्रुव' और नाभि के मध्यस्थ पदार्थ का प्रतिरूप।

नाभ्यान्तर्गत दूरी के भीतर है। 'थ' से दर्पण पर दो रश्मियें 'थद' और 'थद'' पड़ रही हैं। ये रश्मियाँ परावर्त्तित होकर 'दन' और 'द'स' पथ पर लौटती हैं। मान लो 'थल' एक तीसरी किरण दर्पण तल पर लम्बरूप आपतित होती है; यह अपने ही पथ पर 'लक' की ओर परावर्त्तित हो जावेगी। चित्र में प्रत्यक्ष है कि ये तीनों परावर्त्तित किरणें 'दन', 'लक' व 'द'स' बढ़ाई जायं तो दर्पण के सम्मुख कहीं न मिलेंगी, किन्तु अपसृत होती हुई दृष्टिगोचर होंगी। परन्तु

यदि ये किरणें पिछली ओर को बढ़ाई जावें तो 'थ' पर मिलती जान पड़ेंगी। 'पथ' का प्रतिरूप तदनुसार 'फथ' पर बनेगा। दर्पण के पीछे बनने के कारण यह काल्पनिक (Virtual) सीधा, पदार्थ से बड़ा बनता है। यही कारण है कि नतोदर दर्पण के निकट लाने से हमारा वदन अति दीर्घाकार मालूम होने लगता है।

उपरोक्त रीति के अनुसार पदार्थ की भिन्न भिन्न स्थितियाँ होने से प्रतिरूप भी भिन्न २ रूप से बना करते हैं। दर्पण के केन्द्र से नाभि की दूरी को हम साधारणतया 'न' से बोधित करते हैं और पदार्थ से दर्पण की दूरी को 'प' तथा दर्पण से प्रतिरूप तक की दूरी को 'फ' से। जैसे गणित में इष्ट मूल (Origin) से दाहिनी ओर की दूरियों को धन के चिन्ह से सूचित करते हैं और बाईं ओर की दूरियों को ऋणात्मक कर देते हैं उसी प्रकार दर्पणों से जो दूरियाँ दाहिनी ओर नापते हैं उन्हें धनात्मक करते हैं और जो दूरियाँ दर्पण के पीछे की ओर नापते हैं उन्हें '—' से चिह्नित करते हैं। इस प्रकार पिछले चित्र में 'फ' की दूरी को अपनी गणना में '—फ' से बोधित करेंगे।

**'न, प, फ, सम्बन्धी समीकरण** (Equation)—पिछले चित्रों में देखने से विदित है कि पदार्थों का प्रतिरूप बनाने के हेतु पदार्थ को मुख्याक्ष पर ही रखते हैं और इसके अतिरिक्त दर्पण के पृष्ठ की परिवृत्ति (periphery) अधिक नहीं होती। अतएव यदि ९७वें चित्र में 'द' से मुख्याक्ष पर कोई समकोण बनाती हुई रेखा खींची जाय तो वह रेखा ध्रुव 'अ' के सन्निकट होगी और इस रेखा से 'न' की व 'प' की दूरियों को भी 'न' व 'प' ही मान सकते हैं। चित्रों में 'दअ' पदार्थ के बराबर ही है। इसलिये

△थ प क और △ ध फ क परस्पर समानरूपी होने से

$\frac{पथ}{फध} = \frac{पक}{फक}$ परन्तु 'थप = 'दत' ( चित्र ९८ )

इसी प्रकार 'द त न' और 'ध फ न' समानरूपी त्रिकोणों में

$$\frac{पथ}{फध} = \frac{द त}{धफ} = \frac{तन}{फन} = \frac{न}{फ+न}$$

$$\therefore \frac{पक}{फक} = \frac{न}{फ+न} \quad व \quad \frac{२ न-प}{२ न+फ} = \frac{न}{फ+न}$$

व   $२ न फ - प फ + २ न^{२} - न प = २ न^{२} + फ न$

व   $प फ + न प = न फ$

समीकरण को फ प न से भाग देने पर

$\frac{१}{न} = \frac{१}{प} - \frac{१}{फ}$ परन्तु चित्र में प्रतिरूप दर्पण से पीछे बनता है इसलिये 'फ' ऋणात्मक है। इस प्रकार उपरोक्त समीकरण

(Equation) $\frac{१}{न} = \frac{१}{प} + \frac{१}{फ}$ हो जाती है।

अन्य चित्रों में भी इसी समीकरण का सत्यापन कर सकते हैं। यदि तीनों संख्याओं में कोई सी दो ज्ञात हों तो तीसरी भी निकल सकती है।

**प्रतिरूप का परिमाण** ( Size )—पिछले चित्र में यदि 'थ' और 'ध' को 'त' से मिला दें तो 'थ प त' और 'ध फ त' त्रिकोण परस्पर समानरूप होंगे क्योंकि प्रत्येक दशा में ∟थ प त = ∟धफत और ∠थ त प = ∠ध त फ ( क्योंकि यहाँ पर 'थ त प' आपात कोण का 'ध त फ' परावर्त्तित कोण अथवा परावर्त्तित कोण

का ऊर्ध्वाधार अभिमुख, alternate, कोण होता है) इसलिये दोनों त्रिभुजों के तीसरे कोण भी परस्पर बराबर होंगे।

$$\text{फलतः} \quad \frac{\text{पथ}}{\text{फथ}} = \frac{\text{पत}}{\text{फत}} = \frac{\text{प}}{\text{फ}}$$

इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि प्रतिरूप का परिमाण पदार्थ सदा $\frac{\text{फ}}{\text{प}}$ गुणा बड़ा होता है।

उदाहरण १—५ श. मीटर लम्बा पदार्थ एक नतोदर दर्पण से, जिसकी वक्रता का अर्द्धव्यास २० श. मीटर है, ४० श. मीटर दूर मुख्याक्ष पर रक्खा है। इसके प्रतिरूप की स्थिति और उसका परिमाण निर्धारित करो।

इस प्रश्न में प = ४० श. मीटर

$$\text{न} = \frac{२०}{२} = १० \text{ श मीटर}$$

$$\text{परन्तु} \frac{१}{\text{न}} = \frac{१}{\text{प}} + \frac{१}{\text{फ}}$$

$$\therefore \frac{१}{१०} = \frac{१}{४०} + \frac{१}{\text{फ}}$$

$$\text{अर्थात्} \frac{१}{\text{फ}} = \frac{३}{४०}$$

$\therefore$ फ या दर्पण ध्रुव से प्रतिमूर्त्ति की दूरी = १३$\frac{१}{३}$ श. मी.।

$$\text{और} \quad \frac{\text{प्रतिरूप का परिमाण}}{\text{पदार्थ का परिमाण}} = \frac{\text{फ}}{\text{प}} = \frac{\frac{४०}{३}}{४०} = \frac{१}{३}$$

$\therefore$ प्रतिरूप का परिमाण = $\frac{५}{३}$ = १$\frac{२}{३}$ श मीटर। प्रतिरूप दर्पण के सम्मुख और उलटा बनता है।

उदाहरण २—एक पदार्थ नतोदर दर्पण के सम्मुख जिसकी नाभिगतदूरी १० श. मीटर है ऐसे रक्खा है कि पदार्थ से

प्रतिरूप का परिमाण दो गुणा होता है तो दर्पण से पदार्थ की दूरी बताओ।

प्रतिरूप वास्तविक भी हो सकता है और काल्पनिक भी। दोनों दशाओं में पदार्थ की दूरी भिन्न भिन्न होगी इसलिये :—

(१) जब प्रतिरूप वास्तविक होता है तो प्रतिरूप दर्पण से दाहिनी ओर बनेगा अर्थात्

$$\frac{\text{प्रतिरूप का परिमाण}}{\text{पदार्थ का परिमाण}} = \frac{फ}{प} = \frac{२}{१} \quad \therefore फ = २ प$$

दर्पण के समीकरण में फ को स्थानापन्न कर

$$\frac{१}{२ प} + \frac{१}{प} = \frac{१}{१०}$$

हल करने पर प = १५ श. मीटर होता है।

(२) यदि प्रतिरूप काल्पनिक हो तो परावर्त्तन से प्रतिरूप दर्पण के पीछे बनता हुआ प्रतीत होगा। अतएव फ = −२ प

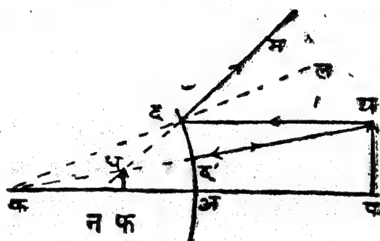
अब की बार समीकरण $\frac{१}{-२ प} + \frac{१}{प} = \frac{१}{१०}$ हो जावेगी।

इस दशा में प = ५ श मीटर होता है।

**उन्नतोदर दर्पण में प्रतिमूर्त्ति की आकृति**—उन्नतोदर दर्पणों में परावर्त्तक तल बीच में से ऊपर को उठा हुआ होता है और दर्पण की वक्रता का केन्द्र तथा नाभि परावर्त्तक तल के पीछे होते हैं। किसी उन्नतोदर दर्पण को लेकर उसमें भिन्न २ दूरियों से अपना मुख देखो। प्रत्येक स्थान में तुम्हें अपना प्रतिरूप सीधा और अपेक्षाकृत छोटा दृष्टिगोचर होगा।

चित्र ९९ में 'द अ त' एक उन्नतोदर दर्पण है, 'क प' इसका मुख्याक्ष है और 'क' दर्पण की वक्रता का केन्द्र है और न मुख्यनाभि। 'पथ' दर्पण के सम्मुख एक दीपक है। 'थ' से दर्पण

पर मुख्याक्ष के समानान्तर 'थद' किरण लम्ब से आपात कोण 'थदल' की बराबर कोण 'लदम' बनाती हुई 'दम' पथ पर परावर्त्तित होगी। यह किरण 'न' अर्थात् किरणनाभि से (जो कि 'कअ' का मध्यस्थ विन्दु है) आती हुई दृष्टिगोचर होगी। थ से दूसरी किरण 'थद'' दर्पण पर लम्बरूप पड़ती है और परावर्त्तन पश्चात् अपने




चित्र ६६—उन्नतोदर दर्पण पर परावर्त्तन से प्रतिरूप।

ही पथ पर लौटेगी किन्तु 'क' से आती हुई दृष्टिगोचर होगी। दोनों परावर्त्तित किरणें बढ़ाने पर दर्पण के पिछली ओर ध पर मिलती हैं इस प्रकार 'पथ' का प्रतिरूप 'फध' बनता प्रतीत होगा। चित्र में यह बात प्रत्यक्ष है कि प्रतिरूप दर्पण के पिछली ओर बनता है इसलिये काल्पनिक है और आकृति में छोटा और सीधा है।

नतोदर दर्पणों की भांति इस चित्र में भी यह बात दिखा सकते हैं कि 'नअ' नाभ्यान्तर्गत दूरी (Focal length) अर्द्धव्यास 'अक' की आधी है। कोण 'थदल' = $\angle$ 'अकद'

परन्तु $\angle$ 'थदल' = $\angle$ 'मदल' = $\angle$ कदध

$\therefore$ 'नकद' त्रिभुज में $\angle$ अकद = $\angle$ कदध

$\therefore$ कन = नद

परन्तु दर्पण की परिवृत्ति छोटी होने के कारण नद = नअ और कन = नअ। इसलिये 'न' 'कअ' की मध्यस्थ बिन्दु है।

पदार्थ की स्थिति उन्नतोदर दर्पण के आगे कहीं भी क्यों न हो उन सब का प्रतिरूप उपरोक्त चित्र 'फध' की ही समान बनता है क्योंकि प्रकाश की किरणावली उन्नतोदर तल पर पड़कर अपसृत (diverge) हो जाती है। इसलिये उन्नतोदर दर्पणों में परावर्त्तन से प्रतिरूप सदा सीधा, काल्पनिक और पदार्थ की अपेक्षा छोटा हुआ करता है। जब ध्रुव से पदार्थ अति दूर होता है तो प्रतिरूप लगभग नाभि पर ही बनता है और ज्यों ज्यों पदार्थ ध्रुव के निकट आता जाता है त्यों त्यों प्रतिरूप भी दर्पण ध्रुव 'अ' के निकट आ जाता है।

**नियमानुसार उन्नतोदर दर्पण में नाभ्यान्तर्गत दूरी 'न' और प्रतिरूप की दूरी 'फ' सदा ऋणात्मक रहती हैं।**

**उन्नतोदर दर्पण में प, फ, न सम्बन्धी समीकरण—**

९९ चित्र में 'प थ' का प्रतिरूप 'फ ध' बनता है। चित्र में 'नफध' और 'न अ द' दोनों त्रिभुज परस्पर समान हैं (यदि 'द' से मुख्याक्ष पर समकोण बनाती हुई रेखा 'अ' पर मिले तो)

$$\therefore \frac{\text{पथ}}{\text{फध}} = \frac{\text{अद}}{\text{फध}} = \frac{\text{नअ}}{\text{नफ}} = \frac{\text{न}}{\text{न} - \text{फ}}$$

उसी तरह 'कफध' और 'कपथ' त्रिभुज भी परस्पर समान हैं,

$$\therefore \frac{\text{पथ}}{\text{फध}} = \frac{\text{कप}}{\text{कफ}} = \frac{\text{२ न} + \text{प}}{\text{२ न} - \text{फ}}$$

$$\therefore \frac{\text{न}}{\text{न} - \text{फ}} = \frac{\text{२ न} + \text{प}}{\text{२ न} - \text{फ}}$$

व $$\text{२ न}^2 - \text{फन} = \text{२ न}^2 + \text{पन} - \text{२ फन} - \text{पफ}$$

व $$\text{पन} - \text{फन} = \text{पफ}$$

दोनों ओर समीकरण को पफन से विभाजित कर

$$\frac{१}{फ} - \frac{१}{प} = \frac{१}{न}$$

परन्तु जैसा चित्र से विदित है उन्नतोदर दर्पण में 'न' और 'फ' दोनों संख्याएं ऋणात्मक होती हैं। इसलिये समीकरण

फ़िर $\frac{१}{प} + \frac{१}{फ} = \frac{१}{न}$ हो जाती है।

ध्यान देना चाहिये कि यह वही समीकरण है जो हमें नतोदर दर्पण में मिली थी। यही नहीं किन्तु चित्र में 'थ' और 'ध' को 'अ' से मिला कर यह बात बड़ी सरलता से दिखा सकते हैं कि 'कध' प्रतिरूप तथा 'पथ' पदार्थ के आकारों में भी वही सम्बन्ध होता है जो कि ध्रुव से इन की दूरियों में होता है।

उपरोक्त बातों का सारांश यह है कि निम्नलेखानुसार भिन्न २ दशाओं में भिन्न भिन्न प्रकार से प्रतिरूप बना करते हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| वास्तविक प्रतिरूप | (१) नतोदर दर्पण में | : पदार्थ ध्रुव से नाभ्यान्तर्गत दूरी के बाहर होता है। |
| काल्पनिक प्रतिरूप | (१) नतोदर दर्पण में | : पदार्थ ध्रुव से नाभिअन्तर्गत होता है। |
| | (२) उन्नतोदर दर्पण में | : पदार्थ की स्थिति कहीं भी हो सकती है। |
| खड़ा सीधा | (१) नतोदर दर्पण में | : पदार्थ नाभि अन्तर्गत होना चाहिये। |
| | (२) उन्नतोदर दर्पण में | : पदार्थ कहीं भी हो। |
| उलटा | (१) नतोदर दर्पण में | : पदार्थ की स्थिति नाभ्यान्तर्गत दूरी से बाहर होती है।' |
| बड़ा | (१) नतोदर दर्पण में | : पदार्थ जब 'क' और 'न' के मध्यस्थ होता है। |

छोटा (१) नतोदर दर्पण में : पदार्थ केन्द्र से परे हो।
(२) उन्नतोदर दर्पण में : पदार्थ कहीं भी हो।
बराबर (१) नतोदर दर्पण में : पदार्थ वक्रता के केन्द्र पर होना चाहिये।

**दर्पण में सम्वद्ध नाभि ( Conjugate foci )**—

$\frac{१}{फ}+\frac{१}{प}=\frac{१}{न}$ से प्रत्यक्ष है कि 'प' यदि कोई विशेष संख्या हो तो 'फ' भी तदनुसार कोई अन्य संख्या विशेष होती है। इस समीकरण में 'प' की स्थान पर 'फ' और 'फ' के स्थान पर 'प' परिवर्त्तन करने से कोई भेद नहीं होता। इससे विदित है कि यदि 'प' को कोई संख्या मान लें और तदनुसार 'फ' को निकालें तो समीकरण में दोनों की संख्याओं को परस्पर अदल बदल सकते हैं।

प्रयोग ७७—नतोदरदर्पण के सम्मुख कोई प्रकाशमान पदार्थ रख दो। उसका प्रतिरूप पर्दे पर ले लो। अब यदि पर्दे के स्थान पर दीपक रख दो तो देखोगे कि दीपक के पूर्व स्थान पर अब की बार प्रतिरूप बन जाता है। इससे हम देखते हैं कि पदार्थ और उसके प्रतिरूप के स्थान नतोदर दर्पण में परस्पर परिवर्त्तनीय होते हैं। ऐसी बिन्दुओं **को जिन पर कि पदार्थ और उसके प्रतिरूप का व्यतिहार हो सके सम्वद्ध नाभि ( Conjugate foci ) कहते हैं।**

गोलाकार दर्पणों की नाभ्यान्तर्गत दूरी की निर्णय विधि :—

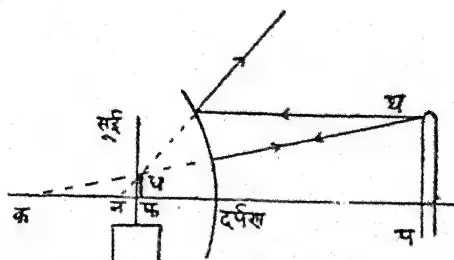
(१) यह तुम देख हो चुके हो कि नतोदर परावर्त्तक तल पर जब मुख्याक्ष के समानान्तर किरणों का आपतन होता है तो वे परावर्त्तित हो वक्रता के अर्द्धव्यास के मध्यविन्दु पर केन्द्रीभूत होती हैं। इसी किरणकेन्द्र को दर्पण की नाभि कहते हैं। यदि नतोदर दर्पण द्वारा सूर्य का पूर्ण व्यक्त प्रतिरूप बनाया जावे तो दर्पण ध्रुव ( pole ) से प्रतिरूप की दूरी ही नाभ्यान्तर्गत दूरी होती है।

(२) भिन्न भिन्न स्थान पर दीपक को रख प्रतिरूप की ध्रुव से दूरियों को नापकर $\frac{१}{प}+\frac{१}{फ}=\frac{१}{न}$ समीकरण द्वारा 'न' निकाल सकते हैं। औसत निकालने से 'न' की दूरी ठीक ठीक ज्ञात हो जाती है।

(३) दृष्टिलम्बन विधि (parallax method)—नतोदर दर्पण के सम्मुख मुख्याक्ष पर एक सीधी खड़ी सूई इस प्रकार रक्खो कि दर्पण में सूई का उलटा प्रतिरूप बन जाय। सूई को आगे पीछे सरका कर इसको ऐसे स्थित कर दो कि सूई और इसके प्रतिरूप में कोई लम्बन भेद न हो अर्थात् सूई और इसका प्रतिरूप परस्पर ढक लें और नेत्रों को दायें बायें करने से भी उनमें भेद न पड़े। इस दशा में सूई और इसका प्रतिरूप दोनों ही दर्पण की वक्रता के केन्द्र पर बनेंगे। ध्रुव से सूई की दूरी नापने से दर्पण की वक्रता का अर्द्धव्यास ज्ञात हो जाता है और इसका आधा करने से नाभ्यान्तर्गत दूरी मालूम हो जाती है। इसमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं; ( १ ) सूई व पिन मुख्याक्ष पर ही खड़ी हो और ( २ ) इसकी स्थिति ध्रुव से सन्निकट न हो।

प्रयोग ७८—**उन्नतोदर दर्पण की नाभ्यान्तर्गत दूरी** (Focal length)-उन्नतोदर दर्पण के सम्मुख मुख्याक्ष पर एक ऊँचा रिटार्ट उपस्तम्भ 'पथ' खड़ा कर लो। दर्पण में देखने से प्रतिरूप 'फध' छोटा और सीधा प्रतीत होगा। इस प्रतिरूप की स्थिति को निश्चय करने के लिये दर्पण के पीछे एक ऊँची सलाई काग में लगा कर खड़ी कर लो। पिछली सूई को दर्पण के निकट ऐसी समायोजित कर लो कि दर्पण में प्रतिरूप को देखने से वह पिछली सूई की रेखा ही में प्रतीत हो और परस्पर दृष्टिलम्बन भेद न हो। जब उपस्तम्भ का प्रतिरूप और दर्पण के पीछे वाली

सूई का ऊपरी भाग एक ही रेखा में प्रतीत हों तो दर्पण के ध्रुव से सामने की ओर उपस्तम्भ की दूरी ( +प ) और पिछली ओर सूई की दूरी ( प्रतिरूप की स्थिति की दूरी अर्थात् –फ ) नाप लो। फिर $\frac{१}{प}+\frac{१}{फ}=\frac{१}{न}$ समीकरण द्वारा नाभ्यान्तर्गत दूरी का निर्णय कर लो। देखोगे कि यह भी उन्नतोदर दर्पण में ऋणात्मक होती है।




चित्र १००—उन्नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी निर्णय विधि।

यदि दर्पण की परिवृत्ति बड़ी होगी तो प्रतिरूप और सूई को एक ही रेखा में समायोजित करना कठिन होगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उन्नतोदर दर्पण के मध्य के पिछले भाग से पारा उतार देते हैं ताकि दर्पण में उपस्तम्भ का प्रतिरूप और दर्पण की पिछली सूई परस्पर सन्निपतित होती हुई देख सकें।

**संप्रयोग**—नतोदर दर्पणों में मुख्य नाभि पर प्रकाश ही केन्द्रीभूत नहीं होता किन्तु सूर्य की तप्त किरणें भी वहीं परिछिन्न होती हैं इसलिये नतोदर दर्पण का आतशी शीशे की नाईं भी प्रयोग कर सकते हैं। नतोदर दर्पण ज्यौतिषी दूरबीनों में भी लगाये जाते हैं। यदि नतोदर दर्पण की मुख्य नाभि पर कोई दीपक रखते हैं तो प्रकाश मुख्याक्ष के समानान्तर लौटता है। इसलिये

बहुधा नतोदर दर्पण मोटरों और रेलों के इञ्जनों के आगे दीपक को शक्तिशाली करने के लिये लगाये जाते हैं।

उदाहरण—दो शतांशमीटर लम्बा पदार्थ एक उन्नतोदर दर्पण के सम्मुख ४० श. मीटर पर रक्खा हुआ है। दर्पण की नाभ्यान्तर्गत दूरी १५ श. मीटर है तो प्रतिरूप की आकृति और स्थिति (Size and position) को निश्चय करो। यहां पर

प = ४० श. मीटर, न = – १५ श. मीटर

$$\therefore \frac{१}{फ} + \frac{१}{४०} = -\frac{१}{१५}$$

$$\text{व} \quad \frac{१}{फ} = -\frac{१}{१५} - \frac{१}{४०} = -\frac{११}{१२०}$$

$$\therefore फ = -१०\cdot९ \text{ श मीटर}$$

∴ प्रतिरूप दर्पण के पीछे १०·९ श. मीटर पर बनता है।

$$\text{और आकारवृद्धि} = \frac{फ}{प} = \frac{१०\cdot९}{४०} = \cdot२७२५$$

∴ मूर्त्ति का आकार = २ × ·२७२५ = ·५४५ श. मीटर।

इस भांति प्रतिरूप काल्पनिक, सीधा छोटा, और दर्पण के पीछे बनता है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (४)।

(१) (प) गोलाकार दर्पण से तुम क्या तात्पर्य समझते हो?

(फ) दर्पण के मुख्याक्ष और मुख्य नाभि से क्या तात्पर्य है? यह बात कैसे दर्शाओगे कि मुख्य नाभि ध्रुव से दर्पण के अर्द्धव्यास की आधी दूरी पर स्थित होती है।

( २ ) (प) नतोदर दर्पण में वक्रता के केन्द्र, नाभिगतान्तर, और सम्बद्ध नाभि की परिभाषाएं लिखो।

(फ) नतोदर दर्पण की नभ्यान्तर्गत दूरी निकालने की किन्हीं दो विधियों का वर्णन करो।

(३) नतोदर दर्पण का प्रतिरूप किन किन नियमों के अनुसार बनता है? चित्र द्वारा नतोदर दर्पण में एक बिन्दु-पदार्थ का प्रतिरूप बनना दिखाओ।

(४) प्रतिरूप किसको कहते हैं? छोटे से पदार्थ का नतोदर दर्पण द्वारा प्रतिरूप कैसे निकाल सकते हैं? पदार्थ को कहाँ रक्खें कि इसका प्रतिरूप इसी से सन्निपतित हो जाय? चित्र खींचो।

( ५ ) किसी नतोदर दर्पण की वक्रता के केन्द्र, पदार्थ की दूरी, और प्रतिरूप की दूरी का सम्बन्ध कैसे निकाल सकते हो और प्रयोग द्वारा इसकी सत्यता की जांच कैसे करोगे?

( ६ ) यदि १० शतांशमीटर नाभिगतान्तर वाले नतोदर दर्पण के सम्मुख १२ शतांशमीटर पर १" लम्बा पदार्थ रक्खें तो प्रतिरूप की स्थिति, आकृति, और प्रकृति निश्चय करो।

( ७ ) प्रतिरूप से क्या तात्पर्य है? वास्तविक और काल्पनिक प्रतिरूपों में क्या भेद है? ६० श. मीटर अर्द्धव्यास वाले नतोदर दर्पण के सम्मुख एक १० श. मीटर ऊंचा दीपक रक्खा है। यदि दर्पण से पदार्थ की दूरी २० श. मीटर हो तो चित्र द्वारा उसके प्रतिरूप की दूरी, आकृति, प्रकृति निर्णय करो।

( ८ ) एक छोटा सा पदार्थ किसी गोलाकार दर्पण से १२ शतांश-मीटर की दूरी पर रक्खा है। यदि दर्पण में प्रतिरूप सीधा और पदार्थ से दुगुना बनता हो तो पैमाने पर चित्र खींच कर दर्पण की नाभ्यान्तर्गत दूरी निर्णय करो।

(९) नतोदर दर्पण कहाँ रक्खोगे कि तुम्हें अपना मुख (प) उलटा (फ) सीधा दिखाई दे। अपने उत्तर को सचित्र और सतर्क लिखो। किन २ दशाओं में प्रतिरूप दुगुना बन सकता है ?

(१०) (प) तीनों भाँति के दर्पणों को अपने मुख से दूर पृथक् २ ले जाओ तो बताओ तुम्हारे प्रतिरूप में क्या क्या भेद दृष्टिगोचर होंगे। (फ) कमरे की छत में लगे हुए दर्पण में पदार्थों के प्रतिरूपों से तुम्हें यह कैसे ज्ञात हो सकता है कि दर्पण समतल, नतोदर अथवा उन्नतोदर है और यह बात कहाँ तक जान सकते हो कि दर्पण अधिक उन्नत है व नत है।

(११) एक नतोदर दर्पण की वक्रता का अर्द्धव्यास १८ शतांशमीटर है। यदि कोई तीर दर्पण से (प) ३ शतांशमीटर की दूरी पर हो और (फ) १५ शतांशमीटर की दूरी पर हो तो पदार्थ के प्रतिरूपों की स्थिति और आकृति इ. निर्णय करो।

(१२) एक उन्नतोदर दर्पण के सम्मुख एक सीधी पिन खड़ी है। चित्र द्वारा दिखाओ कि प्रतिरूप कैसे बनता है। यह प्रतिरूप वास्तविक होगा अथवा काल्पनिक ?

(३१) ४८ शतांशमीटर अर्द्धव्यास वाले एक उन्नतोदर ताल के सम्मुख ७२ शतांशमीटर की दूरी पर कोई २″ लम्बा पदार्थ रक्खा है तो चित्र और गणना द्वारा प्रतिरूप की स्थिति, आकृति इत्यादि निश्चय करो।

(१४) १०″ नाभिगतान्तर वाले एक उन्नतोदर ताल के सम्मुख २·५″ की दूरी पर २″ लम्बा कोई पदार्थ हो तो प्रतिरूप की स्थिति आकृति इ. निश्चय करो।

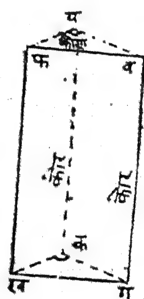
(१५) उन्नतोदर ताल का नाभिगतान्तर प्रयोग से कैसे निकालोगे।

———

# पाँचवां अध्याय ।

## त्रिपार्श्व, ताल और ताल से प्रकाश का वर्त्तन तथा निर्गम ।

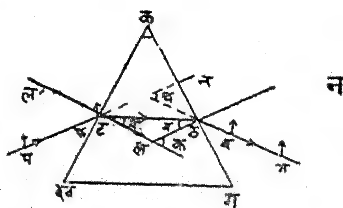
त्रिपार्श्व (Prism)—तुम जान गये हो कि कांच के समचतुरस्र में प्रकाश का वर्त्तन किस भांति होता है। अब देखना यह है कि त्रिपार्श्व में प्रकाश का वर्त्तन किस भाँति होता है। किसी पदार्थ के ऐसे भाग को जिसमें दोनों आमने सामने के छोर समानान्तर त्रिभुजरूप हों और बराबर के तीनों तल चतुर्भुज हों उसको त्रिपार्श्व ( prism ) कहते हैं। जिस रेखा पर दो चतुर्भुज तल परस्पर किसी कोण पर मिलते हैं उसको त्रिपार्श्व की कोर ( Edge पक ) कहते हैं और दो चतुर्भुज तलों के मध्य जो कोण बनता है उसे त्रिपार्श्व का कोण (Angle of the prism ) कहते हैं। चित्र में ∠खकग व फपब इसके कोण हैं।




चित्र १०१—त्रिपार्श्व ।

प्रयोग ७९—त्रिपार्श्व ( prism ) में प्रकाश का वर्त्तन : एक त्रिपार्श्व 'कखग' को समतल पर खड़ा करो। इसकी एक ओर दो पिन 'प फ' खड़ी कर लो। अब इन दो पिनों को त्रिपार्श्व के दूसरे चतुर्भुज तल में ऐसे देखो कि ये पिन एक ही रेखा में प्रतीत हों। इसी दिशा में अपनी ओर दो अन्य पिन 'ब भ' इस प्रकार लगा लो कि ये दो पिन और त्रिपार्श्व में से दृष्टिगोचर होती हुई दोनों पिन एक ही रेखा में प्रतीत हों। यदि अब इन विन्दुओं 'पफ' और 'भब' को मिला कर बढ़ाओ तो ये रेखाएं त्रिपार्श्व से क्रमशः 'ट' और 'ठ' पर मिलती हैं। अधिक बढ़ाने पर ये

परस्पर 'च' पर एक दूसरी को काटती हैं। यदि 'पफ' आपात किरण हो तो 'बभ' निर्गत किरण होगी और टठ त्रिपार्श्व के भीतर वर्त्तित किरण। वर्त्तन के पीछे **निर्गत किरण** (Emergent ray) न तो आपात किरण की ही रेखा में रहती है और न उसके समानान्तर ही। किन्तु यह 'बभ' त्रिपार्श्व के आधार 'खग' की ओर मुड़ जाती है। चित्र में 'टठ' वर्त्तित किरण (Refracted ray) है।




चित्र १०२—त्रिपार्श्व में वर्त्तित तथा निर्गत किरणें।

**विचलन का कोण** ( angle of deviation )—चित्र में 'पफ' आपात किरण है और ठभ निर्गत किरण। इन दोनों दिशाओं में जो भेद होता है अर्थात् ∠अचभ को विचलन का कोण कहते हैं। ∠क त्रिपार्श्व का कोण है। यदि आपात तथा निर्गम विन्दु पर लम्ब खींचे जावें तो ∠ल' टफ आपात कोण होगा ; ∠ठटल वर्त्तित कोण और ∠नठब निर्गत कोण बनेंगे। त्रिपार्श्व के कोण और विचलन के कोण का योग सदा आपात और निर्गत कोणों के योग के बराबर होता है अर्थात् ∠क + ∠ च = ∠ल' ट फ + ∠नठभ।

**अल्पतम विचलन का कोण** ( angle of minimum deviation )—यह बात सरलता से दिखाई जा सकती है कि विचलन का कोण निम्न बातों पर निर्भर रहता है :—

( १ ) त्रिपार्श्व के वर्त्तक कोण पर,

( २ ) त्रिपार्श्व के पदार्थ पर,

( ३ ) त्रिपार्श्व में जाती हुई किरण के आपात कोण पर, और
( ४ ) आपतित प्रकाश के स्वभाव पर।

त्रिपार्श्व में यह बात सरलता के सिद्ध कर सकते हैं कि विचलन के न्यूनातिन्यून कोण बनने के हेतु प्रत्येक त्रिपार्श्व में आपतन का एक विशेष कोण बनेगा। प्रयोगों से और गणित से यह भी बात सिद्ध हो सकती है कि त्रिपार्श्व में जब अल्पतम विचलन का कोण बनता है तो आपात और निर्गत कोण परस्पर बराबर हुआ करते हैं। यदि त्रिपार्श्व के त्रिभुज समभुजीय हों तो विचलन का न्यूनातिन्यून कोण बनते समय वर्त्तित किरण सदा आधार के समानान्तर रहती है।

प्रयोग ८०—एक कागज़ पर त्रिपार्श्व 'कखग' रक्खो और एक ओर दो पिन 'पफ' लगा दो। इन पिनों को दूसरे फलक 'कग' से देखो (चित्र १०२)। त्रिपार्श्व को 'क' कोर को अक्ष मान कर दोनों ओर को घुमाओ। देखोगे कि दोनों पिनों को एक ही दिशा में देखने के लिये तुम्हें अपने नेत्रों की स्थिति भी बदलनी पड़ती है। यह बात प्रत्यक्ष है कि 'पफ' को देखने के हेतु ज्यों ज्यों तुम अपने नेत्र 'क' की ओर ले जाते हो त्यों त्यों विचलन का कोण घटता जाता है क्योंकि रेखा 'पफ' हर बार एक ही दिशा में होती है। अन्त में त्रिपार्श्व को दोनों ओर घुमाने से त्रिपार्श्व की एक ऐसी स्थिति मिलेगी जिसमें तुम्हारे नेत्र अधिक से अधिक 'क' की ओर रहते हुये भी दोनों पिन एक ही दिशा में परस्पर एक दूसरे को ढकती हुई प्रतीत होंगी; चाहे त्रिपार्श्व को अब बाईं ओर को घुमाओ चाहे दाहिनी ओर को प्रत्येक दशा में विचलन का कोण 'च' बड़ा होने लगता है। इसी दशा में जब कि 'ठभ' अधिक से अधिक 'फ न' की ओर ही रहती है विचलन का कोण 'न च ठ' न्यूनातिन्यून बनता है। इस दशा को भली प्रकार से देख

कर 'व भ' दो अन्य पिन ऐसे लगा दो कि चारों पिन एक ही दिशा में प्रतीत हों। फिर त्रिपार्श्व को हटा कर 'प फ', 'व भ', और 'ट ठ' विन्दुओं को जोड़ दो। चित्र में देखने से प्रतीत होगा कि 'फ ठ' त्रिपार्श्व के आधार 'ख ग' के समानान्तर रेखा होती हैं। विचलन के कोण 'च' को नाप लो और 'फ' तथा 'ठ' पर लम्ब खींच कर आपात और निर्गत कोणों को भी नाप लो। निस्सन्देह लम्बों का मध्यस्थ कोण त्रिपार्श्व के कोण के बराबर होगा। चित्र से यह भी विदित है कि लम्बों के बीच कोण जो 'क' कोण के बराबर होता है वह $\angle$ ठ ट ल और 'ट ठ ल' कोणों के बराबर है अर्थात् और नापने से वर्त्तित व $= \frac{क}{२}$

परन्तु आपात तथा वर्त्तित कोण परस्पर बराबर होते हैं

$\therefore \angle$ च ट ल = च ट ल

और कोण च = २ ( अ—व ), यदि 'अ' आपात कोण हो;

= २ अ—क

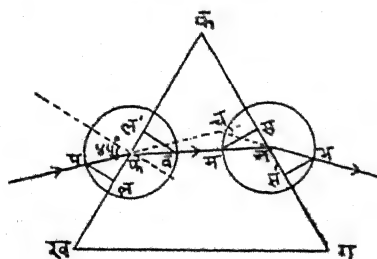
$$\therefore अ = \frac{च + क}{२}$$

परन्तु यह तुम्हें मालूम ही है कि $\mu =$

$$\frac{\text{त्रिज्या 'अ'}}{\text{त्रिज्या 'व'}} = \frac{\text{त्रिज्या}\ \frac{च+क}{२}}{\text{त्रिज्या}\ \frac{क}{२}}$$

इस भांति अल्पतम विचलन और त्रिपार्श्व कोणों की त्रिज्या से वर्त्तनाङ्क ज्ञात हो जाता है। त्रिपार्श्व का कोण २ चरमकोण से बड़ा बनता है तो प्रकाश दूसरे तल से नहीं निकला करता किन्तु प्रकाश का त्रिपार्श्व के भीतर पूर्ण परावर्त्तन हो जाया करता है।

**उदाहरण**—कांच के एक त्रिपार्श्व का कोण ५४० है। इसके एक फलक पर किरणावली ४५° का कोण बनाते हुए पड़ रही है। काँच का वर्त्तनाङ्क $\frac{३}{२}$ है चित्र द्वारा निर्गत किरण का

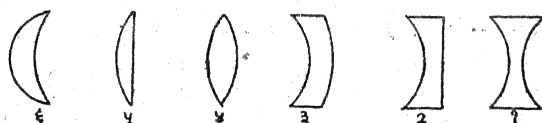


चित्र १०३—त्रिपार्श्व में वर्त्तित किरण खींचना।

पथ निश्चय करो और विचलन के कोण को नापो। मान लो 'फ' आपातन विन्दु है। काँच में वर्त्तित किरण को खींचने के हेतु 'फ' को केन्द्र मान कर कोई एक वृत्त खींचो। मान लो यह आपात किरण को 'प' पर काटता है। 'प' से त्रिपार्श्व के इस फलक पर लम्ब 'पल' खींच लो। फ के दूसरी ओर एक विन्दु 'ल'' ऐसी लो ताकि फल' = $\frac{२}{३}$ फल। 'ल'' से एक लम्ब वृत्त को व पर काटता हुआ खींचो। 'फव' को मिला कर त्रिपार्श्व के दूसरे फलक तक बढ़ा दो। इस प्रकार त्रिपार्श्व में 'फ न' वर्त्तित किरणावली बन जाती है। 'न' से वायु में किरणावली का फिर वर्त्तन होगा। निर्गत किरण का पथ निकालने के लिये 'न' को केन्द्र मान कर वर्त्तित किरण को 'म' पर काटता हुआ एक अन्य वृत्त खींचो और म से त्रिपार्श्व के इस फलक पर एक लम्ब 'मस' डाल दो। 'न' से 'स' की दूसरी ओर फलक पर स' एक ऐसा विन्दु लो ताकि नस' = $\frac{३}{२}$ नस। स' से इस फलक पर बाहर की ओर वृत्त

को 'भ' पर काटता हुआ एक लम्ब और खींच लो। 'नभ' को मिला कर बढ़ा दो। नभ ही निर्गत किरण का पथ होगा। नापने से ज्ञात होता है कि विचलित कोण च = ५०°।

ताल (lens)—यह बात अब तुम सब लोग जान गये हो कि जब प्रकाश का वर्त्तन त्रिपार्श्व में होता है तो प्रकाश त्रिपार्श्व के आधार की ओर विचलित हो जाया करता है। अब यह देखना है कि प्रकाश का वर्त्तन पारदर्शक पदार्थ के दो गोलाकार तल से बन्धे हुए भाग में किस प्रकार होता है। पदार्थ के ऐसे भाग को जिसके दोनों तल गोलाकार हों ताल (lens) कहते हैं। ताल की आकृतियाँ कई प्रकार की निम्नलिखित चित्रानुसार १ युगल नतोदर, २ समनत नतदोदर, ३ उन्नतोदर, ४ द्युन्नतोदर, ५ समोन्नतोदर, ६ नतोन्नतोदर हो सकती हैं :—

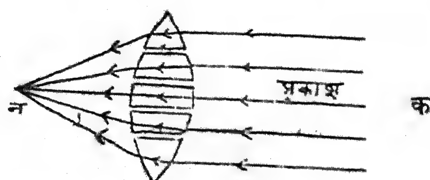



चित्र १०४—भिन्न भिन्न प्रकार के ताल।

**नतोदर तालों में पेट सदा पतला परिवृति मोटी और उन्नतोदरतालों में इसके विपरीत पेट मोटा और परिवृत्ति अपेक्षाकृत पतली हुआ करती हैं।**

सरलता के लिये हम पहिले द्युन्नतोदर ( double convex ) ताल को लेते हैं। इसमें रश्मि समूह का वर्त्तन ठीक उसी सिद्धान्त पर होता है जैसा कि त्रिपार्श्वों में। १०५ चित्रानुसार यदि ताल को मध्य में से विभाजित करें तो ताल के सब

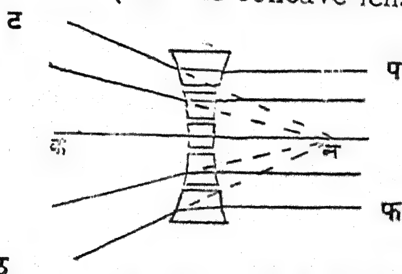
टुकड़े त्रिपार्श्व के भागों में बंटे हुए प्रतीत होने लगते हैं। चित्र में जो ऊपर के टुकड़े हैं उनके आधार नीचे की ओर हैं और जो नीचे की ओर हैं उनके आधार ऊपर की ओर। यदि रश्मि-समूह ताल में ऊपर की ओर पड़ता है तो निर्गत किरणें नीचे की ओर (चित्र १०५) मुड़ेंगी। इस प्रकार यह बात सम्भव है कि यदि ताल के एक तलपर समानान्तर किरणें




चित्र १०४—युग्नतोदर ताल में समानान्तर किरणावली का वर्त्तन।

पड़ें तो दूसरे तल से वे निकल कर एक ही विन्दु पर संसृत (Converge) हो जायं। जिस विन्दु पर निर्गत किरणें केन्द्रीभूत होती है उस विन्दु को नाभि (focus) कहते हैं।

युगल नतोदर तालों ( double concave lenses ) में परि-

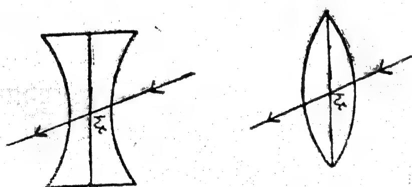



चित्र १०६—युगल नतोदर ताल में समानान्तर किरणावली का निर्गम।

वृत्ति पर मोटाई हुआ करती है और प्रकाश के वर्त्तन में

इसका प्रभाव ठीक उसी भाँति होगा जैसे कि त्रिपार्श्वों को उनके मूलाधारों को बाहर की ओर करके परस्पर मिला कर रखने से। इस दशा में यदि ताल के एक तल पर समानान्तर किरणावली 'पफ' से पड़े, तो निर्गत किरणों का विचलन त्रिपार्श्वों के आधारों की ओर को होगा और (चित्र १०६) वे अपसृत (diverge) हो जायंगी। देखने से ऐसा प्रतीत होगा कि किरणें किसी विन्दु विशेष 'न' से आ रही हैं और आपतित किरणावली समानान्तर नहीं है। जिस विन्दु 'न' से निर्गत किरणावली आती हुई दृष्टिगोचर होती है उसको नतोदर ताल की नाभि (virtual focus) कहते हैं।

**परिभाषाएं**—जो रेखा द्युन्नतोदर अथवा युगलनतोदर तालों में दोनों तलों की वक्रता के केन्द्रों को मिलाने से बनती है उस रेखा 'मक' को मुख्याक्ष कहते हैं। ताल के केन्द्र से




चित्र १०७—तालों के दृक्केन्द्र।

नाभि की दूरी को नाभिगतअन्तर कहते हैं। प्रत्येक ताल में दो तल होते हैं इसलिये ताल के केन्द्र के दोनों ओर मुख्याक्ष पर एक ही दूरी पर प्रत्येक ताल की दो मुख्य नाभि होती हैं। यह प्रत्यक्ष है कि नतोदर दर्पणों में मुख्य नाभि पर किरणावली वर्त्तन पश्चात् वास्तव में केन्द्रीभूत नहीं होता किन्तु केवल मुख्यनाभि से अपसृत होती

प्रतीत होती है अतएव नतोदर दर्पणों में मुख्यनाभि केवल काल्पनिक होती है। द्युन्नतोदर ताल में मुख्यनाभि जिधर से प्रकाश आता है उसके दूसरी ओर होती है अतैव इसमें मुख्यनाभ्यान्तर्गत दूरी सदा ऋणात्मक होती है। ताल से जितनी भी दूरियाँ नापी जाती हैं वे सब ताल के दृक्केन्द्र 'द' से नापी जाती हैं। दृक्केन्द्र (Optical centre) ताल के मुख्याक्ष पर ताल में एक ऐसा विन्दु होता है कि यदि इसमें से होकर कोई भी किरण जाती है तो आपात और निर्गत किरणें समानान्तर होती हैं। परन्तु पतले तालों में यह मान सकते हैं कि जो किरण उसके दृक्केन्द्र में को होकर जाती है वह सीधी अपने ही पथ पर चली जाती है।

तालों द्वारा प्रतिरूप निश्चित करने के हेतु दो नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है :—

(१) प्रथम तो यह कि मुख्याक्ष के सामानान्तर किरण वर्त्तन पश्चात् द्युन्नतोदर ताल में मुख्य किरण नाभि में होकर जाती हैं। व जो किरण मुख्यनाभि से जाकर ताल पर पड़ती हैं वे मुख्याक्ष के समानान्तर निर्गत होती हैं।

(२) दूसरे वह किरण जो ताल के दृक्केन्द्र में को होकर जाती हैं, वर्त्तन पश्चात् अपने पथ से विचलित नहीं होतीं।

इनके अतिरिक्त प्रयोगों की सफलता के लिये यह भी आवश्यक है कि जिस स्थान पर प्रकाश सम्वन्धी प्रयोग किये जायँ वहाँ प्रकाश नहीं होना चाहिये। यदि उन्नतोदर ताल मध्य में परिवृत्ति (periphery) की अपेक्षा अधिक

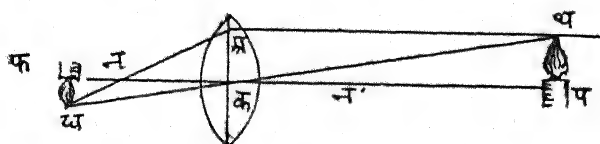
मोटा होता है तो मुख्य नाभि ( Principal focus ) उतनी ही अधिक सन्निकट होगी ।

(१) प्रयोग ८१—किसी द्युन्नतोदर ताल को सूर्य के सम्मुख ले जाओ और ताल के दूसरी ओर पर्दे को ले जाओ। देखोगे कि पर्दे पर सूर्य का प्रतिरूप बनता है। ज्यों ज्यों चित्र छोटा होता जाता है त्यों त्यों इसके प्रकाश की तीव्रता अधिक होती जाती है यहाँ तक कि नेत्र पर्दे पर प्रतिरूप को देख भी नहीं सकते। पर्दे को ठीक बिठलाने पर प्रतिरूप एक विन्दु मात्र रह जाता है और यदि इस दीप्तिमान ( चित्र १०५ ) विन्दु पर कोई पदार्थ रक्खो तो वह इतना गर्म हो जाता है कि जलने लगता है। इसका कारण तुम्हें ताप के अन्तिम अध्याय को पढ़ कर अवश्य ज्ञात हो गया होगा। वास्तव में सूर्य से ताल की अधिक दूरी होने के कारण चित्रानुसार प्रकाश का रश्मि-समूह मुख्याक्ष के लगभग समानान्तर ही आता है। नियमानुसार वर्त्तन पश्चात् ये रश्मिसमूह मुख्याक्ष पर ( किरण नाभि पर ) केन्द्रीभूत हो जाता है, और इसी स्थान पर विन्दु रूप प्रतिरूप बन जाता है। मापक द्वारा ताल के दृकेन्द्र से नाभ्यान्तर्गत दूरी जान सकते हैं। इस प्रयोग से प्रत्यक्ष है कि यदि प्रकाशमान पदार्थ अत्यन्त दूरी पर हो तो इसका प्रतिरूप मुख्यनाभि (focus) पर विन्दुरूप बनता यह प्रतिरुप अतिसूक्ष्म और वास्तविक होता है।

अपने कमरे में खिड़की के सम्मुख किसी द्युन्नतोदर ताल को रक्खो और उसके पीछे एक पर्दा निकट ही खड़ा कर दो। कमरे के अन्य दरवाजों को बन्द करके पर्दे को आगे पीछे सरकाओ। देखोगे कि पर्दे पर खिड़की के बाहर वाले दृष्य का बड़ा मनोहर

प्रतिरूप पर्दे पर बन जाता है। फोटो खींचने वाले इसी सिद्धान्त से द्युन्नतोदर ताल द्वारा ही फोटो खींचा करते हैं।

प्रयोग ८२—यह प्रयोग सूर्य के अभाव में प्रयोगशाला में दीपक द्वारा भी देख सकते हो। एक द्युन्नतोदर ताल को एक उपस्तम्भ में खड़ा कर लो और इसके सम्मुख मुख्याक्ष पर कोई दीपक 'पथ' रख लो। दूसरी ओर पर्दा ताल के निकट ले जाओ; तुम देखोगे कि दीपक का पर्दे पर छोटा सा बड़ा मनोहर उलटा चित्र 'फध'बन जाता है। फिर दीपक को सहज सहज ताल के कुछ निकट ले आओ देखोगे कि पर्दे पर प्रकाश तो पड़ता




चित्र १०८—ताल द्वारा दूर वाले पदार्थ का प्रतिरूप।

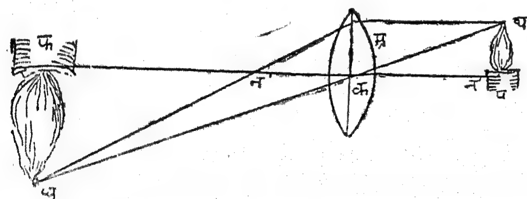
है किन्तु प्रतिरूप स्फुट और पूर्णतया व्यक्त नहीं होता। यदि पर्दे को ताल से और दूर ले जाओ तो प्रतिरूप बिलकुल स्पष्ट (well defined) हो जावेगा।

चित्र में थ से दो किरणें 'थअ' मुख्याक्ष के समानान्तर और 'थक' ताल के दृक्केन्द्र में ताल पर पड़ती हैं। 'थअ' वर्त्तन पश्चात् मुख्य नाभि 'न' में जाती है और थक अपने ही पथ पर चली जाती है। ये दोनों ध पर मिलती हैं। इस भाँति 'थ' का प्रतिरूप 'ध' पर बनता है और दीपक 'पथ' प्रतिरूप में 'फध' की नाई उलटा (Inverted) अपेक्षाकृत छोटा और वास्तविक बन जाता है। परन्तु 'पथ' को ताल की ओर लाने से प्रतिरूप के लिये पर्दे

ताल से दूर ले जाने की आवश्यकता होती है किन्तु प्रतिरूप दीर्घाकार ( Magnified ) हो जाता है।

(२) प्रयोग ८३—दीपक को ताल से इतना निकट ले आओ कि प्रतिरूप का आकार लगभग दीपक की ही बराबर हो। ताल से दीपक और जब प्रतिरूप पूर्णतया स्पष्ट हो, प्रतिरूप की दूरियों को मीटरमापक से नाप लो। यदि प्रतिरूप बिलकुल दीपक के बराबर हो तो दीपक और प्रतिरूप की ताल से बिलकुल एक सी ही दूरियाँ होंगी। यही नहीं किन्तु यह दूरी नाभ्यान्तर्गत दूरी ( Focal length ) से दोगुणी होती है। इस प्रयोग से यह तात्पर्य निकला कि **जब दीपक ताल से नाभि की अपेक्षा दुगनी दूरी पर होता है तो प्रतिरूप ( Image ) भी उतनी ही दूरी पर उसी आकार का उलटा बनता है।**

(३) प्रयोग ८४—इसी प्रकार दीपक 'पथ' को सहज २ ताल की नाभि 'न' तक ले जाओ। इस दशा में प्रतिरूप को पर्दे पर

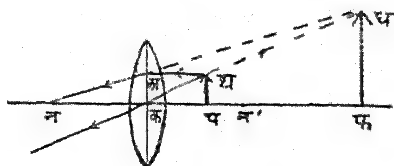



चित्र १०९—ताल द्वारा 'न' से आगे वाले पदार्थ का प्रतिरूप।

व्यक्त और स्फुट करने से चित्रानुसार प्रतिरूप वास्तविक और उलटा बनता है परन्तु दीर्घाकार होता जाता है। यहाँ तक कि नाभि पर आने से प्रतिरूप अति दीर्घाकार

( Magnified ) और ताल से अत्यन्त दूरी पर बनेगा। इस दशा में प्रतिरूप को पर्दे पर स्फुटता से नहीं ले सकते, प्रतिरूप अति धुंधला रह जाता है। चित्र में प्रतिरूप साधारण उपरोक्त नियमों के अनुसार ही खींचा जा सकता है। जब पदार्थ मुख्यनाभि पर रहता है तो निर्गत किरणावली ( Emergent rays ) समानान्तर होने के कारण अनन्त दूरी पर मिलेंगी।

(४) प्रयोग ८५— दीपक को ताल के सन्निकट रक्खो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि दीपक का प्रतिरूप पर्दे पर कहीं भी नहीं बनता। इस दशा में चित्रानुसार निर्गत किरणें अपसृत




चित्र ११०—धुन्नतोदर ताल द्वारा काल्पनिक प्रतिरूप।

होती हैं और बढ़ाने पर पर्दे की ओर कहीं नहीं मिलतीं किन्तु जब पदार्थ की ओर ही पीछे को बढ़ाई जाती हैं तो मिल जाती हैं। वास्तव में किरणसमूह लौट कर पदार्थ की ओर नहीं जा सकता। इस भाँति 'पथ' का प्रतिरूप उसी ओर 'फध' अपेक्षाकृत बड़ा, सीधा और काल्पनिक बनता है। संक्षेप में पदार्थ की स्थिति व तदनुसार प्रतिरूप की आकृति अधोलिखित पाटी से देख सकते हैं :—

| | पदार्थ की स्थितिः | प्रतिरूप की स्थितिः | प्रतिरूप का आकारः | प्रतिरूप की आकृतिः |
|---|---|---|---|---|
| १ | अनन्त दूरी पर | मुख्य नाभि पर | विन्दु रूप | उलटी, वास्तविक |
| २ | नाभ्यान्तर्गत की दुगुनी दूरी से परे | नाभि और नाभ्यान्तर्गत दूरी के दुगुने के मध्य | अपेक्षाकृत छोटा | उलटी, वास्तविक |
| ३ | नाभिगतान्तर के दुगुने पर | नाभिगतान्तर के दुगुने पर | पदार्थ के बराबर | उलटी, वास्तविक |
| ४ | नाभि और नाभ्यान्तर्गत दूरी के दुगने के मध्य। | नाभ्यान्तर्गत की दुगुनी दूरी से परे | अपेक्षाकृत दीर्घ | उलटी, वास्तविक |
| ५ | मुख्य नाभि पर | अनन्त दूरी पर | अति दीर्घाकार | उलटी, वास्तविक |
| ६ | ताल से नाभि तक | ताल से पदार्थ की ही ओर | अपेक्षाकृत दीर्घ | सीधी काल्पनिक |

प्रयोग ८६—**नतोदरताल**—किसी नतोदर ताल (Concave lens) को एक उपस्तम्भ में खड़ा करो और उसके सम्मुख दीपक 'पथ' रख दो। दूसरी ओर पर्दे को आगे पीछे सरकाओ। तुम्हें विदित होगा कि उन्नतोदर ताल की नाईं इसमें प्रतिरूप नहीं बनता। अब नतोदर ताल द्वारा अपने सामने के पदार्थों को

देखो, तुम्हें पदार्थ छोटे और सीधे प्रतीत होंगे। इसी प्रकार एक उन्नतोदर ताल लेकर अपनी पुस्तक के अक्षरों को उसके द्वारा देखो; तुम्हें अक्षर दीर्घाकार जान पड़ेंगे। नतोदर ताल द्वारा कोई वास्तविक प्रतिरूप नहीं बनता यह बात निम्नाङ्कित चित्र से भली प्रकार दर्शा सकते हैं।

नतोदर ताल द्वारा वर्त्तन पश्चात् मुख्याक्ष के समानान्तर आती हुई किरणावली अपसृत हो जाती है। मान लो चित्र में किसी नतोदर ताल के सम्मुख कोई पदार्थ 'पथ' रक्खा

चित्र १११—युगलनतोदर ताल द्वारा पदार्थ का प्रतिरूप।

हुआ हैं। 'थ' से दो किरणें 'थअ' और 'थध' ताल पर आकर पड़ती है। वर्त्तन पश्चात् ये किरणें बाणों की दिशा में 'अस' और 'म' की ओर क्रमशः चली जाती हैं। 'अस' किरण ताल की मुख्य नाभि 'न' से आती हुई प्रतीत होगी। ये दोनों किरणें परस्पर ताल के पिछली ही ओर (पदार्थ की ही ओर) बढ़ाने पर मिलती हैं। तदनुसार 'पथ' का एक काल्पनिक प्रतिरूप 'फध' बन जाता है। यह सीधा, अपेक्षाकृत छोटा और ताल की नाभि के अन्तर्गत ही होता है। इस प्रकार पदार्थ ताल से कितनी ही दूरी पर क्यों न रक्खा

जाय, काल्पनिक प्रतिरूप ( Virtual image ) इसी रीति से इन्हीं गुणों वाला बनता है।

नतोदर और उन्नतोदर तालों में भेद और उनका पहचान :—

(१) उन्नतोदर ताल मध्य में से मोटे और परिवृत्ति पर पतले होते हैं। नतोदर ताल इन बातों में बिलकुल विपरीत होते हैं।

(२) ताल को किसी लिखे हुए पृष्ठ पर देखने से अक्षर बड़े प्रतीत हों तो ताल उन्नतोदर है अथवा नतोदर।

(३) ताल के मध्य से किसी दूरवाले पदार्थ को देखो और अपने सम्मुख दायें व बायें को हटाओ। यदि पदार्थ उसी ओर को हटता हुआ दृष्टिगोचर हो जिधर हम ताल को हटाते हैं तो समझ लेना चाहिये कि ताल नतोदर है और यदि पदार्थ ताल से दूसरी ओर को हटता हुआ प्रतीत हो तो ताल उन्नतोदर होता है। सोचो इन घटनाओं के क्या कारण हो सकते हैं ? चश्मेवाले अपने तालों की इसी भाँति परीक्षा करके खरीदारों को देते हैं। यह प्रत्यक्ष ही है कि समतल दर्पणों में इनमें से कोई भी विशेषता प्रकट नहीं हो सकती।

तालों में 'न', 'प', और 'फ' का सम्बन्ध और समीकरण :—

(१) उन्नतोदर ताल :—चित्र ११० में 'पथ' एक उन्नतोदर ताल के सम्मुख पदार्थ है और 'फध' उसका प्रतिरूप बनता है।

मान लो कप = प, कफ = फ और कन = न यहाँ पर △ थ प क △ ध फ क परस्पर समान हैं अतएव

$$\frac{\text{पथ}}{\text{फध}} = \frac{\text{कप}}{\text{कफ}} = \frac{\text{प}}{\text{फ}}$$

परन्तु $\frac{पथ}{फध} = \frac{कअ}{फध} = \frac{कन}{फन} = \frac{कन}{फक + कन} = \frac{न}{फ + न}$

$\therefore \frac{प}{फ} = \frac{न}{फ + न}$ इसको सरल करने से

$पफ + पन = फन$

प फ न से भाग देने पर

$$\frac{१}{-फ} + \frac{१}{प} = \frac{१}{न}$$

किन्तु चित्र से विदित है कि न संख्या है।

$\therefore$ समीकरण $\frac{१}{फ} - \frac{१}{प} = \frac{१}{न}$ हो जाती है।

यदि हम पदार्थ को युगलनतोदर ताल के सम्मुख रक्खें तो ११२ चित्रानुसार प्रतिरूप काल्पनिक बनता है। चित्र में 'पथ' का 'फध' प्रतिरूप है।

मान लो कप = प, कफ = फ और कन = न

तो क फ ध त्रिभुज क प थ त्रिभुज के और △ न फ ध △ न क अ के समान हैं अतएव

$\frac{थप}{धफ} = \frac{कप}{कफ}$ या $\frac{नक}{नफ}$ अर्थात् संकेतों में

$\frac{प}{फ} = \frac{न}{न - फ}$ या इसको सरल करने पर

$$न प - फ प = फ न$$

इस समीकरण को 'पफन' से भाग देने पर फिर वही सूत्र $\frac{१}{फ} - \frac{१}{प} = \frac{१}{न}$ मिल जाता है।

चित्रों से यह भी प्रत्यक्ष है कि

प्रतिरूप की अभिवर्धकता $\frac{\text{पथ}}{\text{फध}} = \frac{\text{कप}}{\text{कफ}}$ व $\frac{\text{प}}{\text{फ}}$ अर्थात् 'फध' $= \frac{\text{फ}}{\text{प}} \times$ पथ

इस भाँति यही समीकरण उन्नतोदर और नतोदर दोनों प्रकार के तालों ( Convex and Concave lenses ) में लागू होती है।

दर्पणों के अध्याय में तुम जान ही चुके हो कि सम्बद्ध नाभि किसको कहते हैं। उन्नतोदर तालों में भी यह बात तुम प्रयोग द्वारा सरलता से देख सकते हो कि पदार्थ और उसके प्रतिरूप की स्थितियाँ बिना किसी अन्य भेद के परस्पर परिवर्त्तनीय होती हैं। हाँ, इस प्रयोग में किरणावली की दिशा में अवश्य विरुद्धता आ जाती है। ऐसी स्थितियों को सम्बद्ध नाभि (Conjugate foci) कहते हैं।

### तालों की नाभ्यान्तर्गत दूरी निकालना :—

(१) उन्नतोदर तालों में नाभ्यान्तर्गत दूरी की सब से सरल निर्धारण विधि यह है कि ताल को सूर्य के समक्ष रख कर ताल के पीछे से पर्दा सहज सहज पीछे को हटाओ। जिस स्थान पर सूर्य का प्रतिरूप अधिकात्यधिक स्पष्ट होता है वही ताल की किरणनाभि होती है। मीटरमापक द्वारा ताल से नाभि की दूरी ( Focal length ) को निश्चय कर सकते हैं।

(२) $\frac{१}{\text{फ}} - \frac{१}{\text{प}} = \frac{१}{\text{न}}$ समीकरण द्वारा, यदि इनमें से दो संख्याएं विदित हों, तो तीसरी 'न' भी निश्चित हो सकती है। 'प' और 'फ' को साधारणतया प्रयोग से मालूम कर सकते हैं। प्रयोग में ज्यों ज्यों दीपक को ताल के

सन्निकट लाते हैं त्यों त्यों उसकी प्रतिमूर्त्ति की स्थिति तथा आकृति बदलती जाती है। यदि ताल उन्नतोदर हो तो नाभ्यान्तर्गत दूरी ऋणात्मक ( negative ) होती है। यदि सूर्य को पदार्थ मान लें तो 'प' संख्या अपरिमित हो जाती है और $\frac{१}{प} = ०$ हो जाता है। इस दशा में समीकरण $\frac{१}{फ} = \frac{१}{न}$ हो जाता है अर्थात् ( फ= −न ) प्रतिरूप मुख्यनाभि पर विन्दुरूप बनता है।

जब दीपक नाभ्यान्तर्गत दूरी से दुगुना दूरी पर होता है उस अवस्था में समीकरण $\frac{१}{फ} - \frac{१}{२ न} = -\frac{१}{न}$ हो जाता है। अतएव फ= −२ न और प्रतिरूप वास्तविक ( पदार्थ से ताल की दूसरी ओर ), उलटा, पदार्थ को बराबर और नाभिगतान्तर से दुगुनी दूरीपर बनता है। इस भाँति समझ सकते हो कि उन्नतोदर ताल में पदार्थ और उसके प्रतिरूप के मध्य न्यूनातिन्यून दूरी ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी से चौगुनी होगी।

**चश्मेवाले नाभिगतान्तर के व्युत्क्रान्त को डायोप्टर कहते हैं और डायोप्टर (Dioptre) द्वारा ही ताल की शक्ति नापते हैं।** जिस ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी १ मीटर होती है तो उस ताल की शक्ति १ डायोप्टर होती है। उन्नतोदर ताल की शक्ति धनात्मक मानी जाती है और नतोदर तालों की शक्ति ऋणात्मक।

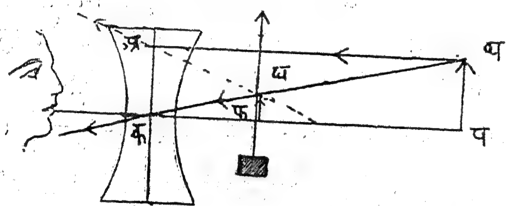
इस प्रकार किसी ताल की शक्ति

$$= \frac{१००}{\text{शतांशमीटर में ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी}}।$$

**(३) प्रयोग ८७—नतोदर ताल का नाभिगतान्तर निर्णय :—**

इष्ट नतोदर ताल के सम्मुख लम्बे उपस्तंभ ( मान लो रिटार्ट

उपस्तम्भ ) 'पथ' को किसी लम्बी मेज़ के एक किनारे पर खड़ा कर दो और ताल के मध्य दूसरी ओर से इस को उपस्तम्भ देखो। यह उपस्तम्भ बारीक सूई की नाईं दृष्टि-गोचर होगा। यहां इसका काल्पनिक ( Virtual ) प्रतिरूप




चित्र ११२—काल्पनिक प्रतिरूप की स्थिति निर्णय विधि।

है और उपस्तम्भ की ओर ही को बनता है। नतोदर ताल के निकट ही एक और ऊँची सलाई 'फध' उसी ओर खड़ी करो जिधर उपस्तम्भ हो। दूसरी ओर से उपस्तम्भ के प्रतिरूप को और ताल के ऊपर से सलाई को देखो। सलाई को आगे पीछे सरका कर ऐसे स्थित करो कि उपस्तम्भ का ताल के मध्य से प्रतिरूप और ताल के ऊपर से सलाई ठीक एक ही रेखा में प्रतीत हों। इस दशा में उपस्तम्भ का प्रतिरूप ठीक उसी स्थान पर बनता है जिस स्थान पर सलाई खड़ी है। ताल से उपस्तम्भ तथा सलाई की दूरियों को $\frac{१}{फ}-\frac{१}{प}=\frac{१}{न}$ द्वारा न ( Focal length ) की गणना कर लो।

**(४) नतोदर तालों की नाभ्यान्तर्गत दूरी निकालने की एक और विधि है।** यदि किसी छोटे नाभिगतान्तर वाले उन्नतोदर ताल को नतोदर से मिला दें तो दोनों के संयोग

का व्यवहार भी एक उन्नतोदर ताल की भाँति होगा। यदि केवल उन्नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी किसी ऊपर बताई हुई रीति से निर्णय कर लो, और दोनों के संयोग की भी किसी एक रीति से नाभ्यान्तर्गत दूरी निकाल लो तो केवल नतोदर ताल की भी नाभ्यान्तर्गत दूरी निकल सकती है। मान लो केवल उन्नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी 'द' है यदि दोनों संयोगिक तालों कि नाभ्यान्तर्गत दूरी 'न' हो तो केवल नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी $= \frac{१}{न} - \frac{१}{द}$ ।

इस प्रयोग में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि समीकरण में 'न' और 'द' दोनों ही संख्याएँ ऋणात्मक होंगी।

प्रतिरूप का अभिवर्धन (Magnification)—यह तुम्हें पहले ही से ज्ञात है कि प्रतिरूप की आकारवृद्धि $\frac{फ}{प}$ अनुपात से निकाल सकते हैं, परन्तु कभी कभी आकारवृद्धि को 'न' औ 'प' पदों में निकालने की भी आवश्यकता पड़ती है। इसके हेतु साधारण समीकरण ( Equation ) द्वारा भी आकारवृद्धि को गणना कर सकते हैं।

क्योंकि $\frac{१}{न} = \frac{१}{फ} - \frac{१}{प}$

$$\therefore \frac{प}{न} = \frac{प}{फ} - १ \text{ या } \frac{प}{फ} = \frac{प+न}{न}$$

∴ इस प्रकार पदार्थ की अपेक्षा आकारवृद्धि

$$= \frac{फ}{प} = \frac{न}{प+न}$$

उदाहरण १—किसी उन्नतोदर ताल का नाभिगतान्तर ५० शतांश मीटर है। एक ५ शतांशमीटर लम्बे पदार्थ के प्रति-

रूप के आकार, स्थिति इ. निकालो जब कि पदार्थ ताल से (१) २५ शतांशमीटर (२) ७५ शतांशमीटर और (३) १२५ शतांशमीटर दूरी पर स्थित हो।

(१) ∵ न = −५० और प = २५ शतांशमीटर

इसलिये $\frac{१}{न} = \frac{१}{फ} - \frac{१}{प}$ में स्थानापन्न करने से

$$\frac{१}{फ} = \frac{१}{-५०} + \frac{१}{२५} = \frac{-१+२}{५०} = \frac{१}{५०}$$

अर्थात् ताल से काल्पनिक प्रतिरूप की दूरी पदार्थ की ओर ५० शतांशमीटर हुई और अभिवर्धन

$$\frac{फ}{प} = \frac{५०}{२५} = २$$

∴ प्रतिरूप की लम्बाई १० शतांशमीटर हुई।

(२) दूसरी दशा में: $\frac{१}{फ} = \frac{१}{-५०} + \frac{१}{७५} = -\frac{१}{१५०}$

अर्थात् प्रतिरूप पदार्थ से ताल की दूसरी ओर १५० शतांश-मीटर पर वास्तविक बनेगा और

$$\text{आकारवृद्धि} = \frac{फ}{प} = \frac{१५०}{७५} = २$$

इस दशा में भी प्रतिरूप की लम्बाई = १० शतांशमीटर।

(३) यहाँ समीकरण में स्थानापन्न करने से

$$\frac{१}{फ} = -\frac{१}{५०} + \frac{१}{१२५} = -\frac{३}{२५०}$$

∴ प्रतिरूप पदार्थ से ताल की दूसरी ओर वास्तविक और ८३·३ शतांशमीटर की दूरी पर बनता है। प्रतिरूप का अभिवर्धन (Magnification) $= \frac{फ}{प} = \frac{८३·३}{१२५} = ·६६४$

∴ प्रतिरूप की लम्बाई = ·६६४ × ५ = ३·३२ श. मी.।

उदाहरण २—एक गत्ते के टुकड़े में सूचिकाछिद्र बनाकर उसको किसी तीव्र दीपक के सम्मुख खड़ाकर दिया है। इससे ४९ इंच की दूरी पर एक पर्दा है; तो बताओ एक ६ इंच नाभ्यान्तर्गत दूरीवाले उन्नतोदर ताल को उनके मध्य कहाँ रक्खें कि छिद्र का पूर्ण व्यक्त और स्फुट प्रतिरूप बन जाय।

यह बात दी हुई है कि प + फ = ४९ इंच और न = − ६ इञ्च

प्रतिरूप वास्तविक और छिद्र से ताल की दूसरी ओर बनता है इसलिये ताल से इसकी दूरी को ऋणात्मक मानना चाहिये अतएव : फ = − ( ४९ − प ) और समीकरण में स्थानापन्न करने से $-\frac{१}{४९-प}-\frac{१}{प}=-\frac{१}{६}$

या सरल करने पर $प^२ - ४९ प + २९४ = ०$

$$\text{या} \quad (प - ४२)(प - ७) = ०$$

$$\therefore प = ४२ \text{ इञ्च व } ७ \text{ इञ्च।}$$

इस भाँति छिद्र से ताल को ४२ इञ्च या ७ इञ्च की दूरी पर रखना चाहिये। प्रथम स्थिति में प्रतिरूप अपेक्षाकृत छोटा और दूसरी दशा में विस्तृत ( Magnified ) बनेगा।

उदाहरण ३—पदार्थ से २४ शतांशमीटर नाभिगतान्तर वाले उन्नतोदर ताल को कितनी दूरी पर रखना चाहिये ताकि प्रतिरूप पदार्थ की अपेक्षा तिगुना और वास्तविक बने?

मान लो 'प' और 'फ' पदार्थ और प्रतिरूप की ताल से क्रमशः दूरियाँ हैं तो प्रतिरूप पदार्थ से तिगुना होने के कारण अभिवर्धन = $\frac{फ}{प}$ = ३ परन्तु प्रतिरूप वास्तविक है। इसलिये यह पदार्थ से ताल की दूसरी ओर स्थित होगा फलतः 'फ' ऋणात्मक होगा।

∴ फ = − ३ प और न = − २४

इसलिये समीकरण $\frac{१}{-३प} - \frac{१}{प} = -\frac{१}{२४}$ हो जाती है।

सरल करने पर प = ३२ शतांशमीटर

इसलिये पदार्थ से ताल को ३२ शताँशमीटर की दूरी पर रखना चाहिये। प्रतिरूप ताल से ( ३२ × ३ ) व ९६ शतांशमीटर की दूरी पर बनेगा। ऐसे प्रश्नों में चित्र खींचने से बड़ी सहायता मिला करती है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (५)।

( १ ) त्रिपार्श्व में प्रकाश के जाने पर किरण का वर्त्तन तथा विचलन किन किन बातों पर निर्भर है। क्या ताल में भी विचलन इसी प्रकार होता है।

( २ ) अल्पतम विचलन के कोण से क्या तात्पर्य है। त्रिपार्श्व के अल्पतम विचलन के कोण को जान कर कांच का वर्त्तनाङ्क कैसे जान सकते हैं ?

( ३ ) कांच के एक त्रिपार्श्व में से एक प्रज्वलित मोमबत्ती को देखते हैं। चित्र द्वारा मोमवती से दर्शक के नेत्रों तक किरणावली खींच-कर प्रतिरूप का बनना भली भाँति दिखाओ।

( ४ ) ६०° कोणवाले त्रिपार्श्व के एक फलक पर कोई किरण ३०° के कोण पर पड़ती है तो चित्र द्वारा वर्त्तित और निर्गत किरणों का पथ दर्शाओ। कांच का वर्त्तनांक = $\frac{३}{२}$।

( ५ ) ताल के नाभिगतान्तर से क्या तात्पर्य होता है ? पदार्थ से १०० शतांशमीटर की दूरी पर पदार्थ से दुगुना वास्तविक प्रतिरूप

बनाने की आवश्यकता है तो बताओ कितने नाभिगतान्तर का कैसा ताल, किस स्थिति पर रखना चाहिये ?

( ६ ) मुख्य नाभि और सम्बद्ध नाभि की व्याख्या करो।

( ७ ) उन्नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी निकालने के लिये किसी प्रयोग का वर्णन करो और चित्र द्वारा दिखाओ ताल में किरणें किस भाँति जाती हैं।

( ८ ) यदि कोई ५′ ४″ ऊँचा मनुष्य ६′ नाभिगतान्तर वाले उन्नतोदर ताल से (प) १२′ और (फ) ८′ की दूरी पर हो तो पैमाने पर चित्र खींच कर मनुष्य के प्रतिरूपों की आकृति और स्थिति निर्णय करो।

( ९ ) चित्रों से उन्नतोदर ताल द्वारा (प) वास्तविक बृहदाकार (फ) काल्पनिक बृहदाकार प्रतिरूप कैसे बनते हैं ?

(१०) वास्तविक और काल्पनिक प्रतिरूप में क्या भेद होता है ? चित्र द्वारा दर्शाओ कि विन्दुरूप दीपक से व उन्नतोदर ताल द्वारा प्रकाश की समानान्तर किरणावली कैसे बना सकते हो।

(११) एक २″ ऊँचा दीपक किसी नतोदर ताल से १०″ पर रक्खा है और इसका प्रतिरूप १·५″ इञ्च ऊँचा बनता है, चित्र द्वारा प्रतिरूप की दूरी और ताल का नाभिगतान्तर निर्णय करो।

(१२) नतोदर ताल के लिये न, प, फ सम्बन्धी समीकरण कैसे निकालोगे। चित्र द्वारा इसका निश्चय करो।

(१३) नतोदर दर्पण की नाभ्यान्तर्गत दूरी को कैसे निश्चय करोगे ?

(१४) यदि कोई पदार्थ अनन्त दूरी पर हो तो चित्र द्वारा दिखाओ कि नतोदर ताल से इसका कैसा प्रतिरूप बनेगा।

---

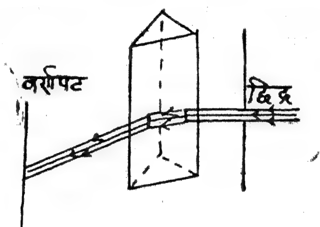
# छठवां अध्याय ।

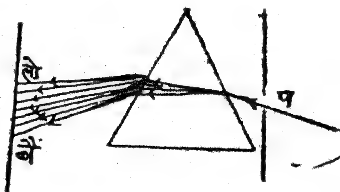
## प्रकाश का वर्णविश्लेषण और सप्तरंजन का वर्णपट ।

यदि बच्चों को कहीं झाड़फानूस इत्यादि का कोई त्रिपार्श्व ( prism ) मिल जाता है तो बहुधा देखा होगा कि वे बारम्बार उसके बीच में देखा करते हैं। सम्भवतः तुम भी जानते होगे कि त्रिपार्श्व में पदार्थ रंग विरंगे दिखाई दिया करते हैं।

**सप्तरंजन का वर्णपट**—(Spectrum band) प्रथमातिप्रथम निउटन साहब ( सन् १६६६ ई० में ) ने त्रिपार्श्व में रंगीन दृश्य का निरीक्षण प्रारम्भ किया था।

प्रयोग ८८—एक लम्बा झिरीदार पर्दा ( Slit ) लेकर खड़ा कर लो। इसके सम्मुख सौर प्रकाश में एक समतल दर्पण रख कर झिरी पर परावर्त्तन द्वारा सूर्य का प्रकाश डालो। इसके दूसरी ओर त्रिपार्श्व को ऐसे रक्खो कि इसकी कोर झिरी के समानान्तर रहे। त्रिपार्श्व के और आगे एक पर्दा खड़ा कर लो। देखोगे कि त्रिपार्श्व के आधार की ओर पर्दे पर प्रकाश का एक वर्णपट (Band of colour) बन जावेगा। इसकी परीक्षा करने से तुम्हें ज्ञात होगा कि वर्णपट में सात रंग हैं, इसको सप्तरंजक ( Spectrum ) भी कहते हैं। इसमें बैंगनी, नील, श्याम,



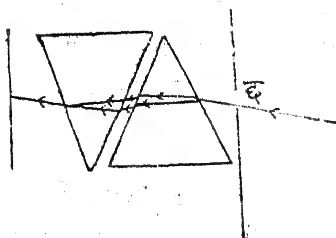

चित्र १०३—सौर प्रकाश की त्रिपार्श्व द्वारा वर्णविभक्ति।

हरित, पीत, नारंगी, और लोहित वर्ण होते हैं। त्रिपार्श्व तो कांच का केवल एक टुकड़ा है तो फिर यह सप्तरंजक किस भाँति बनता है? इसका उत्तर यही हो सकता है, कि सौर प्रकाश जो झिरी द्वारा त्रिपार्श्व के एक फलक पर पड़ता है उसमें सब वर्ण पहले ही से मौजूद हैं किन्तु भिन्न भिन्न रङ्गीन प्रकाशों की भिन्न भिन्न वर्त्तनीयता (refrangibility) के कारण प्रत्येक प्रकार का प्रकाश त्रिपार्श्व में से जाकर विभक्त हो गया। त्रिपार्श्व द्वारा प्रकाश की इस विभक्ति को हम वर्णविश्लेषण (dispersion) कहते हैं। सप्तरंजक की एक ओर बैंगनी रंग होता है और दूसरी ओर लोहित वर्ण, अन्य वर्ण इनके मध्यस्थ रहते हैं। बैंगनी वर्ण के आधार की ओर होने से प्रकट है कि यह सब वर्णों में अधिक वर्त्तनीय (refrangible) है। लोहित और बैंगनी वर्णों के विचलन में लगभग २° का अन्तर होता है।

**सप्त वर्णों का सम्मिलन (Synthesis)** – निउटन साहब ने सौर प्रकाश के वर्णविश्लेषण के अतिरिक्त एक और भी प्रयोग किया था। उन्होंने पहले त्रिपार्श्व की समान एक और त्रिपार्श्व लिया और उसे दूसरे त्रिपार्श्व के पीछे उलटी रीति में रख दिया अर्थात् जिधर प्रथम त्रिपार्श्व की कोर थी उधर दूसरे त्रिपार्श्व का आधार कर दिया। इस दशा में उन्होंने देखा कि वर्ण पट (Spectrum) फिर सफ़ेद हो जाता है।

प्रयोग ८९—एक ही कोण के दो समान त्रिपार्श्व लो। इनमें से एक को प्रकाशमय झिरी के सम्मुख रख दो। पर्दे पर वर्णपट में देखोगे कि प्रकाश सप्तरंजक में विभक्त हो जाता है। पहिले त्रिपार्श्व के पास ही दूसरा त्रिपार्श्व भी ऐसे रख

दो कि इसका आधार प्रथम त्रिपार्श्व की कोर की ओर रहे। पर्दे पर अब देखो कि वर्णवट कैसा बनता है। दूसरे त्रिपार्श्व द्वारा वर्णविश्लेषण पहिले त्रिपार्श्व की अपेक्षा बिलकुल उलटा होता है; फलतः वर्णपट श्वेत हो जाता है। दोनों त्रिपार्श्व मिल कर एक साधारण आयताकार चतुरस्र की भांति व्यवहार करते हैं। अब दोनों त्रिपार्श्वों के मध्य एक गत्ते का पर्दा ऐसे लगाओ कि सप्तरंजक का कुछ भाग रुक जाय। तुम्हें मालूम होगा कि वर्णपट अब श्वेत नहीं रहता किन्तु वर्ण विशेष का हो जाता है।



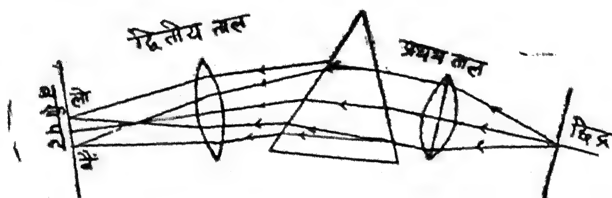

चित्र ११४ — सप्तरंजक का संश्लेषण।

इन सब बातों से निउटन साहब ने यह निश्चय किया कि साधारण प्रकाश सात वर्णों से बना हुआ है।

अब दूसरे त्रिपार्श्व को उलटा न लगा कर वैसे ही लगाओ अर्थात् दोनों की कोर और दोनों के आधार परस्पर एक ही ओर हों तो देखोगे कि वर्त्तन पश्चात् प्रकाश का विचलन (Deviation) पूर्वापेक्षा अधिक हो जाता है और सप्तरंजन और फैल जाता है। इस दशा में अधिक कोई विश्लेषण नहीं होता।

**शुद्ध सप्तरंजक (Pure spectrum)** शुद्ध सप्तरंजक बनाने के हेतु यह आवश्यक है कि प्रकाश के वर्णों को परस्पर मिलने से व उनके सन्निपतन होने से रोक दें और प्रत्येक वर्ण पृथक् पृथक् करके पर्दे पर डालें। इसके लिये एक झिरीदार बारीक छिद्र लेना आवश्यक है क्योंकि वृत्ताकार छिद्र लेने से वर्ण परस्पर एक दूसरे को ढक लेते हैं और पृथक् पृथक् पूर्णतया व्यक्त नहीं होते।

प्रयोग ९०—एक काग़ज़ के गत्ते में एक शतांशमीटर लम्बा और एक सहस्रांशमीटर चौड़ा छिद्र बना कर गत्ते को खड़ा कर लो। छिद्र पर सौर प्रकाश किसी समतल दर्पण पर परावर्त्तन करके डालो। इसके दूसरी ओर एक उन्नतोदर ताल ऐसे खड़ा करो कि छिद्र उन्नतोदर ताल की नाभि पर हो। इस दशा में ताल




चित्र ११५—शुद्ध सप्तरंजक।

से निर्गत रश्मिसमूह त्रिपार्श्व पर लगभग समानान्तर पड़ेगा। ताल से आगे चित्रानुसार त्रिपार्श्व का रख दो। त्रिपार्श्व से निर्गत प्रत्येक किरणावली भी समानान्तर होगी किन्तु प्रत्येक वर्ण को स्वच्छ देखने के लिये त्रिपार्श्व से आगे दूसरा उन्नतोदर ताल रख कर इसके आगे नाभि के लगभग पर्दा रख दो। इस दशा में वर्ण सन्निपतित नहीं होते, परन्तु सप्तरञ्जक उसी समय शुद्ध होगा जब कि त्रिपार्श्व न्यूनातिन्यून विचलन की स्थिति में होगा। इस उपकरण को वर्णपट प्रदर्शक (Spectroscope) कहते हैं। यदि छिद्र इस प्रयोग में बड़ा होगा तो देखोगे कि वर्णपट ( Band ) के बीच में श्वेत प्रकाश रह जाता है।

प्रयोग ९१—निउटन की रङ्गीन चक्री ( Newton's Colour disc ): निउटन सा. ने सप्तवर्णों का संयोग एक और

रीति से भी दिखलाया था। काग़ज़ के एक सफेद गत्ते का वृत्ताकार टुकड़ा लो। इसको पेन्सिल के अर्द्धव्यासों द्वारा सात वृत्तखडों में विभाजित कर लो। इन सातों भागों को भिन्न २ सप्तरंजक के सब वर्णों से रङ्ग कर शीघ्रता से वृत्त को कीली पर घुमाओ देखोगे कि चक्री भूरी प्रतीत होने लगती है। इसका कारण यही है कि घुमाने से सब वर्णों का प्रभाव नेत्रों पर एक ही समय में पड़ता है। यदि चक्री पर सब वर्ण पूर्णतया सप्तरजक की भाँति शुद्ध हों तो अवश्य चक्री का वर्ण श्वेत प्रकट होगा। वास्तव में बात यह होती है कि जिस दृष्य का प्रभाव हमारे नेत्रों के कृष्ण पटल पर पड़ा करता है वह प्रभाव लगभग $\frac{1}{10}$ सेकिंड तक रहता है। जब निउटन की चक्री को शीघ्रता से घुमाते हैं तो एक वर्ण का प्रभाव हमारे कृष्ण पटल से मिटने के पहले ही अन्य वर्णों का प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है और संश्लेषण ( Synthesis ) से सारे प्रभाव का फलस्वरूप श्वेत वर्ण दृष्टिगोचर होता है।

**परिपूरक रङ्ग**—जिन वर्णों के मिश्रित प्रभाव से नेत्रों पर श्वेत का प्रभाव पड़ता है उन वर्णों को परस्पर एक दूसरे का परिपूरक वर्ण (Complementary colours) कहते हैं। केलिया वर्ण का परिपूरक रक्त वर्ण है। इसका यह तात्पर्य नहीं ससझना चाहिये कि केलिया रंग को लाल में मिलाने से श्वेत रंग हो जायगा। परन्तु नेत्रों में केलिया और रक्त प्रकाश साथ साथ पड़ने से प्रभाव श्वेत ही होगा। यदि धूप तेज निकली हुई हो और धूप की ओर देर तक देख कर किसी कमरे में घुसो तो तुम्हारे सामने काला ( अर्थात् वर्ण रहित ) धब्बा दृष्टिगोचर होगा। ऐसे ही यदि कोई लाल वस्त्र व वस्तु

धूप में रक्खी हो और उसको तुम टकटकी लगा कर कुछ देर तक देखो और फिर कमरे में घुसो तो तुम्हें हरा धब्बा दिखाई देगा यहां वर्ण परस्पर परिपूरक होते हैं। इसी भाँति यदि श्याम और पीत वर्णों की रश्मियाँ हमारे अक्षिपट पर एक साथ ही पड़ें तो उनका प्रभाव भी नेत्रों में श्वेत होता है।

**भिन्न भिन्न अपारदर्शक पदार्थों के वर्ण**—जब यह निर्णय हो जाता है कि सौर प्रकाश में सात वर्ण हैं और प्रत्येक पदार्थ सौर प्रकाश ही द्वारा दिखाई देता है तो एक स्वाभाविक प्रश्न यह होता है कि पदार्थ भिन्न २ वर्ण के क्यों दृष्टिगोचर होते हैं?

प्रयोग ९२—इस समस्या की परीक्षा करने के हेतु भिन्न २ वर्णों के पदार्थ सप्तरंजन में लाकर देखो। यदि लाल पदार्थ सप्तरंजन के लाल भाग में देखो तो पदार्थ तीव्र रक्त वर्ण का प्रतीत होगा, अन्य भाग में काला; इसी भांति पीली वस्तु सप्तरंजन के पीले भाग में तीव्र पीली नज़र पड़ेगी और अन्य भाग में वर्णरहित (काली)। तात्पर्य यह है कि पदार्थों का रंग सप्तरंजन के वैसे ही भाग में जैसा कि पदार्थ का रंग है ज्यों का त्यों दृष्टिगोचर होता है और अन्य भाग में वर्णविहीन। इस घटना का क्या कारण है? वास्तव में जब किसी पदार्थ पर प्रकाश पड़ता है तो उसमें से कुछ भाग तो परावर्त्तित हो जाता है कुछ वर्त्तित और कुछ का शोषण हो जाया करता है। यह व्यवहार पदार्थों के वर्ण और प्रकृति पर निर्भर है। हम वस्तुओं को परावर्त्तित प्रकाश द्वारा देखते हैं। उपरोक्त प्रयोग का यही अभिप्राय हो सकता है कि रंगीन पदार्थों के तल सब वर्णों में केवल निजवर्ण के प्रकाश को परावर्त्तित करते हैं तथा अन्य का शोषण कर लेते हैं। इस भांति लाल पदार्थ से सौर प्रकाश में केवल रक्त वर्ण की रश्मियाँ ही परावर्त्तित होती हैं अन्य का अपशोषण हो जाता है। यही कारण है कि

यदि एक वर्ण के पदार्थ को सप्तरंजक के अन्य वर्णों में देखते हैं तो वह वर्णविहीन ( Colourless ) प्रतीत होता है । जो पदार्थ सौर प्रकाश के कुल भाग को परावर्त्तित करते हैं वे श्वेत प्रतीत होते हैं, और जो सब वर्णों को सोख लेते हैं वे काले प्रतीत हुआ करते हैं । इसलिये अपारदर्शक की रङ्गत का कारण इसके तल का उस विशेष रश्मि समूह का परावर्त्तन करना है । जो पदार्थ जिस वर्ण के रश्मि समूह का परावर्त्तन करता है वह उसी रङ्गत का प्रतीत होता है । पदार्थों में अपना कोई वर्ण नहीं होता ।

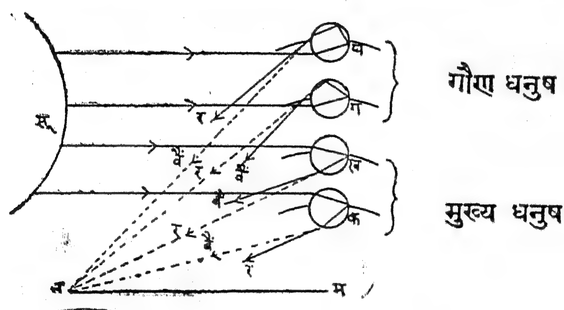
पारदर्शक पदार्थों ( Transparent bodies ) के वर्ण: जब हम पारदर्शक पदार्थों को देखते हैं तो प्रकाश दूसरी ओर से हमारे नेत्रों तक जाता हुआ दिखाई देता है । यदि ९० प्रयोग में छिद्र के आगे कोई रक्तकाँचका प्लेट रख लो तो वर्णपट पर केवल रक्त वर्ण ही आवेगा; जिसका आशय यही हो सकता है कि काँच के पार केवल रक्त वर्ण तो चला जाता है अन्य सब काँच में रह जाते हैं । यदि लाल कांच के स्थान पर श्याम वर्ण का काँच रख दो तो देखोगे कि श्याम वर्ण ही दृष्टिगोचर होगा अन्य नहीं । यदि सप्तरंजक के पथ में लाल और नीले दोनों कांच मिला कर रख दो तो वर्णपट पर कोई वर्ण भी दृष्टिगोचर नहीं होगा क्योंकि सौर प्रकाश का हरित, नील, बैंगनी भाग लाल कांच में अपशोषित (absorb) हो जायंगे और शेष श्याम वर्ण के काँच में । इस प्रकार वर्णपट तक सौर प्रकाश का कोई भी वर्ण नहीं पहुँच सकेगा । यदि लाल और हरे काँच के टुकड़ों को मिला कर देखो तो उनके बीच से कुछ भी

नहीं दिखाई देगा क्योंकि लाल शीशा सिवाय लाल वर्ण के सब का अपशाषण कर लेता है और हरा शीशा रक्त वर्ण को भी अपशोषित कर लेता है फलतः नेत्रों तक किसी प्रकार का प्रकाश नहीं आ सकता। शीशा उसी वर्ण का प्रतीत होता है जो वर्ण उसके आरपार जा सकता है।

ऐसे ही आकाश श्याम वर्ण प्रतीत होता है यद्यपि वायुमंडल निरंग होता है। वायुमंडल में बहुत ऊँचाई तक गर्द और वाष्प के छोटे कण रहते हैं। ये कण सौर प्रकाश के श्यामवर्ण को तो परावर्त्तित कर देते हैं किन्तु अन्य वर्ण आकाश में निकल जाते हैं। यदि वायुमण्डल में छोटे २ कण न होते तो आकाश बिलकुल अन्धकारमय प्रतीत होता। सूर्यास्त समय के मनोहर आकाश वर्ण सब ने देखे होंगे। सायंकाल के समय सौर प्रकाश वायु, धुएँ, इत्यादि के बड़े मोटे पिंड का पार करके आता है। ये श्यामवर्ण का तो सूर्य की ही ओर परावर्त्तन (reflection) कर देते हैं और शेष रक्त, नारङ्गी, पीत, इ. के सुन्दर संयोग दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

**इन्द्रधनुष** (Rainbow)—तुम जान चुके हो कि सौर प्रकाश सात वर्णों में विभक्त हो सकता है। बहुधा तुम लोगों ने भी देखा होगा कि इन्द्रधनुष (rainbow) में भी वर्णों का क्रम ठीक सप्तरंजक की ही भाँति होता है। इन्द्रधनुष भी जल कणों अथवा बून्दों में श्वेत सौर प्रकाश के वर्त्तन तथा परावर्त्तन द्वारा ही बनता है। यही कारण है कि इन्द्र धनुष सूर्याभिमुख ही दृष्टिगोचर हुआ करता है। वर्षाऋतु में जब प्रसंगवश सौर प्रकाश का किसी पोले स्थान में ठहरी हुई जल विन्दुओं में वर्त्तन द्वारा विश्लेषण हो जाता है तो विन्दुओं के पिछले

भाग से पूर्णपरावर्त्तन ( Total reflection ) होकर सातों रंग क्रम से इन्द्रधनुष के रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इन्द्रधनुष उसी समय दीख पड़ता है जब आकाशस्थ मेघ जल की कुछ छोटी २ बून्दों में विभक्त हो और बून्दें सूर्याभिमुख द्रष्टा और सूर्य से विशेष कोण बनाती हों। यदि सूर्य पूर्व में हो तो इन्द्रधनुष का केन्द्र ठीक पश्चिम में होगा और जब सूर्य पश्चिम में होता है तो इन्द्र धनुष पूर्व की ओर दीखता है। यदि सूर्य से इन्द्रधनुष की परिधि के केन्द्र तक किसी

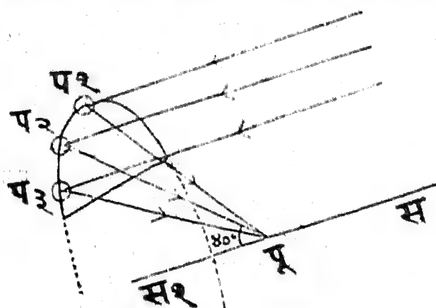



चित्र ११६—इन्द्र धनुष की बनावट।

रेखा को विचारें तो वह सदा द्रष्टा के नेत्रों के मध्य में होकर जावेगी। जब सूर्य क्षितिज (Horizon) से ऊपर होता है तो इन्द्र धनुष पूर्ण अर्द्धवृत्ताकार दृष्टिगोचर होगा; प्रथमातिप्रथम इन्द्रधनुष की बनावट की निउटन साहब ने सन् १६७५ ई० में व्याख्या की थी। मुख्य इन्द्रधनुष ( primary rainbow ) के साथ साथ कभी गौण इन्द्रधनुष भी दिखाई देता है, इसमें मुख्य इन्द्रधनुष की अपेक्षा वर्णों का क्रम बिलकुल उलटा होता है और

रक्त वर्ण सब से भीतर की ओर होता है। गौण इन्द्रधनुष के वर्ण कुछ इन्द्रधनुष की अपेक्षा धुंधले होते हैं। जब सूर्य का क्षितिज से ४०° का कोण बनता है तो इन्द्रधनुष नहीं दिखाई देता।

चित्र ११६ में सूर्य से बाणों की ओर कुछ परस्पर समानान्तर किरणें क, ख, ग, और घ जलविन्दुओं पर पड़ रही हैं। सूर्य से एक विन्दु 'ख' पर किरण ऐसे पड़ रही है कि वर्त्तन पश्चात् विन्दु के पिछले तल पर चरमकोण (critical angle) से अधिक कोण बनाती हुई आपतित होती है। इसका पूर्णपरावर्त्तन से निर्गत किरण के नीचे का रक्त वर्ण 'र' द्रष्टा के नेत्रों तक पहुँचता है। परन्तु 'ख' के नीचे वाली विन्दु 'क' से नेत्रों को केवल बैंगनी भाग




चित्र ११७—इन्द्र धनुष में समस्थित विन्दुओं से रक्तवर्ण की दृष्टि।

मिलेगा जैसा तीर के चिन्ह से दर्शाया गया है। यह सम्भव है कि क और ख के मध्य अन्य विन्दुएं हों और शेष वर्ण भी 'क' और 'ख' के मध्य दृष्टिगोचर होने लगें। 'ख' विन्दु के विशेष स्थिति में रहने से नेत्रों तक केवल रक्त वर्ण ही पहुँचता है और नेत्रों पर

एक विशेष ∠ ख न म बनता है। अन्य जो बून्दें क्षितिज 'नम' से 'खनम' कोण के बराबर कोण बनाती हैं उन सब से नेत्रों तक केवल रक्त वर्ण ही पहुँच सकता है अन्य नहीं। इस भाँति की विन्दुएं एक ऐसे वृत्त की परिधि पर (चित्र ११७) होंगी कि जिसका केन्द्र 'स$_१$' और अर्द्धव्यास 'स$_१$ प$_१$' होंगे; इन सब विन्दुओं से मुख्य धनुष के द्रष्टा को केवल रक्त वर्ण दृष्टिगोचर होगा। पिछले दो चित्रों में 'नम' व 'पू स$_१$' क्षितिज हैं और 'ख' 'प$_१$' बून्दें हैं, 'पू' व 'न' नेत्र हैं और ∠खनम = ∠प$_१$पूस$_१$।

इसी भाँति 'क' से नेत्रों तक केवल बैंगनी वर्ण पहुँचता है। जो बून्दें 'क' की भाँति उस वृत्त की परिधि पर होंगी जिनका केन्द्र 'म' है और अर्द्धव्यास 'मक' उन सब विन्दुओं द्वारा धनुष का बैंगनी वर्ण बनेगा। इसी भाँति बीच में अन्य वर्णों के हेतु भी जल विन्दुओं की वृत्ताकार मालाएं बन जाती हैं। मुख्य इन्द्रधनुष का अर्द्धव्यास सदा ४२° का होता है।

ऐसे ही कुछ दृष्टि के भेद से गौण ( secondary ) इन्द्रधनुष भी बना करता है। ११६ चित्र में 'ग' व 'ग' की समान स्थित विन्दुओं से द्रष्टा तक केवल रक्त वर्ण दिखाई देता है और 'घ' की सम-स्थित विन्दुओं से केवल बैंगनी। गौण धनुष की दशा में ∠ 'घनम' कोण ( बैंगनी वर्ण से ) लगभग ५०° होता है। गौण धनुष में विशेषता यह होती है कि सौर प्रकाश का विन्दुओं के भीतर दो बार पूर्ण परावर्त्तन (total reflection) होता है जिसके कारण वर्णों का क्रम भी विपरीत हो जाता है और वर्ण धुंधले दीखते हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (६)।

( १ ) यह तुम कैसे दिखा सकते हो कि सौर प्रकाश वास्तव में सात वर्णों का संयोग है ? चित्र द्वारा दिखाओ कि त्रिपार्श्व में प्रकाश के जाने से क्या भेद हो जाता है।

( २ ) प्रकाश के वर्णविश्लेषण से तुम क्या समझते हो ? यह क्यों होता है ? किरणावली त्रिपार्श्व में को जाती है तो इससे बने हुए सप्तरंजक को अशुद्ध क्यों कहते हैं ?

( ३ ) निउटन की रंगीन चक्री के विषय में क्या जानते हो ? परिपूरक रंग किनको कहते हैं। यदि देर तक धूप को देख कर कमरे में देखो तो तुम्हें क्या दिखाई देता है और क्यों ?

( ४ ) यदि किसी सूचीछिद्र में से सौर प्रकाश के सन्मुख एक त्रिपार्श्व रख दें तो पर्दे पर प्रकाश कैसा पड़ेगा ? यदि (क) सूचीछिद्र और त्रिपार्श्व के मध्य हरे काँच की पट्टी (ख) त्रिपार्श्व और नेत्रों के बीच हरी काँच की पट्टी रक्खें तो कैसी दिखाई देगी और क्या भेद हो जायगा।

( ५ ) सप्तरंजक वर्णपट का संश्लेषण किस भाँति कर सकते हो ? ऐसा क्यों होता है।

( ६ ) यह तुम कैसे दिखाओगे कि एक त्रिपार्श्व से विभक्त प्रकाश का अन्य त्रिपार्श्व से और अधिक वर्ण विश्लेषण नहीं हो सकता।

( ७ ) शुद्ध सप्तरंजक किसे कहते हैं ? चित्र द्वारा दिखाओ कि यह किन किन दशाओं में बन सकता है।

( ८ ) सौर प्रकाश की एक किरणावली लाल कांच के एक त्रिपार्श्व में जाती हुई एक पर्दे पर पड़ती है। रक्त त्रिपार्श्व के स्थान पर वैसा ही नीलवर्ण त्रिपार्श्व रख दें तो प्रकाश पट में जो भेद होगा उसका वर्णन करो।

( ६ ) पदार्थ रंगीन क्यों दिखाई देते हैं ? यदि नीले कांच की पट्टी में से हरे पदार्थ को, सू र्य को, मोमबत्ती की ज्वाला को और पृथ्वी को देखो तो ये सब कैसे दृष्टिगोचर होंगे ?

(१०) आकाश नीलवर्ण क्यों दृष्टिगोचर होता है और सूर्यास्त समय की लालिमा का क्या कारण विचारते हो, इनको स्पष्ट लिखो।

(११) (क) सौर प्रकाश त्रिपार्श्व में जाते समय भिन्न भिन्न वर्णों में क्यों विभक्त हो जाता है ?

(ख) सौर प्रकाश में सातवर्ण होते हैं इसके क्या क्या प्रमाण हैं ?

(१२) इन्द्र-धनुष किस प्रकार बनता है, इसका सचित्र और संक्षिप्त वर्णन करो।

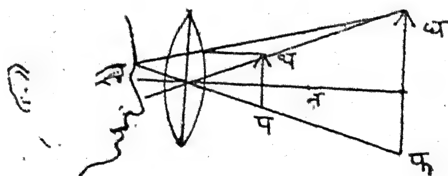
---

## सातवां अध्याय।

## नेत्रसम्बन्धी यंत्र और नेत्रों की बनावट।

(१) उन्नतोदर ताल—यह बात तुम्हें ज्ञात है कि समानान्तर आती हुई सूर्य की किरणावली उन्नतोदर ताल द्वारा ( Coverge ) संसृत हो जाती हैं। सूर्य से ताल के दूसरी ओर मुख्यनाभि पर कागज रखने से जलने लगता है और मुख्यनाभि पर प्रकाश अति तीव्र हो जाता है। इसलिये उन्नतोदर ताल को आतिशीशीशे की नांई काम में ला सकते हैं। और यदि कहीं तीव्र प्रकाश की आवश्यकता हो तो उन्नतोदर ताल द्वारा प्रकाश डाल सकते हैं।

(२) जब कोई पदार्थ उन्नतोदर ताल के नाभ्यान्तर्गत रक्खा जाता है तो उसका काल्पनिक और विस्तृत प्रतिरूप बनता है। उन्नतोदर ताल से पुस्तक के पन्ने को नाभिअन्तर्गत रख कर




चित्र ११८—उन्नतोदर ताल का सरल सूक्ष्मदर्शक की भांति प्रयोग।

देखो; अक्षर बड़े दिखाई देंगे। इसलिए उन्नतोदर ताल का अभिवर्द्धक ताल व सरल सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की भांति प्रयोग कर सकते हैं।

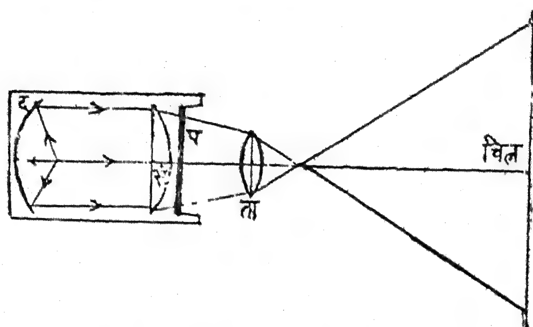
(३) दीपक को उन्नतोदर ताल की नाभि पर रखने से निर्गत किरणें परस्पर समानान्तर होती हैं। इसी सिद्धान्त पर समुद्रतट पर प्रकाशस्तम्भों की लालटैनें (Light houses) जलयानों के हेतु बनी होती हैं।

(४) फ़ोटोग्राफ़ी कैमेरा ( Camera )—तुम्हें ज्ञात है कि उन्नतोदर ताल द्वारा प्रतिरूप उत्तमता से बनते हैं, इसी सिद्धान्त पर फ़ोटो लेने का कैमरा होता है। इस में काठ व अन्य किसी पदार्थ का बना हुआ एक छोटा सा चौखूंटा बन्द डब्बा होता है। डब्बे की एक ओर अर्द्धस्वच्छ कांच का पर्दा रहता है और दूसरी ओर एक

सूराख में उन्नतोदर ताल रहता है। पर्दे पर ताल द्वार वास्तविक, उलटा और छोटा प्रतिरूप उन पदार्थों का बनता है जो ताल के सम्मुख होते हैं। प्रतिरूप को पर्दे और ताल की दूरी को समायोजित कर स्पष्ट कर लेते हैं। ताल के सामने सूराख को ढकने से बन्द करके फिर पर्दे के स्थान पर आलोकग्राही प्लेट ( Sensitive plate ) को लगा देते हैं। ज्योंही ताल के सामने से ढकने को हटा कर प्लेट को पदार्थ के लिये उद्घाटित ( Expose ) करते हैं त्योंही आलोकग्राही प्लेट पर ताल के सामने का पूर्ण दृश्य छप जाता है। तुरन्त ही फिर इस डब्बे को ढक कर अन्धकार में प्लेट का रासायनिक रीति द्वारा विकाशन कर लेते हैं और इस प्लेट को जिस पर अब प्रकाश का कोई विशेष प्रभाव नहीं हो सकता फोटोग्राफी का निगेटिव ( negative ) कहते हैं। फिर इस निगेटिव द्वारा आलोकग्राही क़ाग़ज़ पर इसी के समान चित्रों को धूप से छाप सकते हैं और रसायनिक पदार्थों द्वारा इनका विकाशन व जमाव हो जाता है। कैमरे में पर्दा उन्नतोदर ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी से सदा परे रहता है।

(५) **चित्रदर्शक लालटैन** (magic Lantern)—बाइस्कोप का तमाशा तुम में से बहुतों ने देखा होगा, परन्तु यह नहीं सोचा कि चित्र कैसे बनता है। इसमें (चित्र ११९) पर्दे पर उन्नतोदर ताल से तस्वीरों के वास्तविक और वृहदाकार प्रतिरूप डाल लिया करते हैं। चित्रदर्शक लालटैन में धातु का एक ओर से खुला एक डब्बा होता है। इसमें नाभि पर रक्खे एक तेज़ दीपक से प्रकाश नतोदर दर्पण 'द' पर पड़ कर समानान्तर किरणावली में परावर्त्तित होता हुआ एक समउन्नतोदर ताल पर, जिसको संग्राहक (Condensing lens) ताल भी कहते हैं, पड़ता है। संग्राहक ताल 'सं' से संसृत होती हुई किरणा-

वली फिर चित्रवाले पारदर्शक पर्दे ( Slidc ) 'प' पर पड़ कर उपदृष्य ताल 'ता' तक निकल जाती है। चित्रधारक पर्दे 'प' को इस भाँति लगाते हैं कि यह संस्तृत किरणावली में सारा का सारा प्रदीप्त रहता है। इसी किरणावली द्वारा पर्दे पर चित्र बन जाता है। 'स' ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी से कुछ पीछे

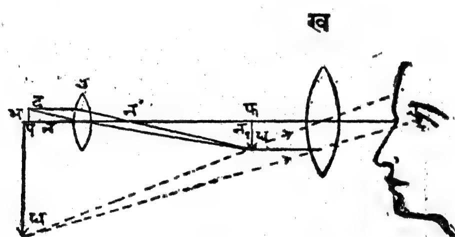



चित्र ११६—चित्रदर्शक लालटैन।

रहता है; और चित्रदर्शक पर्दे पर, वास्तविक, वृहदाकार और स्लाइड की अपेक्षा उलटा चित्र ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी की दुगुना दूरी के परे बन जाता है। चित्र सीधा बनाने को स्लाइड की विकाशित फिल्म को उलटा रक्खा करते हैं।

(६) **यौगिक सूक्ष्मदर्शक** ( Compound microscope )— कभी कभी हमें और मुख्यतया डाक्टरों को सूक्ष्म पदार्थों को अतिवृहदाकार देखने की आवश्यकता होती है। इसके लिये यौगिक सूक्ष्मदर्शक काम में लाते हैं। इसमें न्यूननाभ्यान्तर्गत दूरी वाले दो उन्नतोदर ताल रहते

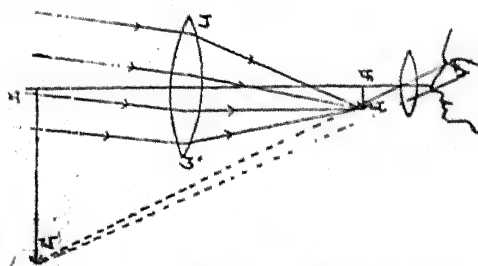
हैं; एक तो लगभग $\frac{1}{2}$ शतांशमीटर नाभिगतान्तर का उपदृश्य (objective) और दूसरा लगभग २ शतांशमीटर नाभिगतान्तर वाला उपनेत्र ताल ( Eyepiece ) । जिस पदार्थ 'पद' को हमें वृहदाकार निरीक्षण करना होता है उसे चित्रानुसार उपदृश्य ताल 'उ' की नाभि 'न' के कुछ परे रख देते हैं। उपदृश्य से वास्तविक, उलटा और वृहदाकार प्रतिरूप 'फध' उपदृश्य के दूसरी ओर बन जाता है। इसी प्रतिरूप को उपनेत्र




चित्र १२०—यौगिक सूक्ष्मदर्शक का सिद्धान्त ।

खण्ड 'ख' द्वारा देखते हैं। यह ताल 'ख' इस भाँति लगा रहता है कि इसकी मुख्यनाभि '$न_1$' प्रतिरूप 'फध' से तनिक सी परे होती है, अर्थात् दृश्य 'फध' उपनेत्र खण्ड 'ख' के नाभ्यान्तगत है। यहाँ उपनेत्र खण्ड से ठीक अभिवर्धक ताल की भाँति 'फध' का द्रष्टा को काल्पनिक, वृहदाकार और उलटा प्रतिरूप 'भध' नियमानुसार दिखाई देता है। पहिले तो पदार्थ 'पद' का अभिवर्द्धन उपदृष्य ताल द्वारा होता है और फिर उपनेत्र खण्ड द्वारा 'भध' के रूप में। साधारणतया इन तालों को एक नली में रख दिया करते हैं। और इसी यंत्र का नाम यौगिक सूक्ष्मदर्शक होता है।

(६) **ज्यौतिष दूरबीन** (Astronomical telescope)—ज्यौतिष वेधालयों में बहुधा अतिदूरस्थ सितारों, ग्रहों इ. को देखने के लिये दूरबीन की आवश्यकता पड़ती है। दूरबीन में दो उन्नतोदर ताल लगे रहते हैं; एक तो लम्बे नाभिगतान्तर का उपदृश्य ( Abject glass ) और दूसरा छोटे नाभिगतान्तर का उपनेत्र ताल ( Eye piece )।

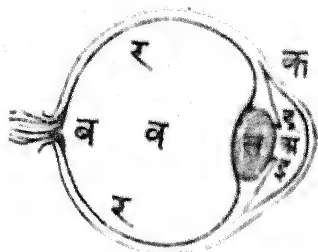


चित्र १२१—ज्यौतिष दूरबीन का सिद्धान्त।

चित्र में 'उ उ'' उपदृश्य ताल है। दूर से आती हुई किरणावली को हम साधारणतया समानान्तर मान सकते हैं। उपदृश्य ताल द्वारा पदार्थ का प्रतिरूप ताल की मुख्य नाभि के लगभग 'फध' वास्तविक, उलटा, और पदार्थ की अपेक्षा छोटा बनता है। परन्तु फिर भी 'फध' उस दृश्य से अवश्य बड़ा होगा जो साधारणतया प्रत्यक्ष होता है। उपदृश्य की मुख्य नाभि व 'फध' उपनेत्रखण्ड के नाभ्यान्तर्गत है, इसलिये उपनेत्रखण्ड से वास्तव में अभिवर्धक ताल की भाँति 'फध' का प्रतिरूप 'भध' उसी ओर अधिक दूरी पर काल्पनिक और 'फध' की अनुसार ( उलटा ), बृहदाकार बनेगा जो दृष्टा को दिखाई देगा। वास्तविक समायोजना में 'फध' साधारणतया उपनेत्रखण्ड की मुख्यनाभि पर

रहता है और फलतः नेत्रों को उपनेत्रखण्ड के सन्निकट रखने से प्रतिरूप अनन्त दूरी पर अर्थात् जिस स्थान पर पदार्थ है वहीं पर बृहदाकार दृष्टिगोचर होगा। **इस यन्त्र में पदार्थ उलटा दृष्टिगोचर होता है,** परन्तु इसमें कोई कठिनाई नहीं होती चाहे सितारे व ग्रह उलटे प्रतीत हों व सीधे। परंतु अन्य पार्थिव पदार्थों को सीधा देखने के लिये उपनेत्रखण्ड के स्थान पर बहुधा तो नतोदर ताल लगा देते हैं अथवा उपदृष्य और उपनेत्र के मध्य अन्य ताल लगा दिये जाते हैं।

**नेत्रों की बनावट**—नेत्रों में सब से अगली ओर पुतली पर एक पारदर्शक पतला पर्दा 'क' होता है। इसको कनीनिका (Cornea) कहते हैं। इसके पिछली ओर नर्म पारदर्शक पदार्थ का एक द्युन्नतोदर ताल 'त' होता है। 'त' और 'क' के मध्यस्थ एक तह 'अ' जलसदृश पदार्थ की भी होती है। इन सबों के पीछे अक्षिपट 'र' (retina) तक कोई गाढ़ा द्रव पदार्थ 'व' रहता है। चक्षुताल को प्रकृति ने ऐसा बनाया है कि आवश्यकतानुसार इसकी नाभ्यान्तर्गत दूरी स्वयं न्यूनाधिक हो सकती है। 'व', 'त', 'अ' सब पदार्थ पारदर्शक होने के कारण छायाचित्रक कैमरे की भांति नेत्रों से बाहर वाले पदार्थों का प्रतिरूप अक्षिपट 'र' पर आकार में छोटा, उलटा और वास्तविक बनता है। 'र' से मस्तिष्क तक जो नसें 'ब' पथ में को होकर जाती हैं उनके द्वारा मस्तिष्क को अक्षिपट पर पड़े हुए चित्र का बोध हो जाता है और उसकी प्रतिमूर्ति भी उलटी भासती है। इस प्रकार




चित्र १२२—नेत्रों की बनावट।

मस्तिष्क को पदार्थों का बोध सीधा ही होता है। यदि चक्षुताल ख़राब हो और अक्षिपट पर चित्र न बने तो किसी प्रकार चित्र को बोध होने के लिये अक्षिपट पर डालना चाहिये। इसके लिये ऐनकों का प्रयोग होता है।

यह आवश्यक है कि मनुष्य निकटवर्त्ती और दूरस्थ पदार्थों को भली प्रकार देख सके। परन्तु नेत्रों में अक्षिपट की स्थिति स्थायी रहती है। प्रत्येक दशा में इस पर प्रतिरूप तभी पड़ सकता है जब कि चक्षुताल द्वारा दूरस्थ तथा निकटवर्त्ती पदार्थों से किरणावली अक्षिपट पर ही केन्द्रीभूत हो। इसके लिये प्रकृति ने चक्षुताल को विस्तार तथा संकुचन शक्ति दे रक्खी हैं। दूरस्थ पदार्थों के देखने के लिये तुम अपने नेत्रों को खोल कर फैला लेते हो। इसका प्रभाव यही होता है कि चक्षुताल की नभ्यान्तर्गत दूरी कुछ बड़ी हो जाती है। जब निकटस्थ पदार्थों को देखते हो तो अपने नेत्रों को कुछ सिकोड़ लेते हो, जिससे चक्षुताल का नाभिगत अन्तर न्यून होता जाता है और प्रतिरूप स्थायी अक्षिपट पर ही पड़ता है।

जब चक्षुताल में विस्तारशक्ति कम होती है और किसी कारण चक्षुताल कुछ छोटी नाभ्यान्तर्गत दूरी वाला होता है तो निकटस्थ पदार्थों का प्रतिरूप तो ठीक अक्षिपट पर बन जाता है, किन्तु दूरस्थ पदार्थों के प्रतिरूप अक्षिपट तक नहीं पहुँचते और वे धुंधले प्रतीत होते हैं ( short sight )। यह दशा साधारणतया बूढ़ों की अथवा उन बालकों की होती है जो पुस्तक को निकट से पढ़ते हैं। इसके हेतु चक्षुताल का नाभिगतान्तर बड़ा करने के लिये

नतोदर ताल का प्रयोग करते हैं। ऐसे मनुष्यों की ऐनक में नतोदर ताल रहते हैं। इससे निकट दृष्टि सुधर जाती है।

बहुत से मनुष्यों के चक्षुताल में संकुचन शक्ति कम होती है और चक्षुताल का नाभि गतान्तर बड़ा होता है। (Long sight) इस दशा में दूरस्थ पदार्थों का प्रतिरूप तो ठीक अक्षिपट पर पड़ जाता है किन्तु निकटस्थ पदार्थों का स्पष्ट प्रतिरूप अक्षिपट के पीछे बनता है। इनका दृष्टिसंशोधन के हेतु चक्षुताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी न्यून करनी पड़ती है अर्थात् उन्नतोदर ताल सम्मिलित करने की आवश्यकता होती है। ऐसे मनुष्यों की ऐनकों में उन्नतोदर ताल लगे रहते हैं इन ऐनकों को लगाने की आवश्यकता तभी पड़ती है जब निकटस्थ पदार्थों को देखते हैं। ऐनक को लगाने से प्रतिरूप केवल अक्षिपट पर बनने लगता है।

उदाहरण १—कोई दीर्घदृष्टि मनुष्य नेत्रों से ५० शतांश-मीटर से निकटवर्त्ती पदार्थ को स्पष्ट नहीं देख सकता। ऐसी ऐनक की डायोप्टर में शक्ति निकालो जिससे मनुष्य २५ शतांशमीटर दूरी वाले पदार्थ को स्पष्टतया देख सके।

यह प्रत्यक्ष है कि ऐनक वाले तालों की नाभ्यान्तर्गत दूरी ऐसी होनी चाहिये कि यदि कोई पदार्थ नेत्रों से २५ शतांशमीटर दूरी पर रक्खा जाय तो उसका प्रतिरूप कम से कम ५० शतांश-मीटर दूरी पर (जहाँ मनुष्य चक्षुताल द्वारा स्पष्ट देख सकता है) बने।

इसलिये प = + २५ शतांशमीटर और फ = + ५० श. मीटर।

$$\therefore \frac{१}{न} = \frac{१}{फ} - \frac{१}{प} = \frac{१}{५०} - \frac{१}{२५} = -\frac{१}{५०}$$

∴ न = −५० शतांशमीटर

∴ ताल की शक्ति $= + \frac{१००}{५०} = +$ २ डायप्टर ।

उदाहरण २—एक निकटदृष्टि मनुष्य छापे को १५ शतांशमीटर दूरी से स्पष्टतया पढ़ सकता है तो २८ श. मी. दूरी पर पढ़ने के लिये ऐनक में किस नाभिगतान्तर वाले ताल की आवश्यकता पड़ेगी ।

यहाँ पर प = २८ और फ = १५ शतांशमीटर

$$\therefore \frac{१}{न} = \frac{१}{फ} - \frac{१}{प} = \frac{१}{१५} - \frac{१}{२८} = + \frac{१३}{४२०}$$

∴ यथेष्ट ताल का नाभिगतान्तर = ३२·३१ शतांशमीटर ।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली ( ७ ) ।

( १ ) चित्र द्वारा दिखाओ कि अभिवर्द्धक ताल का साधारण सूक्ष्मदर्शक की नाईं कैसे प्रयोग कर सकते हो ।

( २ ) (क) प्रकाश स्तम्भ और (ख) छायाचित्रक कैमरे का सचित्र वर्णन करो । ये यंत्र किस सिद्धान्त पर बने रहते हैं ?

( ३ ) चित्र प्रदर्शक लालटैन का सचित्र वर्णन करो ।

( ४ ) यौगिक सूक्ष्मदर्शक कैसे बना होता है चित्र द्वारा समझाओ ।

( ५ ) यदि तुम्हें ज्यौतिष दूरबीन बनानी हो तो किन किन वस्तुओं की की आवश्यकता होगी और कैसे बनाओगे चित्र से दिखाओ ।

( ६ ) छोटे से नेत्रों से संसार के बड़े बड़े पदार्थ किस प्रकार दिखाई देते हैं चित्र द्वारा दर्शाओ ।

( ७ ) नतोदर और उन्नतोदर ताल के कुछ सम्प्रयोग लिखो ।

( ८ ) नेत्रों की बनावट के सिद्धान्त का सचित्र और संक्षिप्त वर्णन करो ॥

(९) निकट और दीर्घ दृष्टि के क्या क्या कारण हैं? दीर्घ दृष्टि वाला मनुष्य यदि नतोदर ताल की ऐनक लगा ले तो उसकी दृष्टि पर क्या प्रभाव होगा। चित्र खींचो।

(१०) यदि सामान्य दृष्टिवाला मनुष्य नतोदर ताल का (ऐनक का) प्रयोग करने लगे तो उसकी दृष्टि पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(११) यदि किसी समानान्तर किरणावली के सम्मुख दो उन्नतोदर ताल रख दें तो क्या प्रभाव होगा। चित्र द्वारा दर्शाओ।

---

# आठवां अध्याय।

## प्रकाश का उद्गम और वेग।

**प्रकाश का तरङ्ग सिद्धान्त**—यह बात तुम्हें मालूम हो गई है कि ताप एक प्रकार की शक्ति है और यह विकिरण द्वारा जाती है। ताप मध्यस्थ को बिना ही गर्म किये हुये चला जाता है। ताप का अन्तिम उद्गम स्थान सूर्य है। इसी भाँति प्रकाश का भी मुख्य उद्गम सूर्य ही है। प्रकाश सारे विश्व में व्याप्त है और इसका बोध हमें नेत्रों द्वारा ही होता है और यही दृष्टि का कारण है। सूर्य पृथ्वी से लगभग सवा नौ करोड़ मील है। प्रकाश का पृथ्वी पर केवल $\frac{१}{२०००००००००}$ भाग ही रुकता है अधिक नहीं। ताप के अन्तिम अध्याय में तुम पढ़ चुके हो कि ताप व प्रकाश का विकिरण एक ही भाँति की आकाशतत्त्व या ईथर की लहरों द्वारा होता है। जैसे तालाव में कंकर के डालने से छोटी लहरें बन जाती हैं और जल के कण अपने ही स्थान

पर ऊपर नीचे को कम्पन करते हैं, वैसे ही प्रकाश की तरङ्गों (Waves) में भी आकाशतत्व (Ether) की कम्पित गति होती है। इन लहरों की लम्बाई भिन्न होने के कारण कुछों का प्रभाव हमारी त्वचा पर तापरूप में होता है और कुछों का नेत्रों पर प्रकाश के रूप में। लम्बी तरङ्गों द्वारा विद्युत शक्ति जाती है, उससे छोटी तरङ्गों द्वारा ताप। प्रकाश को तरङ्गें सबसे छोटी होती हैं।

**तरङ्गों में भेद**—श्याम वर्ण की तरङ्गें अन्य वर्ण की तरङ्गों से छोटी होती हैं। यह भी एक साधारण अनुभव की बात है कि यदि किसी तालाब में कोई काठ का शहतीर पड़ा हो और उसकी एक ओर छोटी सी कंकर डाली जाय तो इससे बनी हुई ऊर्म्मियाँ काठ के लट्ठे पर टकरा कर परावर्त्तित हो जाती हैं परन्तु यदि कंकर को न डाल कर तुम स्वयं कूद जाओ तो बड़ी हिलोरें बन कर शहतीर के नीचे को निकल जावेंगी और बिना किसी रुकावट के तालाब के पार तक चली जावेंगी ठीक यही दशा आकाशतत्व की लहरों की भी है। आकाशस्थ धुएं, जल अथवा गर्द के कणों से श्याम वर्ण की लहरें तो परावर्त्तित हो जाती हैं परन्तु बड़ी लहरें वर्त्तित हो जाती है। आकाश श्यामवर्ण होने का यही कारण है।

लहरों में की भिन्नता के अतिरिक्त सातों वर्णों के प्रकाश के गुण भी परस्पर कुछ भिन्न भिन्न होते हैं। इनका त्रिपार्श्व में विचलन न्यूनाधिक होने के कारण ही सप्तरञ्जक बनता है। परन्तु प्रत्येक प्रकाश के और ताप के परावर्त्तन तथा वर्त्तन सम्बन्धी नियम एक से ही होते हैं। उनमें भेद थोड़ा सा ही होता है। वायुशून्य स्थानों में भी आकाशतत्व द्वारा प्रकाश और ताप चले आते हैं। इनके

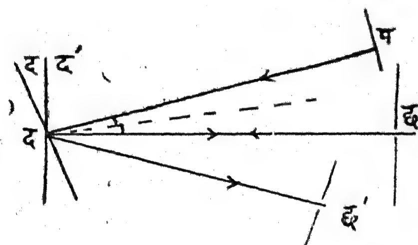
सर्वोत्तम उदाहरण सूर्य से तथा वायुशून्य वैद्युत लैम्पों में से ताप व प्रकाश का हम तक आना है।

**वर्णपट की विशेषता के सम्प्रयोग**—सूर्य के अतिरिक्त प्रकाश के उद्गम अन्य छोटे व गौण सितारे भी हैं परन्तु हमारी पृथ्वी को उनसे अधिक सहायता नहीं मिलती है, वे केवल नाम मात्र को ही हैं। इनके अनन्तर हमारे पास कृत्रिम दीपक इ भी रहते हैं। परन्तु यह नहीं समझ लेना चाहिये कि ये सब प्रकाश एक ही भाँति के होते हैं प्रत्येक दीपक के प्रकाश से सूर्य की नाईं सप्तरंजक नहीं बन सकता। किसी दीपक के सप्तरंजक में कोई वर्ण अधिक दृष्टिगोचर होगा, किसी में कोई। यही नहीं, किन्तु बहुत सी धातुएं जब तपा कर प्रकाशित की जाती हैं तो बहुधा उनका प्रकाश सप्तरञ्जक में एक वर्णीय ही होता है। उदाहरणार्थ यदि किसी ताम्र के टुकड़े को तीव्र अग्नि व ज्वाला में रक्खो तो प्रकाश केवल हरे वर्ण का होगा। इसी प्रकार यदि दीपक में साधारण लवणको जलावें तो इसका प्रकाश केवल पीला ही होगा। आतिशबाज़ी वाले एक वर्णीय प्रकाश दर्शाने के हेतु बहुधा ऐसे ही प्रकाश के रसायनिक पदार्थों का प्रयोग किया करते हैं। **पदार्थों की ज्वाला को परख कर वैज्ञानिक लोग यौगिक पदार्थों के अवयवों की भी खोज करते हैं।** बहुधा तत्वों की ज्वालाओं के वर्णपट में काली सीधी खड़ी रेखायें भी विशेष स्थिति में दृष्टिगोचर हुआ करती हैं और भिन्न भिन्न धातुओं का वर्णपट सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से भिन्न भिन्न दृष्टिगोचर हुआ करता है। तदनुसार यदि किसी अनजाने पदार्थ की ज्वाला में भी वही दृष्य दिखाई देता है तो उससे इस परिणाम के निकालने में कोई अत्युक्ति नहीं होती कि इष्ट पदार्थ में भी अमुक तत्व अवश्य सम्मिलित है। इन्हीं रीतियों द्वारा रसायनिज्ञों ने सितारों में मुख्य तत्त्वों का अनुमान किया है।

**प्रकाश का वेग** ( Velocity of light )—तुम लोगों ने फुटबाल का खेल बहुत देखा होगा और प्रायः इस बात का भी ध्यान दिया होगा कि जब गेंद भूमि पर गिर पड़ती है तो चोट की आवाज़ तुम्हें कुछ देरी के बाद सुनाई दिया करती है। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि शब्द को तुम्हारे कानों तक पहुँचने में कुछ समय अवश्य व्यतीत होता है और नेत्र गिरती हुई गेंद को तुरन्त देख लेते हैं। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि प्रकाश को तुम्हारे नेत्रों तक पहुँचने में समय व्यतीत ही नहीं होता। वास्तव में प्रकाश का वेग अत्यधिक है, किन्तु असीम नहीं है। प्रकाश का वेग किसी साधारण विधि से ज्ञात नहीं हो सकता इसलिये विशेष विधियों का अनुकरण करना होता है। प्रकाश का वेग वैज्ञानिकों ने कई वार और कई विधियों से निर्णय किया है। प्रथमातिप्रथम रोमर साहब ने १७ वीं शताब्दी में इस विषय का प्रयोग किया था। उनके अनन्तर फ्रांसीसी वैज्ञानिकों में फिज़ो सा. ( १८१९—९६ ई० ) ने तथा फ़ोकाल्ट सा. ( १८१९—६९ ) ने भी प्रकाश के वेग का निर्णय किया है। वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार प्रकाश का वेग लगभग १८६,००० मील प्रति सेकिंड निकलता है। सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश लगभग ८$\frac{1}{4}$ मिनट में आता है। प्रकाश का वेग निर्णय करने की दो विधियाँ नीचे दी जाती हैं। इनके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने अन्य २ रीतियों का भी अनुकरण किया है।

**फोकाल्ट सा. की विधि** ( Foucault's method )—प्रकाश पहिले तो एक छिद्र 'छ' से आकर दर्पण 'द' पर परावर्त्तित होता है और फिर दूसरे दर्पण 'म' पर गिरता है। इस समतल से भी परावर्त्तित होकर पुनः प्रकाश दर्पण 'द' पर पड़ कर छिद्र तक वापिस हो जाता है। परन्तु यदि ज्योंही प्रकाश दर्पण 'द' पर पड़े त्योंही इस दर्पण को द' की स्थिति में फिरा दें तो पुनः

परावर्त्तित किरण 'द्'' से छ' की ओर को जावेगी। यदि दर्पण द को द' की स्थिति के घूमने में ठीक उतना ही समय लगे जो कि प्रकाश को 'द्' से 'म' तक जाने में तथा 'म' से 'द्'' तक परावर्त्तित होने में लगता है तो इसका यह आशय होगा कि इसी समय में जिसमें दर्पण द अपनी नई स्थिति में चला जाता है प्रकाश 'दम' की दुगुनी दूरी में जा सकता है। यदि हम 'दप' दूरी को नाप लें और जितने समय में दर्पण घूमता है वह भी ज्ञात हो तो प्रकाश के वेग की भली प्रकार गणना कर




चित्र १२३— प्रकाश के वेग की निर्णय विधि।

सकते हैं। वास्तविक प्रयोग में समतल दर्पण 'द' एक अक्ष पर घूमता रहता है और 'म' स्थायी रहता है। 'छ' के प्रकाश का 'द' द्वारा परावर्त्तन 'म' पर केवल उसी समय पड़ सकता है जब दर्पण 'द' स्थिति में हो अन्यथा नहीं। तत्पश्चात् यही 'म' से परावर्त्तित प्रकाश दछ' पथ पर पहिले दर्पण द्वारा तभी जा सकता है जब यह 'द्'' पर स्थित हो। इसलिये छ' पर पर्दे में छिद्र रहता है और इसके पीछे से छिद्र द्वारा नेत्र द की ओर देखते रहते हैं और दर्पण 'द' के परिभ्रमण को दूसरा मनुष्य उस समय तक समायोजित करता रहता है जब तक कि 'म' से परावर्त्तित

प्रकाश छ' तक नियंत्रित रूप से नहीं जाता। (छ' पर प्रकाश सिवाय 'द' के और कहीं से नहीं आ सकता)। छ' पर प्रकाश देखने के समय में वही अन्तर होगा जो समय दर्पण 'द' के द' तक घुमने में लगेगा। इसी अन्तर में प्रकाश 'द' से 'म' तक और 'म' से फिर 'द' तक चला जावेगा।

**फ़िजो सा. की विधि** ( Fizeau's method )–इनके उपकरण में पहिले तो एक दीपक को स्थित कर उसके सम्मुख एक दांतोंदार पहिया इस भांति रखते हैं कि दीपक से पहिये के ऊपर वाले दांत तक रेखा चैतिज होता है। पहिये के दूसरी ओर कुछ

प




चित्र १२४—प्रकाश का वेग निकालना।

दूरी पर एक समतल दर्पण 'द' इस चैतिज रेखा से समकोण बनाता हुआ स्थित कर देते हैं। यदि 'स' से कोई किरण पहिये के दाँतों के बीच में से निकल जाय तो आवश्यक है कि किरणावली 'सद' दर्पण पर लम्ब होने के कारण अपने ही पथ पर परावर्त्तित होकर आवेगी। अब यदि नेत्रों को 'स' के निकट रख कर दर्पण की ओर देखें तो दर्पण में देखने से दीपक का प्रतिरूप दिखाई देगा। अब यदि पहिये को इस भाँति

और इस वेग से घुमावें कि ज्योंही प्रकाश दो दांतों के बीच से निकल कर द की ओर जाय और फिर परावर्त्तित होकर 'प' तक आवे कि इतने ही में बराबर वाला दांत 'सद' रेखा में आ जाय तो फिर दर्पण में पहिये के इस दांत द्वारा दीपक का प्रतिरूप पहिले की भांति नहीं दिखाई दे सकता; इस दशा में परावर्त्तित किरण पहिये के दांत पर ही रुक जावेगी। इस ही वेग से यदि पहिया बराबर घुमाया जाय तो 'स' के पीछे से दर्पण को देखने से दीपक का प्रतिरूप दर्पण में बिलकुल नहीं दिखाई देगा। ज्योंही दांतों के मध्यस्थ स्थान से प्रकाश दर्पण पर जायगा त्योंही दांत नेत्रों के सम्मुख आ जायगा और दीपक का प्रतिबिम्ब इस पर पड़ेगा। दूसरी अवस्था में जब 'द' से नेत्रों तक का पथ खुला रहेगा उस समय पहिली बार सम्मुख आये हुये दाँत का प्रतिरूप दिखाई देगा। इसका तात्पर्य यही है कि जितने समय में पहिये की परिधि का एक दाँत की चौड़ाई में घुमाव होता है उतनी ही देरी में प्रकाश पहिये से 'द' तक जाता है और परावर्त्तित हो आता है। यदि पहिये में दांतों की संख्या ज्ञात हो और पहिये का वेग भी मालूम हो तो प्रकाश का 'पद' की दुगुनी दूरी में जाने का समय गणना से ज्ञात हो सकता है। इस भांति प्रकाश का वेग ज्ञात हो जाता है और यह विधि अधिक कठिन भी नहीं है।

## अभ्यासार्थ प्रश्नावली (८)।

( १ ) प्रकाश का तरङ्ग सिद्धान्त क्या है, संक्षिप्त वर्णन करो।

( २ ) ताप और प्रकाश की प्रकृति में क्या अन्तर है। इनका गमन किस भांति होता है?

( ३ ) क्या प्रकाश के सब प्रकार के वर्णों की तरङ्गें एक ही समान होती हैं। अपना उत्तर सतर्क लिखो।

( ४ ) प्रकाश का वेग कैसे निकाल सकते हो, किसी एक विधि का सचित्र वर्णन करो।

( ५ ) यह कैसे दिखा सकते हो कि प्रकाश, शून्य स्थान में भी बिना रुकावट जा सकता है।

---

# विविध प्रश्नावली (अ)।

नोट—अधोलिखित प्रश्न प्रकाश के विषय सन् १९२४ से अभी तक प्रयाग की हाई स्कूल परीक्षा में दिये गये हैं।

( १ ) चित्र द्वारा दिखालाओ कि उन्नतोदर ताल से (१) वास्तविक और विस्तृत प्रतिरूप तथा (२) वास्तविक और छोटा प्रतिरूप कैसे बना करते हैं। ( १९२४ )

( २ ) गोलाकार दर्पण की वक्रता के केन्द्र से क्या प्रयोजन होता है? किसी नतोदर दर्पण की वक्रता के अर्द्धव्यास की निर्णय विधि का सचित्र वर्णन करो। ( १९२४ )

( ३ ) एक काग़ज़ पर पेंसिल का चिन्ह लगा कर उस पर कांच का एक आयताकार समचतुरस्र रखते हैं। फिर चिन्ह को समचतुरस्र के मध्य से देखते हैं। चित्र द्वारा पेंसिल के चिन्ह की प्रत्यक्ष स्थिति का वर्णन करो। ( १९२५ )

( ४ ) उन्नतोदर ताल के नाभिगतान्तर को कैसे निकालोगे? एक पदार्थ उन्नतोदर ताल से २० शतांशमीटर की दूरी पर रक्खा है और प्रतिमूर्त्ति पदार्थ से उलटी और आकार में चौगुनी बनती है तो ताल का नाभिगतान्तर निकालो। ( १९२५ )

(५) ३० शतांशमीटर नाभिगतान्तर का तुम्हारे पास एक उन्नतोदर ताल है और तुम्हें पदार्थ से दुगुना प्रतिरूप बनाने की आवश्यकता है, तो चित्र द्वारा बताओ पदार्थ ताल से कितनी दूरी पर रखना चाहिये। ( १९२६ )

(६) सप्तरञ्जक क्या होता है ? ऐसे उपकरण का वर्णन करो जिससे पर्दे पर एक सप्तरञ्जक बन जाय। यदि प्रकाश पर्दे पर पड़ने से पहिले ही लाल कांच पर पड़े तो सप्तरञ्जक पर क्या प्रभाव पड़ेगा और क्यों ? ( १९२६ )

(७) मान लो तुम किसी दीप्तिमान पदार्थ को त्रिपार्श्व के बीच से अवलोकन कर रहे हो। बताओ तुम्हें क्या दिखाई देगा और उस दृश्य के कारण भी समझाओ। ( १९२७ )

(८) एक संहत ताल का नाभिगतान्तर ५० शतांशमीटर है, तो ५ शतांशमीटर लम्बे ऐसे पदार्थ के प्रतिरूपों की प्रकृति, स्थिति और आकृति निकालो जो (१) ताल से २५ शतांशमीटर दूर हो (२) ताल से ७५ शतांशमीटर दूर हो। अपने उत्तर सचित्र दो। ( १९२७ )

(९) जल का वर्त्तनाङ्क निकालने के लिये किसी ऐसे प्रयोग का वर्णन करो, जिसे तुमने अपनी प्रयोगशाला में किया हो। ( १९२८ )

(१०) एक मोमबत्ती किसी दीवार से ३ फीट दूर जल रही है। तो बताओ इनके बीच में किस स्थान पर ८ इञ्च नाभिगतान्तर वाले ताल को रक्खें ताकि दीवार पर मोमबत्ती का पूर्ण व्यक्त चित्र बन जावे। इस उपकरण का एक चित्र भी बनाओ। ( १९२८ )

(११) वक्रता के अर्द्धव्यास से क्या तात्पर्य है ? इसको समझाओ। तुमको एक नतोदर दर्पण दिया है तो सचित्र वर्णन करो कि

प्रयोग द्वारा इसकी वक्रता का अर्द्धव्यास कैसे निकालोगे। (१६२६)

(१२) किसी त्रिपार्श्व के एक फलक पर कोई प्रकाश की किरण ४५° के कोण पर आपतित होती है। त्रिपार्श्व का कोण ६०° का है और कांच का वर्त्तनाङ्क १.५ है। एक ठीक ठीक बड़े चित्र से त्रिपार्श्व में वर्त्तित किरण और निर्गम किरण के पथ दिखलाओ। त्रिपार्श्व में किरण के निकलजाने पर कुल विचलन का कोण नापो (अर्थात् आपात और निर्गत किरणों का मध्यस्थ कोण)। (१६२६)

(१३) (अ) वास्तविक प्रतिरूप और (ब) काल्पनिक प्रतिरूप से तुम क्या समझते हो। समतल दर्पण द्वारा वास्तविक प्रतिरूप बनता है या काल्पनिक ? समतल दर्पण में पदार्थ का प्रतिरूप दर्पण से उतना ही पीछे बनता है जितना कि पदार्थ आगे होता है, इस बात के सबूत में किसी प्रयोग का वर्णन करो। (१६३०)

(१४) ताल की मुख्यनाभि से क्या प्रयोजन है यह बात चित्र के द्वारा समझाओ। एक ताल से २ शतांशमीटर लम्बा पदार्थ ५.५ शतांशमीटर दूर खड़ा है। ताल की नाभिअन्तर्गत दूरी ४ शतांशमीटर है। ठीक ठीक पैमाने का चित्र खींच कर प्रतिरूप की (१) आकृति और (२) स्थिति निश्चय करो। (१६३०)

(१५) जल का वर्त्तनाङ्क निर्णय करने के हेतु तुमने जो कोई प्रयोग किया हो उसका भली प्रकार वर्णन करो। (१६३१)

(१६) अभिवर्धक ताल किसे कहते हैं ? इसकी क्रिया दिखाने के हेतु एक बड़ा चित्र खींचो। (१६३१)

(१७) किसी ताल की नाभ्यान्तर्गत दूरी से क्या तात्पर्य है ? उन्नतोदर ताल की नाभिगतान्तर निकालने के लिये दो विधियों का वर्णन करो। (१६३२)

(१८) सम्बद्ध नाभि क्या होती है ? एक ५ श. मीटर ऊँचा पदार्थ किसी नतोदर दर्पण से २५ श. मीटर की दूरी पर रक्खा है। दर्पण की वक्रता का अर्द्धव्यास २० शतांशमीटर है। पैमाने पर चित्र खींचकर प्रतिरूप की आकृति, स्थिति इ. का निर्णय करो। (१९३२)

(ब)

नोटः—निम्नलिखित प्रश्न पञ्जाब मेट्रिकुलेशन परीक्षा के प्रश्न-पत्रों में से छाँट कर लिखे गये हैं :—

( १ ) किसी ऐसे उपकरण का वर्णन करो जिसके द्वारा पर्दे पर शुद्ध सप्तरंजक बना सकें। (१८९८)

( २ ) प्रकाश के विश्लेषण से क्या तात्पर्य है ; यह किन किन बातों पर निर्भर है ? (१९०५)

( ३ ) अपने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के ज्ञान से अधोलिखित घटनाओं के कारण लिखो (अ) ग्रीष्मऋतु में पंखे का प्रयोग (ब) पर्वतों स्थानों पर चावल के पकाने में कठिनाई, (स) किसी जलती हुई भट्टी के ऊपर वायु के मध्य से देखे हुए पदार्थों की कम्पित गति का दृश्य। (१९१० और १९१७)

( ४ ) चित्र की सहायता से अभिवर्धक ताल का वर्णन करो। साधारण सूक्ष्मदर्शक का किस भाँति प्रयोग होता है और इससे किस प्रकार के प्रतिरूप बनते हैं ? (१९१३)

( ५ ) वर्त्तन के नियमों का उल्लेख करो और उनको पिन द्वारा सत्य कैसे दिखा सकते हैं, विधि बताओ। ( १९१४ और १९१० )

( ६ ) (अ) छायाचित्रक कैमेरे और (ब) दूरबीन का वर्णन करो। (१९१४ और १९२०)

( ७ ) तुम्हारे पास क्या सबूत हैं कि प्रकाश का गमन साधारणतया सरल रेखात्मक ही होता है ( १९१५ )

( ८ ) एक नतोदर दर्पण के सम्मुख, जिसकी वक्रता का अर्द्धव्यास १० शतांशमीटर है, एक १० शतांशमीटर लम्बा तीर २० शतांशमीटर की दूरी पर रखते हैं तो गणित द्वारा प्रतिरूप की लम्बाई निकालो। ठीक ठीक पैमाने का एक चित्र भी खींचो। (१९१५)

( ९ ) यदि तुम्हारे पास एक साधारण दर्पण हो तो सूर्य की किरणों द्वारा किसी दूरस्थ स्थान पर सिग्नल किस प्रकार दे सकते हैं? यह किस सिद्धान्त पर निर्भर है? इस घटना के दोनों नियमों को बताओ। (१९१६)

(१०) एक १५ शतांशमीटर नाभि गतान्तर वाले ताल से एक मोमबत्ती (१) १० शतांशमीटर और (२) २० शतांशमीटर दूरी पर रक्खी जाती है। प्रत्येक दशा में प्रतिरूप की स्थिति निर्णय करो। दोनों पदार्थ की प्रकृतियों में क्या भेद है? प्रत्येक दशा में प्रतिरूप को कैसे देखोगे? ( १९१७ और १९२५ )

(११) नतोदर दर्पण की नाभ्यान्तर्गत दूरी को किस विधि से निकाल सकते हो? चित्र द्वारा यह भी समझाओ कि किन किन दशाओं में इस दर्पण द्वारा पदार्थ से दुगुना प्रतिरूप बन सकता है। ( १९१८ )

(१२) यह दर्शाने के हेतु कि (१) त्रिपार्श्व में किरण जाकर किस प्रकार विचलित हो जाती हैं और (२) आयताकार कांच के टुकड़े में तिर्छी जाकर भी विचलित हो जाती हैं, चित्र खींचो और समझाओ। ( १९१८ )

(१३) सूचीछिद्र कैमरे का वर्णन करो और सचित्र दिखाओ कि इसके द्वारा किसी दीप्तिमान पदार्थ का प्रतिरूप कैसे बना सकता है।

ज्यों ज्यों छिद्र को बड़ा करते हैं पहिले तो प्रतिमूर्ति बड़ी और धुंधली हो जाती है और फिर विद्यमान भी नहीं रहती। इसके क्या कारण हैं। ( १९१८ १९१९ )

(१४) प्रकाश के परावर्त्तन के नियमों का उल्लेख करो और समतल दर्पण द्वारा किसी पदार्थ का जो चित्र बनता है उसका चित्र खींच कर वर्णन करो। ( १९१९ )

(१५) ज्यौतिष दूरबीन किस सिद्धान्त पर बनी हुई है। यह चित्र द्वारा भली भाँति समझाओ। (१९१९)

(१६) वास्तविक और काल्पनिक प्रतिरूप में क्या भेद है? (१) समतल दर्पण द्वारा और (२) उन्नतोदर ताल द्वारा किस प्रकार के प्रतिरूप बनते हैं। अपने नेत्रों को प्रत्येक दशा में प्रतिरूप देखने के लिये किस स्थिति में ले जाओगे चित्र की सहायता से वर्णन करो। (१९२०)

(१७) प्रकाश की तीव्रता के उत्क्रमवर्ग नियम से क्या समझते हो? दो दीपकों की तीव्रता की तुलना करने में इस नियम का कैसे व्यवहार किया जाता है (१९२१)

(१८) चित्रों के द्वारा दिखलाओ कि उन्नतोदर ताल से प्रदीप्त मोमबत्ती के (१) उलटे और वृहदाकार (२) उलटे और न्यूनाकार (३) सीधे और वृहदाकार प्रतिरूप कैसे बन सकते हैं। (१९२२)

(१९) तुम्हारे पास एक नतोदर दर्पण है जिसकी नाभ्यान्तर्गत दूरी निश्चय करनी है। सचित्र विधियों को समझाओ। (१९२४)

(२०) प्रकाश के वर्त्तन के नियमों का उल्लेख करो। इन्हें प्रयोगों द्वारा कैसे साबित करोगे? (१९२५)

(२१) चित्र द्वारा ज्योतिष दूरबीन का अथवा छायाचित्रक कैमरे का वर्णन करो। (१९२५)

(२२) वास्तविक प्रतिरूप से क्या मतलब है ? (अ) वास्तविक वृहदाकार प्रतिरूप (ब) वास्तविक न्यूनाकार और (स) काल्पनिक प्रतिरूप उन्नतोदर ताल से बनाने के सम्प्रयोग बताओ। (१९२६)

(२३) सूचीछिद्र कैमेरे का वर्णन करो और उसका उपयोग बताओ। यदि सूचीछिद्र को (१) पर्दे के सन्निकट और (२) प्रदीप्त पदार्थं के सन्निकट ले जाओ तो प्रतिरूप पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? यदि सूचीछिद्र को बड़ा बना दिया जाय तो क्या होगा ? (१९२६)

---

प्रकाशक

रमेशचन्द्र गुप्त बी० एस-सी०, एल० टी०, एम० आर० ए० एस०,

विज्ञानाध्यापक, कुबेर हाई स्कूल,

डिबाई (बुलन्दशहर)।